Grihdah (Bangla Novel in Hindi) PDF By Sarat Chandra Chattopadhyay

(1)

महिम का परम मित्रा था सुरेश। एक साथ एम. ए. पास करने के बाद सुरेश जाकर मेडिकल-कॉलेज में दाखिल हुआ; लेकिन महिम अपने पुराने सिटी-कॉलेज में ही रह गया।

सुरेश ने रूठे हुए-सा कहा-महिम, मैं बार-बार कह रहा हूँ-बी.ए., एम. ए. पास करने से कोई लाभ न होगा। अब भी समय है-तुम्हें भी मेडिकल-कॉलेज में भर्ती हो जाना चाहिए।

महिम ने हँसते हुए कहा-हो तो जाना चाहिए; लेकिन खर्च के बारे में भी तो सोचना चाहिए!

-खर्च भी ऐसा क्या है कि तुम नहीं दे सकते? फिर तुम्हारी छात्रावृत्ति भी तो है।

महिम हँसकर चुप रह गया।

सुरेश ने अधीर होकर कहा-नहीं-नहीं, हँसो नहीं महिम, और देर करने से न चलेगा। मैं कहे देता हूँ-तुम्हें इसी बीच नाम लिखाना पड़ेगा! खर्च-वर्च की बाद में देखी जायेगी।

महिम ने कहा-अच्छा।

सुरेश बोला-भई, तुम्हारा कौन-सा अच्छा ठीक है, कौन-सा नहीं-मैं तो आज तक भी यह समझ नहीं पाया। मगर रास्ते में अभी तुमसे वायदा नहीं करा पाया, इसलिये कि मुझे कॉलेज को देर हो रही है। मगर कल-परसों तक जो भी हो-इसका कोई किनारा करके ही रहूँगा मैं! कल सबेरे डेरे पर रहना, मैं आऊँगा। कहकर सुरेश तेजी से कॉलेज की तरफ चला गया।

कोई पन्द्रह दिन बीत गये। कहाँ तो महिम और कहाँ उसका मेडिकल-कॉलेज का दाखिला! एक दिन दोपहर को, बड़ी दौड़-धूप के बाद सुरेश एक गये-बीते से छात्रावास में पहुँचा। सीधे ऊपर चला गया। देखा-एक सीसे से अँधेरे कमरे में फटी चटाइयाँ डाले, छः-सात लड़के खाने बैठे हैं। अचानक अपने दोस्त पर नजर पड़ते ही महिम ने कहा-अचानक डेरा बदलना पड़ा, सो तुम्हें खबर न दे पाया। पता कैसे लगाया?

सुरेश ने उसकी इस बात का जवाब नहीं दिया। वह धप्प से चैखट पर बैठ गया और एकटक उन सबके भोजन की तरफ देखता रहा। बड़ा ही मोटा चावल, पानी-सी पतली जाने काहे की दाल, साग की डण्ठलों के साथ कन्दे की तरकारी, और उसी के पास भुने कोहड़े के एक-दो टुकड़े। दही नहीं, दूध नहीं, किसी तरह की मिठाई नहीं-किसी के पत्तल पर एक टुकड़ा मछली तक नहीं।

सबके साथ महिम खुशी-खुशी, बड़ी ही तृप्ति के साथ यही भोजन करने लगा। लेकिन देख-देख कर सुरेश की दोनों आँखें गीली हो आयीं। मुँह फेर कर किसी कदर उसने अपने आँसू पोंछे और उठ खड़ा हुआ। महज मामूली-सी बात पर सुरेश की आँखों मे आँसू आ जाते।

भोजन कर चुकने के बाद, जब महिम ने उसे ले जाकर अपने साधारण-से बिस्तर पर बैठाया, तो रुँधे-स्वर में सुरेश से बोला-बार-बार तुम्हारी ज्यादती बर्दाश्त नहीं होती, महिम!

क्या मतलब?-महिम ने पूछा।

सुरेश ने कहा-मतलब कि ऐसा भद्दा मकान भी शहर में हो सकता है, इतना बुरा भोजन भी कोई आदमी कर सकता है-अगर आँखों नहीं देखता, तो यकीन नहीं कर सकता। खैर, जो भी हो, इस जगह की तुम्हें खोज ही कैसे मिली, और तुम्हारा वह साबिक डेरा-जितना भी बुरा क्यों न हो चाहे, इससे तुलना ही नहीं हो सकती उसकी-उसे ही तुमने क्यों छोड़ दिया?

मित्र के स्नेह ने मित्र के जी पर चोट पहुँचाई। महिम अपनी उस निर्विकार गम्भीरता को कायम नहीं रख सका। आर्द्र स्वर में बोला-सुरेश, तुमने मेरा गाँव वाला घर देखा ही नहीं,

वरना समझ जाते कि यहाँ मुझे जरा भी तकलीफ नहीं हो सकती। रही भोजन की बात, सो भले घर के और-और लड़के जो भोजन मजे से खा सकते हैं, उसे मैं ही क्यों न खा सकूँगा?

सुरेश तैश में आ गया-इसमें क्यों की बात ही नहीं! दुनिया में भली-बुरी चीजें हैं। मगर भली भली ही लगती हैं और बुरी बुरी लगेंगी-इसमें क्या शुबहा? मैं सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हें इतनी तकलीफ उठाने की पड़ी क्या है?

महिम चुपचाप हँसता रहा धीरे-धीरे, बोला नहीं।

सुरेश बोला-तुम्हारी जरूरत तुम्हारी ही रहे, मुझे जानने की जरूरत नहीं। लेकिन मेरी जरूरत है-तुम्हें यहाँ से बचा ले चलना। मैं यदि तुम्हें यहाँ छोड़कर जाऊँ-तो मुझे नींद नहीं आयेगी, खाना नहीं रुचेगा। मैं तुम्हारा सारा सरो-सामान अपने घर ले चलूँगा। यहाँ के नौकर से कहो-एक गाड़ी बुला दे! इतना कहकर सुरेश ने जबर्दस्ती महिम को उठाया और खुद उसका बिछौना समेटने लगा।

महिम ने रोक-थाम मे उछल-कूद न की। शान्त गम्भीर स्वर में बोला-पागलपन मत करो, सुरेश!

नजर उठाकर सुरेश ने कहा-पागलपन कैसा? तुम नहीं जाओगे?

-नहीं!

-क्यों नहीं जाओगे? मैं क्या तुम्हारा कोई नहीं? मेरे घर जाने से क्या तुम्हारा अपमान होगा?

-नहीं?

-फिर?

महिम ने कहा-सुरेश, तुम मेरे मित्र हो। ऐसा मित्र मेरा और कोई नहीं! दुनिया में कितनों का है, यह भी नहीं जानता। इतने दिनों के बाद; देह के जरा-से आराम के लिये मैं ऐसी चीज खो बैठूँ-तुम क्या मुझे इतना बड़ा नादान समझते हो?

सुरेश बोला-मिताई तुम्हारी अकेले की तो नहीं, महिम! इसमें मेरा भी तो एक हिस्सा है। यदि वह खो जाये तो कितना बड़ा नुकसान होगा-यह समझने का शहूर मुझे में नहीं-मैं क्या इतना बेवकूफ हूँ? फिर इतना सतर्क सावधान, इतना हिसाब-किताब रखकर न चलने से अगर वह नहीं रह सकती तो जाये क्यों न महिम! ऐसी क्या उसकी कीमत है कि उसके लिये अपने आराम की उपेक्षा करनी होगाी!

महिम ने हँसकर कहा-नहीं, अब हार गया! लेकिन एक बात तैशुदा समझो सुरेश, तुम्हारा ख्याल है-मैं शौकिया यहाँ दुःख झेलने आया हूँ, यह सही नहीं है।

सुरेश बोला-न सही! मैं कारण भी नहीं जानना चाहता-लेकिन अगर तुम्हारी नीयत रुपया बचाने की है, तो मेरे घर चलकर रहो न-इसमें तो तुम्हारा इरादा मिट्टी न होगा!

महिम ने गर्दन हिलाकर संक्षेप में कहा-अभी छोड़ो सुरेश! सच ही अगर तकलीफ होगी, तो तुम्हें बताऊँगा!

सुरेश को मालूम था कि महिम को उसके संकल्प से डिगाना असम्भव है। उसने जिद नहीं की, और एक प्रकार से नाराज होकर ही चला गया। लेकिन दोस्त के

रहने-खाने का यह हाल देखकर उसके जी में सुई चुभती रही।

सुरेश धनी का लड़का था, और महिम को वह अकपट प्यार करता था। उसकी दिली खाहिश थी-किसी तरह वह दोस्त के किसी काम आये। लेकिन वह महिम को कभी मदद लेने को राजी न कर सका-आज भी न कर सका।

(2)

पाँचेक साल बाद दोनों में बातें हो रही थीं।

-तुम पर मुझे कितनी श्रद्धा थी, मैं कह नहीं सकता, महिम!

-कहने को तुम्हें मैं तंग तो कर नहीं रहा हूँ, सुरेश!

-वह श्रद्धा अब शायद न रहने की!

-न रहे तो मैं सजा दूँगा-ऐसी धमकी तो नहीं दी है मैंने कभी।

-तुम्हारा बड़ा-से-बड़ा दुश्मन भी तुम पर कपट का इलजाम नहीं लगा सकता।

-दुश्मन नहीं लगा सकता, इसलिये मित्र भी नहीं लगा सके-दर्शनशास्त्र का ऐसा अनुशासन तो नहीं!

-तौबा कहो, आखिर को एक ब्राहम लड़की के पाले पड़ गये! है क्या उसमें? सूखी लकड़ी-सा चेहरा, किताबें रटते-रटते बदन में एक बूँद खून का नाम नहीं। ठेल दो तो, डर है-आधी देह अलग हो रहे-आवाज तक ऐसी चीं-चीं कि सुनने से नफरत हो आती है।

-बेशक हो आती है!

-सुनो महिम, मजाक अपने देहाती लोगों से करो, जिन्होंने आँखों से कभी ब्राहम की लड़की देखी नहीं। जो यह सुनकर दंग रह जाते हैं कि लड़की होकर अँग्रेजी में पता लिख सकती है-जिनके जाने से वे बाअदब दूर खड़े हो जाते हैं। अचरज से अवाक् अपने उन गाँव वालों को करो जाकर, जो देव-देवी समझ कर इनके आगे सिर नवाते हैं। मगर हम लोगों का घर तो गाँव में नहीं, हमारी आँखों में तो इस आसानी से धूल नहीं झोंकी जा सकती!

-मैं तुमसे शपथ खाकर कहता हूँ सुरेश, तुम्हारे शहर वालों को ठगने का अपना कोई इरादा नहीं! मैं उन्हें लेकर अपने गाँव में ही रहूँगा। इसमें तो तुम्हें कोई एतराज नहीं?

सुरेश रंज होकर बोल उठा-नहीं है? सौ, हजार, लाख, करोड़ों एतराज हैं! सारी दुनिया के पूज्य हिन्दू की सन्तान होकर तुम क्या एक औरत के मोह में जान गँवाओगे? मोह! एक बार उनके जूते-मोजे उतारकर अपनी गृहलक्ष्मियों की पोशाक पहनाकर देखो तो सही, मोह

जाता रहता है या नहीं! है क्या उसमें? कर क्या सकती है वह? खैर, सिलाई-बुनाई की ही तुम्हें जरूरत है, तो कलकत्ते में दर्जियों की क्या कमी? किसी खत पर पता लिखाने के लिये तो तुम्हें ब्राह्म लड़की की शरण लेनी नहीं है। वक्त-बेवक्त यह क्या कूटपीस कर तुम्हें दो मुट्ठी खिला भी सकेगी? बीमार होने पर सेवा करेगी? इसकी शिक्षा मिली है उन्हें? ईश्वर न करे, मगर ऐसे आड़े वक्त तुम्हें छोड़कर चली न जाये, तो सुरेश के बदले जी चाहे जिस नाम से मुझे पुकारना-दुःख न मानूँगा!

महिम चुप रहा। सुरेश फिर कहने लगा-महिम, तुम तो जानते हो कि मंगल के सिवा मैं तुम्हारा अमंगल नहीं चाह सकता। भूल कर भी नहीं! मैंने बहुतेरी ब्राह्म महिलाएँ देखी हैं! दो-एक अच्छी भी नहीं देखीं, ऐसी बात नहीं। लेकिन अपने हिन्दू घर की महिलाओं से उनकी तुलना ही नहीं हो सकती! ब्याह करने का ही जी हो आया था, तो तुमने कहा क्यों नहीं? खैर हुआ सो हुआ, अब तुम्हें वहाँ जाने की जरूरत नहीं। मैं वचन देता हूँ कि महीने भर के अन्दर तुम्हें ऐसी लड़की ढूँढ़ दूँगा, कि जीवन में कभी दुःख उठाना ही न होगा। अगर ऐसा न कर सकूँ, तो जी चाहे सो करना-इसी के पैरों सिर पीटना, मैं कुछ न बोलूँगा। मगर एक महीना धीरज रखकर, अपनी अब तक की मिताई की मर्यादा तुम्हें रखनी ही होगी! कहो, रक्खोगे?

महिम पहले-सा ही मौन रहा, हाँ-ना कुछ न बोला-लेकिन दोस्त के भले के लिये दोस्त किस कदर बेचैन हो उठा है, यह पूरी तरह समझ सका।

सुरेश बोला-जरा सोच तो देखो सही, तुमने जब ब्राह्म मन्दिर में जाना-आना शुरू किया था, तो मैंने मना नहीं किया था तुम्हें? इतने बड़े कलकत्ता शहर में तुम्हारे लिये कोई हिन्दू-मन्दिर था ही नहीं, कि इस कपट की जरूरत हुई? मैंने तभी समझ लिया था, कि ऐसे में तुम किसी-न-किसी विडम्बना में जरूर जकड़ जाओगे!

अबकी महिम जरा हँसकर बोला-सो समझा होगा, लेकिन मैंने तो ऐसा नहीं समझा था कि मेरे जाने में कोई कपट था! लेकिन एक बात पूछूँ-तुम तो भगवान तक को नहीं मानते, फिर हिन्दुओं के देवी-देवताओं को मानोगे? मैं ब्राह्म-मन्दिर में जाऊँ या हिन्दू-मन्दिर में, इससे तुम्हारा क्या आता-जाता है?

सुरेश ने जोश में कहा-जो नहीं है, मैं उसे नहीं मानता! भगवान नहीं है। देवी-देवता झूठी बात है। लेकिन जो है, उससे तो इंकार नहीं करता। समाज को मैं श्रद्धा करता हूँ, आदमी की पूजा करता हूँ। मैं जानता हूँ कि मनुष्य की सेवा ही मानव-जन्म की चरम सार्थकता है। हिन्दू परिवार में पैदा हुआ हूँ, तो हिन्दू-समाज की रक्षा करना ही अपना काम है। मैं मरते दम तक तुम्हें, ब्राह्म-घर में विवाह करके उसकी जमात बढ़ाने नहीं दूँगा। तुमने क्या वचन दे दिया है कि केदार मुखर्जी की बेटी से ब्याह करोगे?

-नहीं! जिसे वचन देना कहते हैं, वह अभी नहीं दिया है।

-नहीं दिया है न! ठीक है। तो फिर चुपचाप बैठे रहो। मैं इसी महीने में तुम्हारा विवाह कराऊँगा।

-मैं ब्याह करने के लिये पागल हो गया हूँ-यह किसने कहा तुमसे? तुम भी चुप बैठो जाकर; और कहीं ब्याह करना मेरे लिये असम्भव है!

-क्यों, असम्भव क्यों? किया क्या है? उससे प्रेम कर बैठे हो?

-इसमें अचरज क्या है! मगर इस भद्र महिला के बारे में सम्मान के साथ बात करो सुरेश!

-सम्मान के साथ बोलना मुझे आता है। सिखाना नहीं पड़ेगा। मैं पूछ सकता हूँ कि भद्र महिला की उम्र क्या होगी?

-नहीं जानता!

-नहीं जानते? बीस, पच्चीस, तीस, चालीस या और भी ज्यादा-कुछ नहीं जानते?

-नहीं।

-तुमसे छोटी है या बड़ी, शायद यह भी नहीं जानते?

-नहीं।

-जब उन्होंने तुमको फन्दे में फँसाया है, तो नन्हीं-नादान तो नहीं हैं-ऐसा सोचना असंगत न होगा। क्या ख्याल है?

-नहीं। तुम्हारे लिये कोई असंगत नहीं। लेकिन मुझे कुछ काम है सुरेश, मैं जरा बाहर जाना चाहता हूँ।

सुरेश ने कहा-ठीक तो है, मुझे भी कोई काम नहीं है महिम! चलो, तुम्हारे साथ जरा घूम आयें।

दोनों मित्र निकल पड़े। कुछ देर चुपचाप चलते रहने के बाद सुरेश ने धीरे-धीरे कहा-आज जानबूझ कर ही मैंने तुम्हें बाधा दी, शायद यह समझाकर कहने की जरूरत नहीं।

महिम ने कहा-नहीं।

सुरेश ने वैसे ही मृदु स्वर में कहा-आखिर बाधा क्यों दी?

महिम हँसा। बोला-पहली बात अगर बिना समझाए ही समझ सका, तो आशा है, इसे भी समझाना न होगा!

उसका एक हाथ सुरेश के हाथ में था। सुरेश ने गीले मन से उसे जरा दबाकर कहा-नहीं महिम, तुम्हें समझाना नहीं चाहता। संसार में और सब मुझे गलत समझ सकते हैं, मगर तुम मुझे गलत नहीं समझोगे! फिर भी आज मैं तुम्हारे मुँह पर सुना देना चाहता हूँ, कि मैंने तुम्हें जितना प्यार किया है, तुमने मुझे उसका आधा भी नहीं किया। तुम परवाह चाहे न करो, पर मैं तुम्हारी जरा-सी तकलीफ भी कभी सह नहीं सकता। बचपन में इसी पर हमारी कितनी लड़ाई हुई है-सोच देखो। इतने दिनों के बाद जिसके लिये तुम मुझे भी छोड़ रहे हो महिम, अगर निश्चित जानता कि उन्हें पाकर जीवन में सुखी होगे, तो सारा दुःख मैं हँसकर सह लेता, कभी एक शब्द नहीं कहता।

महिम बोला-उनको पाकर सुखी शायद न हो सकूँ; मगर तुम्हें छोड़ दूँगा-यह कैसे जाना?

-तुम छोड़ो न छोड़ो, मैं तुम्हें छोड़ दूँगा।

-लेकिन क्यों? मैं तुम्हारा ब्राहम मित्र भी तो हो सकता था?

-नहीं। हर्गिज नहीं! ब्राहम को मैं फूटी आँखों भी नहीं देख सकता। मेरा एक भी ब्राहम दोस्त नहीं!

-उन्हें देख क्यों नहीं सकते?

-बहुत-से कारण हैं इसके। एक यह कि जो हमारे समाज को बुरा बताकर छोड़ गये, उन्हें अच्छा मानकर मैं हर्गिज पास नहीं खींच सकता। तुम्हें तो पता है-अपने समाज के लिये मुझे कितनी ममता है। उस समाज को जो देश के, विदेश के सबके सामने बुरा साबित करना चाहता है, उसकी अच्छाई उसी की रहे, मेरा वह शत्रु है! महिम मन-ही-मन असहिष्णु होता जा रहा था-अच्छा तो अब क्या करने को कहते हो तुम?

सुरेश बोला-वही तो शुरू से लगातार कह रहा हूँ।

-खैर, एक बार फिर कहो।

-जैसे भी हो, इस युवती का मोह तुम्हें छोड़ना ही पड़ेगा-कम-से-कम एक महीना तुम उससे मिल नहीं पाओगे!

-मगर उससे भी न छूटे तो? यदि मोह से भी बड़ा कुछ हो?

सुरेश ने जरा देर सोचकर कहा-वह सब मैं नहीं समझता महिम! मैं समझता हूँ कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, और उससे भी ज्यादा प्यार करता हूँ अपने समाज को। हाँ, एक बार सोच देखो, छुटपन में चेचक हुआ तुम्हें, वह बात; और नाव डूब जाने से हम मुँगेर में, गंगा में डूब रहे थे। भूली बात की याद दिलाई-इसके लिये मुझे माफ करना, महिम! मुझे और कुछ नहीं कहना; मैं चला! और अचानक वह पीछे मुड़कर तेजी से चला गया।

(3)

सुरेश के बदन में एक ओर जितनी ही ज्यादा ताकत थी, दूसरी ओर उतना ही कोमल था उसका मन, उतना ही स्नेहशील। जाने-अजाने किसी के भी दुःख-कष्ट की बात सुनकर उसे रोना आता। छुटपन में वह एक मच्छर-मक्खी तक को नहीं मार सकता था। जैनियों की देखा-देखी ही, कितनी बार जेब में चीनी-सूजी लिये, स्कूल से गैरहाजिर हो, पेड़ों-तले घूम-घूम कर चींटियों को खिलाया करता था। मछली-मांस खाना उसने कितनी बार छोड़ा और पकड़ा-इसका हिसाब नहीं। जिसे चाहता, उसके लिये कैसे क्या करे, सोच नहीं पाता। स्कूल में अपने दर्जे में महिम सबसे अच्छा लड़का था। लेकिन उसके बदन पर फटेचिटे कपड़े, पैरों का जूता फटा-पुराना, दुबला शरीर, सूखा चेहरा-यही सब देख-सुनकर सुरेश पहले उसकी ओर आकृष्ट हुआ था। और थोड़े ही दिनों में, दोनों का यह आकर्षण बाढ़ के पानी की तरह इतना बढ़ उठा, विद्यालयभर के लड़कों की चर्चा का विषय बन बैठा। महिम को छात्रावृत्ति मिली थी, और उन्हीं चार रुपयों के भरोसे वह कलकत्ते आया तथा गाँव के एक मोदी की दूकान में रहकर स्कूल में दाखिल हुआ। तभी से सुरेश ने दोस्त को अपने घर लाने की हर कोशिश की, मगर उसे हर्गिज राजी न कर सका। वहीं रह कर कभी भूखा, कभी अधपेटा रहकर महिम ने एंट्रेस पास किया। बाद की घटना पहले बताई जा चुकी है।

उस दिन से हफ्ता भर महिम से भेंट न हो सकने के कारण सुरेश उसके डेरे पर गया। किसी त्यौहार के कारण आज स्कूल-कॉलेज बन्द थे। वहाँ जाने पर पता चला-महिम सुबह ही जो निकला है, सो अभी तक नहीं लौटा। सुरेश को सन्देह नहीं रहा, कि वह छुट्टी का दिन बिताने के लिये पटलडांगा के केदार मुखर्जी के यहाँ ही गया है।

जो बेहया दोस्त, आशैशव मिताई की सारी मर्यादा की, एक मामूली औरत के मोह में विसर्जित कर सात दिन भी धीरज नहीं रख सका-दौड़ा गया, पलक-मारते उसके खिलाफ विद्वेष की आग-अचानक आग लग जाने-सी उसके जी में जल उठी। उसने जरा देर विचार भी न किया; गाड़ी पर बैठ गया और कोचवान को सीधे पटलडांगा चलने को कहा-मन-ही-मन कहने लगा-अरे बेहया, अरे अहसान-फरामोश! अपना जो प्राण इस औरत को सौंप कर तू धन्य हो गया है, तेरा प्राण रहता कहाँ? अपने प्राण की कतई परवाह न करके जिसने तेरे प्राण को दो-दो बार बचाया उसका क्या जरा भी सम्मान नहीं रखना था?

केदार मुखर्जी के घरवाली गली सुरेश को मालूम थी, थोड़ी-सी पूछताछ के बाद ही गाड़ी ठीक जगह पर पहुँच गयी। उतर कर सुरेश ने बैरे से पूछा, और सीधे ऊपर की बैठक में जा पहुँचा। फर्श पर बिछाई गयी गद्दी और तकिये के सहारे से लेटे हुए एक बूढ़े-से सज्जन अखबार पढ़ रहे थे। उन्होंने उसकी तरफ ताका। नमस्कार करके सुरेश ने अपना परिचय दिया-मेरा नाम सुरेश बंद्योपाध्याय है। मैं महिम के बचपन का साथी हूँ।

बूढ़े ने नमस्ते किया। चश्मे को मोड़कर रखते हुए बोले-बैठिए! सुरेश बैठ गया। बोला-महिम के डेरे पर गया तो पता चला-वह यहीं है; सो सोचा-इसी बहाने आपसे भी परिचित हो लूँ।

बूढ़े ने कहा-मेरा परम सौभाग्य कि आप पधारे! लेकिन महिम दस-बारह दिनों से इधर नहीं आये। आज सुबह हम लोग सोच रहे थे, जाने किस हालत में हैं वे?

सुरेश मन-ही-मन जरा चकित होकर बोला-लेकिन उनके डेरे पर तो बताया-

बूढ़े ने कहा-और कहीं गये हों शायद। खैर वे अच्छे हैं-सुनकर राहत मिली।

आते-आते राह में सुरेश ने जो उद्धत संकल्प किया था, बूढे के सामने आकर उसे दृढ़ न रख सका। उनके शान्त मुखड़े की धीर-मृदु बातों ने उसके मन की आँच को शीतल कर दिया। फिर भी, वह अपने कत्र्तव्य को भी न भूला। मन-ही-मन यह कहकर वह अपने को उत्तेजित करने लगा, कि ये कितने ही भले क्यों न हों, हैं तो ब्राह्म ही! लिहाजा इनका सारा शिष्टाचार ही बनावटी है। ये अबोधों को इसी तरह से फुसलाकर अपना उल्लू सीधा किया करते हैं। सो इन शिकारियों के सामने हथियार डालकर काम को भुलाने से नहीं चल सकता-जैसे भी हो, इनके जबड़े से दोस्त को निकालना ही पड़ेगा! उसने काम की बात शुरू की। बोला-महिम मेरा बचपन का साथी है। ऐसा दूसरा दोस्त नहीं मेरा। अगर इजाजत दें तो उसके बारे में आपसे दो-एक बात करूँ।

बूढ़े ने हँसकर कहा-बखूबी। मैंने उनसे आपका नाम सुना है।

सुरेश ने पूछा-महिम से आपकी लड़की की शादी तै हो गयी?

उन्होंने कहा-तै ही समझिए।

सुरेश ने कहा-लेकिन महिम तो ब्राह्म-समाजी नहीं है, फिर भी ब्याह करेंगे आप?

बूढ़े चुप हो रहे। सुरेश ने कहा-खैर, बात अभी छोड़िए! परन्तु उसकी अवस्था कैसी है, बीवी-बच्चों के गुजर-बसर की सामर्थ्य है या नहीं, गाँव में विरोधी हिन्दू-समाज के बीच, कच्चे घर में आपकी लड़की रह सकेगी या नहीं, और कहीं न रह सके तो महिम क्या करेगा-यह सब सोच देखा है आपने?

बूढ़े केदार मुखर्जी उठ बैठे। बोले-नहीं तो। मैंने तो यह सब सुना नहीं। महिम ने कभी तो यह सब नहीं कहा।

सुरेश बोला-लेकिन मैंने यह सब सोचा है, महिम से कहा है, और वही अप्रिय प्रसंग उठाने के लिये मैं आपके पास आया हूँ आज। अपनी लड़की की आप सोचें, अगर मेरे परम मित्र, जो ऐसी जिम्मेदारी कन्धे पर उठाकर बेहद बोझ से सदा अधमुए-से रहेंगे, यह तो मैं हर्गिज न होने दूँगा।

केदार बाबू का चेहरा फख् हो गया। बोले-आप कह क्या रहे हैं, सुरेश बाबू?
पिताजी!-सत्रह-अट्ठारह साल की एक लड़की अचानक कमरे में आकर, पिता के पास किसी अनजाने युवक को बैठा देख अवाक् रह गयी।

-कौन? अचला? आओ बिटिया, बैठो! शर्म कैसी, ये अपने महिम के गहरे मित्र हैं।

वह लड़की आगे बढ़ आयी। हाथ उठाकर सुरेश को नमस्ते किया। सुरेश ने देखा-चमकता साँवला रंग, छरहरा बदन। गाल, ठोड़ी, कपाल-सारे मुख की बनावट ही बहुत अच्छी और सुकुमार। आँखों की निगाह में जरा स्थिर बुद्धि की आभा। नमस्ते करके वह करीब ही बैठ गयी। उसको देखकर सुरेश मुग्ध हो गया। उसके पिता बोले-महिम के बारे में सुना तुमने? हम सोच रहे थे, वह आ क्यों नहीं रहा है? सुन लो। परम बन्धु है उसके, जभी तो ये आये, नहीं तो क्या होता, कहो तो? किसे पता था कि वह ऐसा विश्वासघाती है, इतना बड़ा मक्कार! गाँव में उसका महज एक फूस का घर है। वह तुम्हें खिलाएगा क्या? उसे तो खुद

ही खाना-कपड़ा का ठिकाना नहीं। ओः कितना खतरनाक! ऐसे आदमी के मन में भी इतना जहर था?

सुनकर अचला का चेहरा पीला पड़ गया, लेकिन न जाने किसने सुरेश के मुँह पर कालिख पोत दी। वह उस लड़की की ओर अवाक् देखता हुआ, काठ के पुतले-सा बैठा रह गया।

(4)

सुरेश को लगा-उसका निष्ठुर सत्य अचला के कलेजे में गहरा बिंध गया। लेकिन पिता ने उसका ख्याल तक न किया, बल्कि बेटी को ही इशारा करके कहने लगा-सुरेश बाबू, आप सच्चे मित्र का कर्तव्य करने आये हैं, हम जिससे भ्रम में भी इस पर अविश्वास न करें। यह कठोर हो, अप्रिय हो, पर सच्चा प्रेम यही है। माँ जब बीमार बच्चे को खाना नहीं देती, तो वह क्या उसे बेरहम नहीं लगती? लेकिन फिर तो उसे वह काम करना ही पड़ता है! सच कह रहा हूँ सुरेश बाबू! महिम हमारे ऊपर ऐसा जुल्म कर सकते हैं-यह हमने स्वप्न में भी न सोचा था। दो साल पहले, उनके बात-व्यवहार से मुग्ध होकर, मैंने खुद ही घर बुलाकर अचला से उनका परिचय कराया-उसका यही बदला! उफ्, इतनी बड़ी प्रवंचना अपने जीवन में मैंने नहीं देखी। अन्दर के आवेग से खड़े होकर केदार बाबू कमरे में पायचारी करने लगे। सुरेश और अचला सिर झुकाये चुप बैठे रहे। केदार बाबू सहसा ठिठककर बोल उठे-नहीं बिटिया, यह नहीं होने का । हर्गिज नहीं! सुरेश बाबू, आप जैसे सबसे ऊपर कर्त्तव्य को ही रखकर मित्र का काम करने आये हैं, वैसे मैं भी कर्तव्य को ही सामने रखकर पिता का काम करूँगा। अचला से महिम का सम्बन्ध जितना आगे बढ़ गया है, ऐसे में बिना सबूत के अगर उसके लिये घर का दरवाजा बन्द कर दें तो ठीक नहीं होगा-इसलिये जरा सबूत चाहिए। आप यह न सोचें सुरेश बाबू, कि आपकी बात पर हमने यकीन नहीं किया; लेकिन यह भी अपना कर्त्तव्य है। क्यों बिटिया, सबूत लेना ठीक है या नहीं?

दोनों ही चुप बैठे रहे; उचित-अनुचित-कोई राय किसी ने जाहिर नहीं की। जरा देर रुककर केदार बाबू ही बोले-लेकिन सबूत का भार आप पर ही रहा सुरेश बाबू! महिम की माली हालत की बात तो दूर रही, उसका घर किस गाँव में है-हम यही नहीं जानते।

बैरे ने खबर दी-नीचे विकास बाबू खड़े हैं।

सुनकर केदार बाबू सूख-से गये। बोले-आज तो उनके आने की बात न थी। अच्छा, कहो उनसे-मैं आ रहा हूँ। पलटकर बोले-मुझे पाँचेक मिनट के लिये माफ करना होगा सुरेश बाबू, मैं इस आदमी को रुखसत कर आऊँ। जब आ गया है, तो मिले बिना तो जायेगा नहीं। बिटिया अचला, सुरेश बाबू को अपना परम हितैषी समझना। जो जानना चाहो, इनसे जान लो। मैं अभी आया! कहकर वे नीचे उतर गये।

एक-दूसरे को देखकर दोनों ने सिर झुका लिया। जरा देर चुप रहकर सुरेश ने धीरे-धीरे कहा-मैं महिम का छुटपन का साथी हूँ, लेकिन उसके व्यवहार से आप लोगों के सामने मेरा सिर नीचा हो गया है।

अचला ने धीमे से कहा-इसके लिये आपको लज्जित होने का कोई कारण नहीं!

सुरेश बोला-कहती क्या हैं आप! उसकी इस मक्कारी से, ऐसे पाखण्ड व्यवहार से, दोस्त के नाते मैं शर्मिन्दा न होऊँ तो कौन हो-कहिए। लेकिन तभी तो मुझे सोचना चाहिए था, कि जब उसने मुझी से शुरू से आखिर तक छिपाया, तब इसके अन्दर जरूर कोई गड़बड़ है।

अचला ने कहा-असल में हम ब्राहम समाजी हैं। आप इस समाज के किसी से कोई सम्पर्क नहीं रखना चाहते, शायद इसीलिये उन्होंने आपसे जिक्र न किया हो।

बात सुरेश को अच्छी न लगी। अचला उसी के सामने महिम का दोष काटना चाहेगी-यह उसने नहीं सोचा था। सूखे कण्ठ से पूछा-यह बात आपने महिम से सुनी होगी शायद।

अचला ने सिर हिलाकर कहा-जी हाँ, उन्होंने ही कहा था।

सुरेश ने कहा-देखता हूँ मेरे दोष को कहना वह भूला नहीं।

अचला जरा फीका हँसकर बोली-यह दोष की क्या बात है? हर आदमी की प्रवृत्ति एक नहीं होती। जो लोग आप लोगों से नाता तोड़कर चले गये हैं, वे अगर आपको अच्छे न लगें, तो इसमें मैं कोई दोष नहीं मानती।

यह बात सुरेश के मनलायक थी, कहीं और सुनकर वह शायद उछल उठता; लेकिन इस मितभाषिणी ब्राह्म युवती के मुँह से, ब्राह्मसमाज पर अपनी वितृष्णा की बात सुनकर आज उसमें जरा भी आनन्द का उदय नहीं हुआ। वास्तव में इस दलबन्दी की मीमांसा सुनने के लिये उसने बात कही भी न थी। बल्कि जवाब में यह सुनना चाहा था, कि उसने महिम से उसके सद्गुण का और विवरण सुना है या नहीं। अचला शायद उसकी इस गोपन अभिलाषा को तोड़ नहीं सकी, इसीलिये सवाल का सीधा जवाब देकर ही वह चुप हो गयी।

सुरेश कुढ़कर बोला-आप लोगों से मुझे सामाजिक चिढ़ है या नहीं-यह चर्चा महिम करे, लेकिन उस पर मुझे जरा भी विद्वेष नहीं है, यह आप मुझसे सुनकर भी अविश्वास न करें। फिर भी शायद मैं उसकी घर की बात करने यहाँ नहीं आता, अगर उस दिन वह मुझसे सच्ची बात नहीं छिपाता।

सुरेश के मुँह पर स्थिर दृष्टि रखकर अचला ने कहा-लेकिन झूठ तो वे नहीं बोलते!

अबकी सुरेश सचमुच ही अचरज से हत-बुद्धि हो गया। एक औरत के मुँह से ऐसा शान्त लेकिन दृढ़ प्रतिवाद भी निकल सकता है-जरा देर वह सोच ही न सका। लेकिन जरा ही देर के लिये। जीवन में उसने संयम नहीं सीखा। सो दूसरे ही क्षण रूखे स्वर में बोल उठा-मुझे माफ करें, वह मेरा बाल्य-बन्धु है। मैं उसे आपसे कुछ कम नहीं जानता! अपने को यहाँ फँसाकर साफ इंकार करने को मैं सत्यवादिता नहीं कह सकता।

अचला ने वैसे ही शान्त स्वर में कहा-उन्होंने खुद तो अपने को यहाँ नहीं फँसाया।

सुरेश ने कहा-आपके पिताजी ने तो यही कहा। इसके सिवा, अपनी गयी-बीती हालत को आप लोगों से छिपाने को भी सत्यप्रियता नहीं कह सकते। बाल-बच्चों के भरण-पोषण की असमर्थता-औरों से न सही, आपसे तो खोलकर कहना चाहिए था।

अचला चुप रही। सुरेश कहने लगा-आप जो उसकी भूल को ढकने की इतनी कोशिश कर रही हैं, आप ही बतायें भला,-सारी बातें पहले मालूम हो जातीं तो उसे इतनी छूट आप दे सकतीं?

अचला चुप ही रही। उससे कोई जवाब न पाकर, सुरेश और भी जोश में आकर कहने लगा-उसने मेरे सामने साफ कबूल किया कि कलकत्ते में आपको रखने की न तो उसे जुंरत है, न इरादा? अपने उस छोटे-से गाँव में, बिल्कुल विरोधी हिन्दू समाज में, एक कच्चे घर में आपको रक्खेगा-यह बात क्या उसे आपसे बता नहीं देनी चाहिए थी? इतना दुःख उठाने को आप तैयार हैं या नहीं-यह पूछना भी क्या उसने जरूरी नहीं समझा?-उसने आँखें उठाईं। देखा-अचला चिन्तित-सी सिर झुकाए बैठी है। जवाब न मिलने पर भी सुरेश समझ गया कि उसकी बात ने असर किया है। बोला-देखिए, आपसे इस समय मैं सच ही कहूँगा। आज मैं सिर्फ अपने मित्र को बचाने का ही संकल्प लेकर आया था-वह किसी आफत में न पड़े, यही अपना उद्‌देश्य था। लेकिन यहाँ आकर देखता हूँ कि उसके बजाय आपको बचाना ही मेरा कहीं बड़ा कर्त्तव्य है। क्योंकि उसकी मुसीबत है मोल ली हुई, मगर आप अँधेरे में कूद रही हैं! अभी-अभी जब आपके पिताजी सबूत की जिम्मेदारी मुझी पर सौंप रहे थे, तो जी में आया था कि यह भार मैं न लूँगा। परन्तु अब देखता हूँ कि यह भार मुझे लेना ही पड़ेगा, नहीं तो अन्याय होगा।

अचला बोली-लेकिन सुनकर वे क्या दुःखी न होंगे?

सुरेश बोला-मगर कोई उपाय नहीं है! जिसने पाखण्डी की नाईं आपसे इतनी बड़ी प्रवंचना की है, मित्र होते हुए भी, उसकी फिक्र करने की मैं जरूरत नहीं समझता। मगर मुसीबत तो यह है कि मैं उसके गाँव का नाम भी नहीं जानता, किसी तरकीब से यदि वह जान पाया आज, तो सुबह ही वहाँ जाऊँगा, और सारे सबूत आपके पिताजी को देकर मित्र के पाप का प्रायश्चित करूँगा।

अचला ने कहा-लेकिन इतनी तकलीफ आप क्यों उठाएँ? पिताजी से कहिए-अपने किसी विश्वासी आदमी को भेजकर सब पता कर लें। चैबीस-परगने का राजपुर ग्राम कौन ज्यादा दूर है?

सुरेश ने अचरज से कहा-राजपुर? गाँव का नाम तो आप जानती हैं-देख रहा हूँ। और भी कुछ मालूम है?

अचला ने सहजभाव से कहा-आपने जो कुछ कहा, मैं भी उतना ही जानती हूँ। राजपुर के उत्तर टोले में मिट्टी का एक घर है। अन्दर तीनेक कमरे, बाहर चंडीमण्डप, उसी में गाँव की पाठशाला बैठती है।

सुरेश ने पूछा-उसकी पारिवारिक अवस्था?

अचला बोली-उसके बारे में भी आपने जो कहा, वही। नाम को जायदाद है। किसी तरह दुःख कष्ट से रोटी-भर चल जाती है।

सुरेश ने कहा-तब तो आप सब जानती हैं-देखता हूँ!

अचला बोली-इतना ही जानती हूँ, एक दिन इतना ही उनसे पूछा था। और आप तो जानते हैं-वे कभी झूठ नहीं कहते!

सारा चेहरा स्याह करके सुरेश बोला-जब सारा कुछ मालूम ही है, फिर तो आप लोगों को सचेत करने के लिये मेरा आना बड़ा वैसा हुआ। देख रहा हूँ-उसने आपको धोखा नहीं देना चाहा।

अचला ने कहा-मुझे कुछ-कुछ मालूम है, मगर आप तो मुझे बताने को आये नहीं हैं, जिन्हें बताने आये हैं, अभी तक वे कुछ भी नहीं जानते। आप कहें, तो मैं जितना-भर जानती हूँ, पिताजी को बता दूँ?

सुरेश ने उदास होकर कहा-आपकी मर्जी! लेकिन मुझे महिम को सब कुछ बताकर उससे माफी माँगनी होगी। तब मुझे कहीं चैन मिलेगा।

अचला ने पूछा-इसकी भी कोई जरूरत है क्या?

सुरेश फिर उत्तेजित हो उठा। बोला-जरूरत नहीं है? अनजाने उस पर जो झूठी तोहमत मैंने लगाई है-यह मेरा कितना बड़ा अपराध है, यह क्या आपने नहीं समझा? उसे मक्कार, झूठा-कुछ भी कहना न छोड़ा-ये बातें उसके आगे कबूल किये बिना त्राण कैसे मिलेगा?

अचला जरा देर चुप रहकर धीरे-धीरे बोली-बल्कि मेरा कहा मानिए, इसकी कोई जरूरत नहीं सुरेश बाबू! मन-ही-मन माफी माँगने के बजाय जाहिर में माफी माँगना ही बड़ी चीज है-यह मैं नहीं मानती। सुनते ही जब उन्हें पीड़ा पहुँचेगी, तो बताने से क्या लाभ? मैं बल्कि पिताजी को भी मना कर दूँगी कि वे आपकी बात उन्हें न बतायें।

सुरेश ने कहा-अच्छा! कुछ देर चुपचाप अचला की ओर देखते रहकर बोला-मैं एक बात बराबर गौर करता आ रहा हूँ, कि आपकी कोशिश यही है कि महिम को किसी भी वजह से चोट न पहुँचे। खैर, वही सही! मैं उससे कुछ भी न कहूँगा। उसके बारे में आज मेरे मन में जितनी बातें आयीं, वह भी नहीं कहना चाहता; पर एक बात आपसे कहे बिना मैं हर्गिज नहीं जा सकता।

अचला ने स्निग्ध दृष्टि से देखकर कहा-ठीक है, कहिए!

सुरेश बोला-उससे माफी न माँग पाया, पर आपसे माँग रहा हूँ। मुझे माफ करें! कहकर उसने हाथ जोड़ लिये।

-छिःछिः, यह क्या कर रहे हैं आप?-कहकर अचला ने उसके हाथ पकड़ लिये, और झट उन्हें छोड़कर कहा-यह कैसा अन्याय, कहिए तो! कहते-कहते उसका चेहरा शर्म से तमतमा उठा।

सुरेश के सारे बदन के रोयें खड़े हो आये। इस अनोखे स्पर्श, सलज्ज मुख की अनूठी लाल आभा ने लमहे भर में उसे एकबारगी बेबस बना दिया। वह नजर झुकाए, कुछ क्षण स्तब्ध होकर इसे देखते रहकर धीरे-धीरे बोला-नहीं, मैंने कोई अन्याय नहीं किया! बल्कि अपने हजारों अन्यायों में अगर कोई वाजिब काम हुआ है, तो वह वही है!! आप क्षमा कर दें, तो मेरे मन का सारा क्षोभ धुल जायेगा।

अचला कातर होकर बोली-आप ऐसी बात हर्गिज न कहें। जिन्हें आपने दो-दो बार मौत के मुँह से निकाला है...

-यह भी सुना है आपने?

-सुना है। आपसे बड़ा हितैषी उनका है कौन?

-नहीं, शायद आपके सिवा और कोई नहीं! और इसी नाते से हम दोनों...

अचला के चेहरे पर तनिक ललाई दौड़ गयी। वह बोली-हाँ, बन्धु हुए! आपने इन्हें मौत के करीब से खींच लिया है। इसलिये उनके लिये आपकी किसी भी बात को मैं अन्याय नहीं सोच सकती। आप मन में कोई क्षोभ, कोई लज्जा न रक्खें। क्षमा शब्द के उच्चारण से अगर आपको सन्तोष हो, तो मैं वह कहने को भी तैयार थी-बशर्ते कि मेरी जबान पर वह अटकता नहीं।

-खैर, जरूरत नहीं!-सुरेश उठ खड़ा हुआ-आपके पिताजी से भेंट नहीं हुई, वे शायद समझ गये। हो सकता है, महिम के साथ कभी आ जाऊँ। नमस्ते!

अचला ने हल्का हँसकर कहा-नमस्ते! लेकिन उनके साथ ही आना होगा, इसके तो कोई मानी नहीं।

-सच कह रही हैं?

-सच!

-मेरी खुशकिस्मती!-कहकर सुरेश ने फिर एक बार नमस्कार किया और चला गया।

(5)

बाहर जाने पर, मानो नशे में हो, उसका देह-मन डगमगाने लगा। तेज धूप उस समय निस्तेज होती जा रही थी। उसने गाड़ी लौटा दी और पाँव-पयादे ही चल पड़ा। ख्वाहिश यह थी कि कलकत्ते की भीड़भरी, हलचल वाली सड़कों पर अपने को एकबारगी मग्न करके, स्थिति पर जरा विचार कर ले।

अचला की शक्ल-सूरत, बनावट, भाषा, व्यवहार-शुरू से अन्त तक बार-बार याद आने लगे, और उसे अपने आप बहुत छोटा लगने लगा।

उस मुखड़े में सौन्दर्य की अलौकिकता नहीं थी; बातों में, व्यवहार में, ज्ञान और विद्या-बुद्धि का कोई वैसा अनोखापन भी कहीं नहीं छलका; फिर भी न जाने कैसे उसे ऐसा मालूम होने लगा-कि अभी-अभी वह एक ऐसी विस्मयकारी वस्तु देखकर आया है, जैसी कि आज तक कभी कहीं नजर नहीं आयी। चलते-चलते वह घड़ी-घड़ी अपने आपसे पूछने लगा-यह अचरज क्यों? किस बात ने उसे आज इस कदर अभिभूत कर दिया?

उस युवती में कोई ऐसी चीज उसने देखी, जिससे अपने आपको हीन सोचते हुए भी, उसका हृदय एक अनजानी सार्थकता से भर गया। उस युवती का वास्तविक कोई परिचय अभी तक उसे नसीब नहीं हुआ। परन्तु वह बड़ी है, बहुत ऊँची, उसे प्राप्त करना किसी भी पुरुष के लिये दुर्भाग्य नहीं-यह संशय एक बार भी उसके मन में क्यों नहीं उठता? सोचते-सोचते उसकी विचारधारा एक बार ठीक जगह पर चोट कर बैठी। उसे लगा-शिक्षा, ज्ञान, उम्र इन सभी बातों में उससे छोटी होने के बावजूद, महज कुछ क्षणों की बातचीत में उस युवती ने जो उसे इस प्रकार से पराजित कर दिया, वह सिर्फ अपने असाधारण संयम के बल से। इसलिये वह इतनी शान्त होते हुए भी इतनी दृढ़ थी, इतना सब जानते हुए भी ऐसी मौन! महिम के बारे में जब वह प्रगल्भ की नाईं बकता ही चला जा रहा था, तब वह सिर झुकाए चुप थी, सहती गयी थी-जरा देर के लिये भी चंचल होकर, तर्क और झगड़ा करके उसने अपने को छोटा नहीं बनाया। हर समय उसने अपने को जब्त किया, छिपाया, जबकि कोई भी बात उससे छिपी न थी। महिम को वह कितना प्यार करती है-यह उसने जताया जरूर नहीं; लेकिन उसकी अटूट श्रद्धा किसी प्रकार भी टूटी नहीं-यह बात उसने किस आसानी और संक्षेप से बता दी।

यह विद्या महिम से ही उसने सीखी है और अच्छी तरह सीखी है-यह बात वह खुद से बहुत बार कहने लगा तथा उसमें छुटपन से ही संयम की कमी थी, इसलिये दूसरे किसी में उसकी इतनी अधिकता देख, उसका शिक्षित, भला अन्तःकरण खुद ही उस गौरवमयी के चरणों में झुककर अपने को धन्य समझने लगा।

अनेक रास्ते-गलियों का चक्कर काटकर सुरेश साँझ के बाद घर लौटा। बैठक में कदम रखते ही उसने अवाक् होकर देखा-आँख पर हथेली रक्खे महिम एक कोच पर पड़ा है। वह उठ बैठा। बोला-आओ भाई!

अरे!-कहकर सुरेश धीरे-धीरे एक कुर्सी लेकर पास बैठ गया।

महिम गाहे-बगाहे ही आता। सो जब आता, सुरेश का स्वागत जरा बढ़ा-चढ़ाकर होता। आज लेकिन उसकी बात ही न सुनी। महिम ने हैरान होकर कहा-वहाँ पर पहुँचा तो मालूम हुआ कि तुम गये थे सोचा...

-कृपा करके एक बार दर्शन दे आऊँ! क्यों? कितने दिनों के बाद आये हो, सोच सकते हो!

महिम ने हँसकर कहा-जरूर! करूँ क्या, फुर्सत नहीं मिली। और गौर किया-गैस की रोशनी में सुरेश का चेहरा बड़ा सूखा-सा और कठोर लग रहा है। सो उसे प्रसन्न करने के ख्याल से स्निग्ध स्वर में फिर बोला-तुम्हारा बिगड़ना वाजिब है, यह मैं हजार बार स्वीकार करता हूँ। मगर यकीन मानो, सच ही समय नहीं मिलता; आजकल जरा पढ़ाई का दबाव बढ़ गया है, और सुबह-शाम कुछ ट्यूशन-

-ट्यूशन भी शुरू हो गया है?

इस बात का जवाब महिम टाल गया। बोला-मेरी तलाश में गये थे, खास कोई काम था क्या?

सुरेश ने कहा-हूँ! आज तुम नहीं आये होते, तो कल सवेरे मुझे फिर जाना पड़ता।

कारण जानने के लिये महिम उत्सुक हो रहा। बड़ी देर तक उसके पैरों के जूतों की ओर ताकते रहकर उसके बाद सुरेश बोला-इस बीच तुम शायद केदार बाबू के यहाँ नहीं गये हो?

महिम ने कहा-नहीं।

-क्यों नहीं गये, मेरी वजह से न? अच्छा, उस वचन से मैं तुम्हें बरी किये देता हूँ। मनमाना वहाँ जा सकते हो!

महिम हँसा-नहीं जाऊँगा, ऐसी प्रतिज्ञा की थी, यह तो याद नहीं आता।

सुरेश ने कहा-न हो तो ठीक ही है, फिर भी मेरी ओर से कोई बाधा हो, तो वह मैं उठा लेता हूँ।

-यह अनुग्रह है या निग्रह, सुरेश?

-तुम्हें क्या लगता है, महिम?

-सदा जो लगता है, वही!

सुरेश बोला-यानी मेरा ख्याल! है न? खैर, जो जी चाहे सोच सकते हो, मुझे कोई एतराज नहीं! फकत वह रोक मैंने हटा ली, जो मैंने लगाई थी।

-इसका कारण पूछ सकता हूँ?

-ख्याल का कोई कारण भी होता है कि तुम्हारे पूछने से ही मुझे बताना पडेगा? महिम जरा देर चुप रहकर बोला-लेकिन सुरेश, तुम्हारे ख्याल के चलते ही सारी दुनिया को रोक लग जायेगी और उठ जायेगी-ऐसा हो तो शायद अच्छा ही हो; मगर वास्तव में ऐसा होता नहीं। जहाँ तुम्हें कोई बाधा नहीं, वहाँ मुझे बाधा हो सकती है!

-यानी?

-यानी उस रोज तुमने ब्राहम महिलाओं के बारे में जो-जो कहा-मैंने उन पर सोच देखा। खैर, तुमने कहा था कि एक महीने में मेरे लिये लड़की ठीक कर दोगे, उसका क्या हुआ?

सुरेश ने नजर उठाकर कहा-गम्भीरता की आड़ लेकर महिम मजाक उड़ा रहा है। उसने भी गम्भीर होकर कहा-मैंने सोचकर देखा, यह ब्याह की दलाली अपना पेशा नहीं।-उसके बाद

हँसकर बोला-मगर मजाक छोडो। अब तक तुमने मेरी इज्जत रक्खी, इसके लिये हजार धन्यवाद! लेकिन आज मेरा हुक्म मिल गया, तो कल सुबह ही एक बार वहाँ जा रहे हो न?

-नहीं, कल सबेरे मैं घर जा रहा हूँ।

-लौटोगे कब?

-दस-पन्द्रह दिन लग सकते हैं, महीना-भर भी हो सकता है।

महीना भर? नहीं-नहीं, यह न होगा!-अचानक हाथ खींचकर अपने हाथ में लेते हुए बोला-न-न, मुझे और दोषी मत करो महिम, कल सबेरे ही तुम वहाँ जाओ! वे शायद तुम्हारी राह देख रही हैं।-कहते-कहते उसका स्वर काँप गया।

महिम के आश्चर्य का हद्दोहिसाब न रहा। सुरेश का हठात् ऐसा आवेगकंपित स्वर, ऐसा जबर्दस्त अनुरोध, और खासकर एक ब्राह्म महिला के लिये यह आदर! वह विह्नल हो उठा। कुछ देर एकटक अपने दोस्त की ओर देखते रहकर बोला-कौन मेरी राह देख रही है, सुरेश? केदार बाबू की लड़की?

सुरेश ने अपने को सम्हालकर कहा-देख भी तो सकती हैं।

महिम फिर कुछ देर तक सुरेश की ओर देखता रहा। इस बीच बे-बुलाए ब्राह्म परिवार में जाकर वह परिचित भी हो आ सकता है-यह भावना उसके मन में उग ही नहीं सकी। थोड़ी देर मौन रहकर वह बोला-भई, मैं हार मानता हूँ! तुम्हारा आज का यह व्यवहार मेरी समझ से परे है। ब्राह्म लड़की राह देख रही है-तुम्हारे मुँह से ऐसी बात का मतलब समझना मेरे लिये असम्भव है!

सुरेश बोला-ठीक है, यह बात कभी बताऊँगा। अभी यह कहो-कल एक बार जा रहे हो वहाँ?

-नहीं। कल गैरमुमकिन है! मुझे सुबह की ही गाड़ी से जाना है।

-कुछ मिनटों के लिये भी नहीं?

-नहीं, वह भी नहीं! मगर तुम्हें हुआ क्या है, यह बताओ?

-वह फिर कभी बताऊँगा-आज नहीं! अच्छा, मैं जाकर तुम्हारी खबर दे आऊँ? महिम और भी हैरान हो गया। बोला-दे आ सकते हो, लेकिन इसकी कोई जरूरत तो नहीं।

सुरेश बोला-न हो जरूरत-जरूरत ही सब कुछ नहीं है! परिचय देने से वे मुझे पहचानेंगे?

-एक बार तो जरूर पहचानेंगी।

सुरेश ने कहा-वही काफी है! तुम्हारा मित्र हूँ मैं-यह कहने से पहचान लेंगी तो?

महिम ने कहा-हाँ।

सुरेश अब जरा हँसने की कोशिश करके बोला-पहचानेंगी एक घोर ब्राह्मविद्वेषी बन्धु के नाते, न?

महिम ने कहा-लेकिन यही तो तुम्हारा प्रधान गर्व है, सुरेश!

सुरेश बोला-बेशक! कहकर कुछ काल चुपचाप माटी की तरफ ताकता रहा। अचानक उठ खड़ा हुआ। बोला-आज मुझे बेहद नींद लग रही है, महिम। मैं चला सोने। और वह अनमना-सा धीरे-धीरे चला गया।

(6)

मन-ही-मन सुरेश निःसंशय सोच रहा था, कि बात को महिम चाहे जैसे टाल जाये, पर वह उसी के अनुरोध के कारण अचला से भेंट करने को नहीं जा रहा था। प्यार चाहे वह जितना ही करता हो, मगर अभी तक एक ब्राह्म लड़की के आगे अपने बाल्य-बन्धु को छोटा नहीं दिखा सकता-ऐसी बात कल भी सुनी होती, तो गर्व से उसकी छाती दस हाथ फूल उठती। सूने बिछौने पर आज लेकिन इस बात ने उसे जरा भी आनन्द न दिया। उसे केवल यही लगने लगा-किसी-न-किसी दिन गप-शप, हँसी-मजाक में अजीब-सी होकर यह बात अचला के कानों पहुँचेगी। उस दिन सुख की गोदी में बैठी वह, अपने पति के इस निकम्मे मित्र की

विफल ईर्ष्या का कोई मतलब ही ढूँढ़ नहीं पाएगी; लेकिन मजाक में भी वह मितभाषिणी कभी कोई सवाल उससे न पूछ सकेगी। शायद मन-ही-मन हँसकर कहेगी-मिताई के अत्यन्त अभिमान से इस आदमी ने नाहक ही कितना परिश्रम किया। झूठी कुढ़न और जलन से कितना जलता रहा!

रात उसे अच्छी नींद नहीं आयी। जितनी बार नींद खुली, उतनी बार ये कड़वी चिन्ताएँ धिक्कारती हुई कह गयीं-दूसरे के लिये ऐसे सिर-दर्द का रोग तुम्हारा कब छूटेगा, सुरेश?

सुबह उठकर वह उस दिन के किसी काम में चित्त न लगा सका, और दिन चढ़ते-चढ़ते गाड़ी से केदार बाबू के यहाँ जा पहुँचा। वैरा ने बताया-बाबू अलीपुर कचहरी गये हैं, लौटने में तीन-चार घण्टे की भी देर हो सकती है। सुरेश लौटने को हुआ। पूछा-दोनों ही निकल गये हैं?

बैरा समझ न सका। बोला-यह तो मैं नहीं जानता बाबू!

सुरेश मुश्किल में पड़ गया। मकान-मालिक की गैर-मौजूदगी में उनकी जवान लड़की के बारे में पूछना-पाछना, ब्राहम परिवारों में शिष्टता के विरुद्ध है या नहीं-वह स्थिर न कर सका; लेकिन उसे जरूरत उस लड़की से ही थी। बोला-तुम्हारे मालिक को लौटने में इतनी देर नहीं भी तो हो सकती है। मैं घण्टा-आधा घण्टा इन्तजार ही कर देखूँ।

बैरे ने सुरेश को ले जाकर बैठके में बैठाया। कहा-दीदीजी हैं, उन्हें खबर दूँ?-कहकर वह जवाब के लिये ताकता रहा। उसने कल ही देखा था कि अचला इस भले आदमी के सामने होती है। मन की तीव्र उत्सुकता को जी-जान से दबाते हुए सुरेश ने कहा-उन्हें खबर दोगे? अच्छा दो; न हो तो तब तक उन्हीं से दो-एक बातें की जायें।

बैरा चला गया, और तुरन्त बगल के दरवाजे का पर्दा हटाकर अचला कमरे में आयी। सुरेश उठ खड़ा हुआ। बोला, महिम तो घर चल गया। मैंने बारहा कहा एक बार आपसे मिल ले, लेकिन नहीं आया। ऐसा ही कुछ-

अचला का चेहरा एक पल के लिये सफेद हो गया। मगर नमस्ते करके वह पास ही एक कुर्सी पर बैठ गयी, और धीरे से कहा-जाना शायद बहुत जरूरी होगा; घर में किसी की तबीयत तो नहीं खराब हुई?

नमस्कार करते देख अप्रतिभ होकर सुरेश ने प्रतिनमस्कार किया। और अपनी उत्तेजना से अचला की शान्त-गम्भीर बातों को तौलकर बेहद शर्मिन्दा हुआ। अपनी आवाज को भरसक संयत और स्वाभाविक करके बोला-जरूरत जो भी हो चाहे, वह ऐसी भयानक भी क्या हो सकती है, कि दो मिनट के लिये भी आकर आपसे कह नहीं जा सकता? फिर जब यह ठिकाना न हो कि कब लौटेगा-आप ही कहें, घर में ही उसका कौन है, जिसकी बीमारी में उसे इस तरह से जाना पड़े? मैं तो मर जाने पर भी इस तरह से नहीं जा सकता।

अचला के होंठों पर एक लजीली स्निग्ध हँसी खेल गयी। बोली-चूँकि आपकी अभी कोई हुई नहीं है, इसलिये आपने ऐसा कहा। होती तो आप भी इसी तरह उपेक्षा करके चल देते-यह मैं जोर देकर कह सकती हूँ।

कुर्सी पर जोरों की एक थाप जमाकर सुरेश ने कहा-हर्गिज नहीं! आप मुझे पहचानती नहीं, जभी ऐसा कहा; पहचानतीं, तो नहीं कह सकतीं।

अचला बोली-ठीक तो है, अब पहचान लूँगी और कोई होंगी तो जान भी सकूँगी। क्या ख्याल है?

सुरेश बोला-अलबत्! हजार बार!! इसके सिवा महिम जैसे मित्र से मैं अपनी कोई बात छिपा भी नहीं सकता, छिपाना ठीक भी नहीं समझता। कहकर हठात् उत्तेजित हो बोल उठा-आप कहती हैं कोई होगी तो जानेंगी; मगर मैं कहता हूँ-आपको बिना बताये, आपकी राय बिना लिये यह होगा ही नहीं! क्योंकि आपको महिम से अलग करके देखने की मुझमें अब मजाल नहीं; आज मेरे लिये आप दोनों अभिन्न हैं।

अचला ने सलज्ज मुखड़ा हिलाकर कहा-अच्छा तब देखा जायेगा, लेकिन वह शुभ दिन आने तक मैं आपके मित्र को दोषी नहीं ठहरा सकती, सुरेश बाबू!

सुरेश अचानक गम्भीर होकर बोला-यह आपकी मर्जी! पर मुझे जाँचने का शुभ दिन इस जन्म में आयेगा या नहीं, सन्देह है। खैर, छोड़िए उसे। आज सुबह ही आपके यहाँ क्यों हाजिर हुआ-मालूम है? कल रात मैं सो न सका-न आता तो आज भी न सो पाता, यह समझता था। मैंने बहुत अपराध किये हैं-आज एक-एक आपके सामने स्वीकार कर जाऊँगा, इसीलिये मैं आया हूँ।

सुरेश की जबर्दस्त खिलाफत अचला से छिपी न थी। इसीलिये शंकित-सी हो वह चुप देखती रही। सुरेश कहने लगा-कल शाम के बाद घर लौटकर देखता हूँ कि महिम बैठा है। हाँ, आप जरूर जानती हैं कि मैं ब्राह्मों को फूटी निगाहों, यानी ब्राह्म-समाज को वैसा अच्छा नहीं समझता।

अचला ने सिर हिलाकर कहा-हाँ, जानती हूँ!

सुरेश कहने लगा-क्यों न जानेंगी! परन्तु यह भी न भूलें कि तब मैं आपको पहचानता न था। इसीलिये मैंने महिम से आग्रह किया कि कम-से-कम एक महीना वह यहाँ न आये। जानती हैं क्यों?

अचला ने फिर सिर हिलाकर कहा-नहीं। मगर शायद आपने यह सोचा था, कि पुरुषों को कुछ भूलने के लिये एक महीना काफी है-उससे ज्यादा लगना वाजिब नहीं।

सुरेश ने विनीत भाव से इस चोट को ग्रहण कर लिया। कहा-मैं सदा का अबोध हूँ। शायद मन में ऐसा ही कुछ सोचा हो। इसके सिवा आपके खिलाफ मेरी एक खौफनाक साजिश थी। मैंने शपथ ली थी, कि एक महीने के अन्दर कहीं लड़की ठीक करके मैं महिम का ब्याह करा दूँगा। जैसे भी हो, उसे इससे रोकना है। मेरा मित्र होकर वह-एक स्त्री के मोह में समाज को छोड़कर चला जाये, यह न हो सके।

रुकी साँस छोड़कर अचला ने कहा-फिर?

उसके फीके मुखड़े की ओर देखकर सुरेश जरा मुस्कराया, कहा-उसके बाद डरने की बात नहीं। मैंने वह पाप-इच्छा छोड़ दी है-आज आपके सामने यह कबूल करता हूँ! कल रात मैंने

आपसे भेंट कर जाने के लिये उससे बड़ा अनुरोध किया। एक दिन मेरा अनुरोध उसने माना था, कल नहीं माना-आपसे मिले बिना ही वह कलकत्ते से चला गया।

अचला ने पूछा-जाने का कोई कारण बताया था?

सुरेश बोला-नहीं। काम है-बस यही!

अचला और एक निःश्वास छोड़कर मानो अपने आपसे कहने लगी-जरूरत और जरूरत! सदा से उनसे यही सुनती आयी हूँ-जरूरत ही सदा उनका सर्वस्व है।

सुरेश ने कहा-खत डालकर भी तो आपको बता सकता था। अचला ने सिर हिलाकर कहा-नहीं। खत वे नहीं लिखते।

सुरेश ने कुछ देर चुप रहकर, नजर उठाकर ताका। बोला-कभी यह भी नहीं बताता कि कौन-सी जरूरत है। उसका सुख-दुःख, भला-बुरा, सब मानो उसका अकेले का है। स्वार्थी! कभी किसी को हिस्सा न लेने दिया। इसके लिये छुटपन से वह मुझे कितना सताता आया है, इसका ठिकाना नहीं। बेरहम! लगातार उपवास कर-करके वह मेरे खाने-पहनने को विषाक्त करता रहा है। मगर कभी उसने मेरी खातिर भी, मेरे हाथ से कुछ न लिया। मुझे डर है-जिस संगदिल से मुझे कभी सुख नहीं मिला, उसके साथ आप ही क्या सुखी हो सकेंगी? देखते-ही-देखते उसकी दोनों आँखें आँसुओं से झकमका उठीं। झटपट पोंछकर, जबर्दस्ती जरा हँसते हुए बोला-मेरा बाहरी रूप देखने में बड़ा सख्त है, लेकिन अन्दर उतना ही दुर्बल। महिम इसका ठीक उल्टा है; पर तो भी हम दोनों जैसी मिताई दुनिया में शायद बहुत कम होगी!

नजर झुकाए अचला ने धीमे से कहा-मुझे मालूम है सुरेश बाबू, और यह भी जानती हूँ कि वह मिताई आज भी वैसे ही बनी है।

बचपन की सारी पुरानी स्मृतियाँ सुरेश के कलेजे में आलोड़ित हो उठीं। आँसू-रुँधे स्वर में बोला-जब मालूम ही है, तो आज मुझे यह भीख दें कि अनजाने में आप लोगों से जो दुश्मनी मैंने की, वह अपराध अब मेरे कलेजे में न बिंधे।

उसकी आवाज आवेग से फिर रुँध गयी, और इस अकुलाहट से अचला का हृदय भी मानो डोल उठने लगा। उमड़ते हुए आँसू को छिपाने के लिये मुँह फेरते ही उसने देखा-पिताजी द्वार पर आकर खड़े हुए।

सुरेश को देखकर केदार बाबू ने खुश होकर कहा-अरे, सुरेश बाबू! सुरेश ने खड़े होकर नमस्ते किया।

उन्होंने खड़े-खड़े ही पूछा-महिम की क्या खबर है? उसका तो पता ही नहीं।

सुरेश ने कहा-वह बडे जरूरी काम से, सुबह की गाड़ी से घर चला गया। मैं यही कहने आ गया।

केदार बाबू ने हैरत मे आकर कहा-घर चला गया? और अचानक जले-भुने-से कहने लगे-वह घर जाये या रहे, हमें कोई मतलब नहीं। मगर तुम बेटे, समय मिलने पर तो घर के लड़के जैसा आया करो। मुझे बड़ी खुशी होगी। मगर तुम्हारा वह मक्कार मित्ररत्न अब कभी अपना मुँह न दिखाये! भेंट हो तो कह देना। उसे हया चाहे न हो, कम-से-कम अपमान का डर तो रहे।

सुरेश गर्दन झुकाए बैठा रहा। उसके मन के भाव का अनुमान करने की कोशिश करते हुए वे बोले-नहीं-नहीं, इसमें तुम्हें शर्म महसूस करने की कोई वजह नहीं; बल्कि कर्तव्य करने का गौरव है! तुम समझ नहीं पा रहे हो कि तुमने किस बड़ी मुसीबत से हमें बचाया है, और हम किस हद तक तुम्हारे कृतज्ञ हैं।

लड़की की ओर देखकर बोले-मैं कल से ही हैरान हूँ अचला, कि उसने सुरेश जैसे लड़के से कैसे दोस्ती की थी, और वह दोस्ती उसने कायम कैसे रक्खी! थोड़ा रुककर बोले-जो यह कर सकता है, वह हम जैसे दो निरीह जीवों को छल सकता है-यह बड़ी बात नहीं-मानता हूँ मैं; मगर यह भी गजब ही है कि वह कैसा आदमी है, क्या है-मेरे जैसे प्रवीण आदमी ने भी कभी खोज-पूछ की जरूरत महसूस न की।

सुरेश बोला नहीं। वह सिर उठाकर केदार बाबू की तरफ ताक भी न सका।

जरा देर इन्तजार करके, पोशाक की ओर देखकर केदार बाबू ने कहा, मुझे बहुत-सी बातें पूछनी हैं बेटे, तुम जरा बैठो। मैं कपड़े बदल आऊँ। कहकर वे जाने लगे कि सुरेश ने कहा-मुझे देर हो चुकी है। आज मैं चलूँ, फिर कभी आऊँगा! वह व्यस्त होकर उठ खड़ा हुआ, और किसी तरह नमस्कार करके निकल पड़ा।

लेकिन अगले ही दिन वह वहाँ दिखाई पड़ा; और उसके दूसरे दिन भी, ठीक उसी समय उसकी गाड़ी की आवाज नीचे आकर थमी।

लेकिन उसके बाद वाले दिन भी जब उसकी गाड़ी की आवाज सुनाई पड़ी, तो देर हो चुकी थी। नहाने-खाने के लिये तकाजा करके अचला पिता को उठाना चाह रही थी-मगर वे उठ न सके। सुरेश को बैठाकर वे गप करने लगे।

सुरेश यह गौर कर रहा था, इसलिये मुख्तसर दो-एक बात करके ही वह उठने लगा। इतने में उसके सिर के रूखे-सूखे बालों को देखकर केदार बाबू अचानक परेशान हो उठे। बोले-तुम्हारा तो नहाना-खाना भी नहीं हुआ है, बेटे!

सुरेश ने हँसकर कहा-जी, मेरा नहाना-खाना जरा देर से ही होता है।

केदार बाबू ने सुना ही नहीं मानो, बोल उठे और पल ही में एक बारगी व्यस्त हो उठे-ऐं, नहाना-खाना नहीं हुआ। नः, अब एक मिनट भी देर न करो। यहीं नहाकर, जो बने-खा लो। बिटिया, जरा जल्दी करो, बारह बज गये। और बैरा आदि के नाम चीख-पुकार करते हुए वे निकल गये।

अचला अब तक स्थिर खड़ी थी। अब भी उसमें किसी तरह की चंचलता नहीं दीखी। पिता के चले जाने के बाद उसने धीरे से पूछा-आप हमारे यहाँ कुछ खा सकेंगे?

सुरेश ने सिर उठाकर अचला की ओर देखते रहने के बाद कहा-आपकी क्या राय है?

-आप तो कभी ब्राह्म के यहाँ खाते नहीं।

-नहीं, नहीं खाता! मगर आप लायेंगी, तो खा लूँगा! जरा ठहरकर बोला-शायद आप सोच रही हैं, मैं मजाक कर रहा हूँ। मगर नहीं। आप देंगी तो मैं सच ही खाऊँगा! कहकर वह देखने लगा।

अचला ने मुँह झुकाकर अपनी हँसी छिपायी। बोली-मैंने सच ही सोचा था कि आप मजाक कर रहे हैं। कल तक जिनके घर जाने में भी आपकी घृणा का अन्त नहीं था, आज ही उन्हीं में से एक के हाथ का छुआ खाने की प्रवृत्ति आपको कैसे होगी-मैं तो सोच ही नहीं पाती, सुरेश बाबू!

सुरेश ने मलिन मुख और दुःखे स्वर में कहा-आखिर इतनी देर के बाद आपने यही निष्कर्ष निकाला कि आपके हाथ का खाने में मुझे घृणा होगी?

अचला ने कहा-लेकिन यही सोचना तो स्वाभाविक है, सुरेश बाबू? आप जैसे एक उच्च-शिक्षित सज्जन की सदा की बँधी सामाजिक धारणा, एकाएक एक ही दिन में, अकारण ही बह जायेगी-यही सोचना क्या सहज है?

सुरेश ने कहा-नहीं, वह सहज नहीं! मगर अकारण वही है-यहीं कैसे सोच रही हैं? कारण हो भी सकता है-कहकर वह इस तरह से देखता रह गया, कि उत्तर देने में अचला बिल्कुल हैरान रह गयी। उसकी बात से उसे चोट लगी है-यह तो उसकी शक्ल देखकर ही वह समझ गयी थी, और एक तरह का हिँसक आनन्द भी उठा रही थी। लेकिन वह पीड़ा अचानक उसके चेहरे को एक बार भी राख-सा रूखा कर दे सकती है-यह उसने सोचा भी नहीं था, इच्छा भी न की थी। इसीलिये खुद भी पीड़ित होकर, जबर्दस्ती जरा हँसकर बोली-सोच देखिए, आप जैसे कठोर-प्रतिज्ञ आदमी भी. ..।

सुरेश बोला-हाँ, बह जाता है। उसका स्वर काँपने लगा। बोला-आपने एक दिन की बात कही-मगर पता है आपको, एक दिन के भूकम्प में आधी दुनिया पाताल में डूब सकती है? एक दिन कम नहीं होता? कहकर वह फिर एकटक देखता रहा। अचला डर गयी। सुरेश के चेहरे पर कैसी एक सूखी पाण्डुरता थी-कपाल की दोनों नसें लहू से फूली, आँखें दम-दम कर रही थीं-जैसे वह झपट्टा मारकर किसी चीज को पकड़ना चाहता हो।

एक तो गर्मी, तिस पर इतनी देर तक नहाना-खाना नहीं हुआ-पिछली रात बिल्कुल नींद नहीं आयी-उसके पाँव के नीचे की जमीन तक अकस्मात् मानो हिल उठी। सुर्ख आँखों को फाड़कर वह बोला-ब्राह्मों से घृणा करता हूँ या नहीं, यह जवाब ब्राह्मों को दूँगा। लेकिन आप मेरे आगे, उनसे बहुत ऊपर हैं-

उसकी उन्मादी भंगिमा से अचला डर के मारे काठ हो गयी। किसी तरह इस प्रसंग को दबा देने की नीयत से, वह डरी-सी कहने लगी-कम्बख्त बैरा-

लेकिन वह अस्फुट-धीमी आवाज, सुरेश की रोषभरी ऊँची आवाज में दब गयी। वह वैसे ही तीव्र स्वर में कहने लगा-महज दो दिनों का परिचय! बेशक! मगर जानती हैं-दिन, घण्टा, मिनट में महिम को मापा जा सकता है, सुरेश को नहीं-वह स्थान-काल से परे हैं! भूमिकम्प देखा है? जो पृथ्वी को ग्रास करता है-

व्याध से डरी हुई हिरनी-सी अचला पलक मारते उठ खड़ी हुई, और बोली-आपके नहाने का बन्दोबस्त-कहकर कदम बढ़ाते ही, सुरेश ने सहसा आगे झुककर अचला का हाथ खींच लिया। वह उत्तेजित और आकस्मिक खिंचाव सह लेना औरत के बस का नहीं। वह सुरेश के बदन पर औंधी आ गिरी। भय और विस्मय को पार कर उसने आत्र्तकण्ठ की-'बाप रे!' आवाज काँपते होंठों से निकलते-न-निकलते, सुरेश उसके दोनो हाथों को अपनी छाती में खींचकर पुकार उठा-अचला!

अचला आँखें उठाये, मूर्च्छित, मंत्रमुग्ध की भाँति देखती रही, और सुरेश भी जरा देर के लिये कुछ न बोल सका-सिर्फ उसके बेहद जलते होंठों से कैसी तो एक तीखी जलन छिटकती रही।

कुछ क्षण इसी तरह से रहकर सुरेश ने फिर एक बार अचला के दोनों हाथों को छाती से दबा-उच्छ्वसित होकर कहा-अचला, एक बार इस भूकम्प की भयानक धड़कन को अपने हाथों से अनुभव करके देखो-देखो, कैसा भीषण ताण्डव इस कलेजे के अन्दर हो रहा है। यह दुनिया के किसी भूकम्प से छोटा है? कह सकती हो-संसार की कौन जात, कौन धर्म, कौन-सा मत है, जो इस विप्लव में पड़कर भी रसातल में न डूब जायेगा?

छोड़ दीजिए, पिताजी आ रहे हैं-कहकर जबर्दस्ती अपने को छुड़ाकर, वह अपनी कुर्सी पर जाकर शान्त हो बैठी कि केदार बाबू अन्दर आकर परेशान-से बोले-देर हो गयी थोड़ी-और यह कम्बख्त बैरा जो रह-रहकर कहाँ गायब हो जाता है, पता नहीं। बेटी अचला-अरे यह क्या, तबीयत खराब है? मुँह सूखकर एकबारगी जैसे...

किसी तरह जरा हँसने की कोशिश करके बोली-तबीयत क्यों खराब होगी?

-फिर भी सिर-दर्द। जैसी गर्मी पड़ती है...

-नहीं-नहीं, मैं ठीक हूँ, मुझे कुछ नहीं हुआ है।

केदार बाबू निश्चिन्त होकर बोले-गनीमत है! चेहरा देखकर मैं डर गया था। तो तुम जरा देखो तो बिटिया, अगर...

-ठीक तो है, मैं मिनटों में सब ठीक कर लेती हूँ। मैं सुरेश बाबू से वही तो कह रही थी कि हमारे यहाँ नहाने-खाने में इन्हें एतराज तो नहीं?

केदार बाबू ने अचरज से पूछा-एतराज क्यों होगा? नहीं-नहीं, मैं तो तुमसे कही चुका सुरेश, एक दिन में मैंने तुम्हें घर के लड़के-सा समझ लिया है। घर तुम्हारा है! बेटी की ओर देखकर नाज के साथ बोले-ऐसा न होता बेटी, तो भगवान इन्हें हम ब्राह्मों के पास भेजते ही क्यों? लेकिन अब देर करना ठीक न होगा बेटे, मेरे साथ आओ, तुम्हें नहान-घर दिखा दूँ।

लेकिन केदार बाबू के आते ही सुरेश ने जो सिर झुका लिया था, सो सीधा न कर सका।

अचला ने कहा-तंग करने से क्या लाभ, बाबूजी? हो सकता है, हम ब्राह्मों के यहाँ खाने में उन्हें कोई झिझक हो। फिर अरुचि से खाने पर तबीयत खराब हो सकती है।

केदार बाबू मायूस हो गये। सुरेश बडे आदमी का लड़का ठहरा-आजाद। घर की गाड़ी पर चलता। उसे खिला-पिलाकर, जैसे भी हो, अपना बनाना ही है। अचानक उसके झुके मुखड़े की ओर नजर पड़ते ही केदार बाबू अचरज से चौंक उठे-ऐ! यह क्या सुरेश, चेहरा स्याह हो

गया है। उठो-उठो, सिर धोने में अब जरा भी देर न करो! और वे हाथ पकड़कर जबर्दस्ती उसे लिवा गये।

(7)

खा-पी चुकने के बाद, केदार बाबू ने धूप में सुरेश को हर्गिज नहीं जाने दिया। आराम के नाम पर तमाम दोपहर उसे एक कमरे में कैद रक्खा। वह आँखें बन्द किये एक कोच पर पड़ा रहा, पर किसी भी तरह सो नहीं सका। बाहर आसमान में दोपहर का सूरज जलने लगा, अन्दर आत्म-संयम की ग्लानि सुरेश की छाती में उससे भी ज्यादा तेज जलने लगी। इस तरह सारी दोपहरी बाहर-भीतर से जल-झुलस कर अधमरा-सा हो, उसने उठकर खिड़की खोली, तो बेला झुक आयी थी। केदार बाबू प्रसन्न मन अन्दर से आकर निःश्वास छोड़ते हुए बोले-आः गर्मी देख रहे हो, सुरेश? अपनी इतनी उम्र में, मैंने कलकत्ते में ऐसी गर्मी कभी नहीं देखी। नींद-वींद आयी? सुरेश ने कहा-नहीं, दिन में मुझे नींद नहीं आती।

केदार बाबू ने छूटते ही कहा-और सोना ठीक भी नहीं! सेहत को बड़ा ही नुकसान होता है। मैंने फिर भी तीन-चार बार उठ-उठकर देखा, कि पंखा वाला खींच भी रहा है या नहीं। ये कम्बख्त ऐसे शैतान होते हैं कि इधर तुम्हारी आँख लगी और उधर उन्होंने भी झपकी ली। खैर, कुछ आराम तो मिला न? मैं खूब समझ रहा था कि इस धूप में निकलोगे तो जिन्दा न रहोगे!

सुरेश चुप रहा। केदार बाबू ने एक-एक करके कमरे की खिड़कियाँ खोल दीं, कुर्सी को करीब खींचते हुए बोले-मैं सोच रहा हूँ सुरेश, झाँप-तोप की जरूरत नहीं! सारी बातें खोलकर महिम को साफ-साफ एक खत लिख दूँ। तुम क्या कहते हो?

यह सवाल सुरेश की पीठ पर चाबुक-सा लगा। वह ऐसा चौंक उठा कि देखकर केदार बाबू बोले-कठोर कर्त्तव्य कैसे करना होता है-यह तो इतने दिनों के बाद तुमने ही हमें बताया; अब पीछे लौटने से तो नहीं चल सकता, बेटे!

यह तो ठीक है।-सुरेश कुछ देर मौन रहकर बोला-लेकिन इस पर आपको अपनी लड़की की भी राय लेनी चाहिए।

केदार बाबू जरा हँसकर बोले-हाँ, सो तो चाहिए।

-वे क्या साफ-साफ लिख देने को ही कहती हैं?

केदार बाबू ने इसका सीधा जवाब न देकर कहा-हाँ, करीब-करीब वही कहिए। ऐसे मामलों में आमने-सामने सवाल-जवाब करना सबके लिये कष्टकर होता है। लेकिन वह तो सयानी है, बदस्तूर पढ़ी-लिखी है, इन बातों पर पहले ही साफ-साफ सोच नहीं लेने से यह पागलपन कहा जा सकता है-वह समझती है। सोचता हूँ-आज रात यह काम कर ही लूँगा!

सुरेश ने फीका हँसकर कहा-इतनी जल्दी क्या है? थोड़ा सोच लेना भी जरूरी है!

केदार बाबू ने कहा-इसमें सोचने की कहाँ गुंजाइश है? उसके हाथों अपनी लड़की को सौंप न सकूँगा, यह तै है-फिर इस घिनौने सम्पर्क का जितना जल्दी अन्त हो, उतना ही कल्याण!

सुरेश ने पूछा-मेरा जिक्र करना भी जरूरी है?

केदार बाबू ने हँसकर कहा-बुड्ढा हो गया, सोचते हो-इतनी भी अक्ल नहीं? तुम्हारा नाम कोई कभी न लेगा!

सुरेश ने जैसे चैन की साँस ली, पर बोला नहीं, चुप रहा। यह साँस केदार बाबू की निगाह से न बच सकी। इस बीच सुरेश के और कुछ आचरणों को गौर करके, मन में उन्होंने एक निश्चित अनुमान कर लिया था। उसके झूठ-सच की पहचान के लिये उन्होंने अँधेरे में एक ढेला फेंका। बोले-तुमने एक तो हम लोगों का बड़ा उपकार किया बेटे, मगर उससे भी बड़े उपकार की तुमसे हमें उम्मीद है। हम ब्राह्म हैं जरूर, पर वैसे ब्राह्म नहीं। और मेरी बिटिया तो मन-ही-मन अपनी माँ जैसी हिन्दू ही रह गयी है। वह हमारा ब्राह्मपना बिल्कुल पसन्द नहीं करती!

सुरेश ने अचरज से आँखें उठाकर देखा। उसकी इस मौन उत्सुकता को खास तौर से देखकर केदार बाबू कहने लगे-मैं बिटिया को सदा कुमारी नहीं रख सकता। इस विषय में, मैं तुम लोगों जैसा हिन्दू मतावलम्बी हूँ। सो एक रिश्ता जिस प्रकार तुम्हारे चलते टूटा, उसी प्रकार एक दूसरा रिश्ता तुम्हें जोड़ देना होगा, बेटे!

सुरेश ने कहा-ठीक है। मैं जी-जान से कोशिश करूँगा!

उसके चेहरे के भाव को पढ़ते-पढ़ते केदार बाबू ने सन्दिग्ध स्वर में कहा-मैं समझ रहा हूँ, समाज में इसके कारण काफी हलचल होगी। लेकिन जितनी जल्दी हो सके, अचला की शादी करके इस हलचल को दबा देना है। लेकिन एक सख्त-सी बात है, सुरेश! इतना कहकर उन्होंने दरवाजे की तरफ देखा, और करीब खिसककर, अपनी आवाज धीमी करके बोले-सख्त बात यह है कि रूप-गुण में लड़का ठीक हो तो भी हिन्दू समाज की तरह उसे पकड़कर ला दूँ-यह नहीं। वह सदा से ऐसे शिक्षा-संस्कार में पली है कि उसकी राय के बिना कुछ हो सकना मुश्किल है; और मत वह दे नहीं सकती, जब तक दोनों में ऐसा कुछ-समझ गये न सुरेश?

बातों में सुरेश कुछ अनमना-सा हो गया था। प्रेम के इस इशारे ने, मानो फिर नये सिरे से आघात पहुँचाकर उसे अचेतन कर दिया। दोपहर में अपने उस उच्छृंखल प्रेम-निवेदन के भद्दे आचरण की याद करके, बेहद शर्म से उसका मुखड़ा लाल होने के बजाय काला पड़ गया। और सुबह का जो अखबार पाँवों के पास पड़ा था, उसे उठाकर वह विज्ञापन वाला पृष्ठ देखने लगा।

केदार बाबू ने यह हरकत देखी, और इस आकस्मिक भाव-परिवर्तन का बिल्कुल उलटा मतलब लगाकर मन-ही-मन बहुत खुश हुए। अच्छा मौका देखकर एक खासी शह लगा दी। कहा-मैं यह एक अजीब बात शुरू से देखता आया हूँ सुरेश, कि पता नहीं क्यों, किसी को जीवन भर के लिये पास पाकर भी उस पर रत्ती-भर विश्वास नहीं होता, और किसी को महज दो घण्टे के लिये भी करीब पाकर लगता है-इसके हाथों अपनी जान तक सौंपी जा सकती है। लगता है-सिर्फ दो घण्टे की नहीं, जन्म-जन्म की जान-पहचान है-जैसे तुम! कितनी देर का परिचय है तुमसे?

ठीक उसी समय अचला वहाँ आयी, सुरेश ने एक पल के लिये नजर उठायी, और फिर अखबार में ध्यान लगा दिया।

-बाबूजी, आप इस समय चाय पियेंगे या कोको?

-मैं कोको ही लूँगा, बेटी!

-सुरेश बाबू, आप तो चाय लेंगे न?

आँखें अखबार पर ही गड़ाए रखकर सुरेश ने धीमे से कहा-मुझे चाय ही दीजिए।

-आपके प्याले में चीनी कम तो नहीं लगेगी?

-नहीं, जितनी आम तौर से सबको लगती है, उतनी ही।

अचला चली गयी। केदार बाबू ने बातों के टूटे छोर को जोड़कर कहा-यही समझो न सुरेश, अपनी बिटिया के लिये ही-इस बुढ़ापे में मुझे मुसीबत में पड़ना पड़ा। यह बात तो तुमसे छिपा नहीं सका! वरना अपनी आफत-मुसीबत की कहानी भी कोई किसी के कानों तक जाने देता है? जो मुझसे कभी न बना, इतने हित-मित्रों के होते, वह सिर्फ तुम्हीं को कहते क्यों हिचक नहीं हो रही है? क्या समझते हो कि इसका कोई गूढ़ कारण नहीं है?

सुरेश ने अचरज से नजर उठायी और देखता रहा। केदार बाबू कहने लगे-यह ईश्वर का निर्देश है-मेरी क्या मजाल कि छिपाऊँ! मानना ही पड़ेगा! कहकर उन्होंने कुर्सी पर एक चपत जमायी।

लेकिन उनकी इस लम्बी भूमिका के बाद भी, बेटी के लिये उनकी आफत-मुसीबत किस हद तक पहुँची-सुरेश इसका अन्दाजा न कर सका। इसके बाद केदार बाबू विस्तार से वर्णन करने लगे, कि कैसे उनका आॅर्डर-सप्लाई का उतना बड़ा कारोबार, महज धोखा और कृतघ्नता की आग में जलकर राख हो गया। फिर भी अडिग धीरज से वे खड़े रहे, तथा खर्च-कर्ज बढ़ते जाने पर भी, बेटी को पढ़ाने-लिखाने के खर्च में कभी कटौती नहीं की। वे कहने लगे-कुछ डिग्री जारी होने के डर से मेरा खान-पान जहरीला हो गया, और खुदरा महाजनों के तकाजों के मारे जीना मुहाल; तो भी मैंने मुँह खोलकर किसी से कुछ न कहा, क्योंकि यहीं कलकत्ते में ही अपने ऐसे-ऐसे बहुत-से दोस्त पड़े हैं, जो बात-की-बात में ये बकाया चुका सकते हैं।

जरा देर थमकर उन्होंने जाने क्या सोचा और कह उठे-मगर तुम्हें जो बताया, इसमें मुझे जरा भी सुकचाहट न हुई। यह क्या ईश्वर का स्पष्ट आदेश नहीं है? कहते हुए उन्होंने दोनों हाथ कपाल से लगाकर प्रणाम किया।

सुरेश को भगवान का विश्वास न था। उसने बूढ़े के इस उच्छ्वास में साथ नहीं दिया, बल्कि उसका मन कैसा तो छोटा हो गया। अधीर होकर पूछा-कितना कर्ज है आप पर?

केदार बाबू ने कहा-कर्ज? मेरा कारोबार चलता होता, तो यह भी कोई कर्ज था? बहुत होगा तो तीन-चार हजार! वे और भी कुछ कहने जा रहे थे, कि बैरा के साथ चाय और खुद जलपान का सरंजाम लिये अचला आयी।

गरम कोको का एक घूँट लेकर खुशी की एक अव्यक्त-सी आवाज करते हुए, प्याले को मेज पर रखते हुए बोल उठे-अपने ऊपर भगवान की यह अनोखी कृपा मैं शुरू से देखता आया हूँ, कि वे मुझको कभी बेइज्जती में नहीं पड़ने देते। अब मैंने यह समझा कि कहूँ-कहूँ करते हुए भी, महिम से यह कह क्यों नहीं पाता था-मानो वे बार-बार मेरी जुबान को दबा दिया करते थे।

सुरेश ने प्याले पर नजर रखकर कहा-आपको ये रुपये कब चाहिए? केदार बाबू ने फिर कोको का प्याला मेज पर रखते हुए कहा-जरूरत दरअसल मुझे नहीं सुरेश, तुम लोगों को है! और वे जरा ऊँची किस्म की हँसी हँसे। इस पहेली को समझ नहीं पाकर सुरेश ने मुँह उठाकर देखा-देखा कि अचला जिज्ञासु-सी अपने पिता की ओर ताक रही है। उन्होंने एक बार बेटी को, एक बार सुरेश को देखकर कहा-इसका मतलब समझना कुछ कठिन तो नहीं! आखिर इस घर को मैं अपने साथ तो ले नहीं जाऊँगा। यह अगर गया, तो तुम्हारा हो जायेगा, और रहा तो तुम्हीं दोनों का रहेगा! कहकर वे धीरे-धीरे हँसने लगे।

उन दोनों की आँखें मिल गयीं, और पल में दोनों ने लाली दौड़ आये मुँह को झुका लिया।

कोको के दो प्याले खत्म कर लेने के बाद केदार बाबू को एक जरूरी चिट्ठी लिखने की याद हो आयी। वे तुरन्त खड़े हो गये। बोले-आज तुम्हें खाने की बड़ी तकलीफ हो गयी सुरेश,

कल दोपहर को यहीं खाना! इस तरह न्योता देकर, पच्छिम की तरफ का दरवाजा खोलकर वे अपने कमरे में चले गये।

खुले दरवाजे में डूबते हुए सूरज की लाल आभा सुरेश के चेहरे पर आकर पड़ी। गर्दन फेरकर उसने देखा-अचला एकटक उसको देख रही है, उसने झट नजर झुका ली। घड़ी की टिक-टकी के सिवा सारे कमरे में सन्नाटा था।

(8)

कमरे के मौन को मोड़ते हुए सुरेश ने कहा-एकाएक मैं एक अजीब हरकत कर बैठा।

अचला कुछ बोली नहीं।

सुरेश ने फिर कहा-मैं आपको जरूर एक राक्षस-सा लग रहा हूँ! लगता है, अकेले बैठने की हिम्मत नहीं हो रही आपको। है न? और वह खींच-खींच कर हँसने लगा। अचला ने अब भी सिर नहीं उठाया। लेकिन कहीं उठाती तो देख पाती, कि सुरेश की वह कोशिश करके हँसी गयी विफल हँसी, उसके अपने ही मुखड़े को बार-बार अपमानित करके शर्म से विकृत बना रही है।

सारे कमरे में फिर सन्नाटा छा गया, और दीवाल-घड़ी की टिक-टिक ही स्तब्धता को मापती रही। कुछ देर में यह कठोर नीरवता जब असह्य हो उठी, तो अपनी सारी देह की नसें और कड़ी करके सुरेश ने कहा-देखिये जो घटना हो गयी, उसके बाद अब आँखों की शर्म की गुंजाइश नहीं। बेला जाती रही, अब मैं जाऊँगा। पर जाने से पहले दो-एक बातों का जवाब सुन जाना चाहता हूँ। देंगी आप?

अचला ने सिर उठाया। आँखें उसकी पीड़ा से भरी थीं। बोली-कहिये।

सुरेश कुछ क्षण स्थिर रहकर बोला-आपके पिताजी का कर्ज चुका देने के लिये कल-परसों कभी आऊँगा। लेकिन जरूरी नहीं कि आपसे भेंट हो। मैं यह जानना चाहता हूँ कि हम दोनों के बारे में उनका इरादा क्या है, यह आप जानती हैं?

अचला बोली-वे मुझे स्पष्ट कुछ नहीं बताते।

सुरेश बोला-मुझे भी नहीं। फिर भी मुझे यकीन है कि-मगर आप शायद राजी न होंगी?

अचला ने कहा-नहीं!

-कभी नहीं?

अचला ने नजर झुकाकर कहा-नहीं!

-लेकिन महिम की उम्मीद न रहे, तो?

अचला ने अविचलित स्वर से कहा-इसकी उम्मीद तो नहीं ही है!

सुरेश ने पूछा-शायद तो भी नहीं?

अचला ने मुँह नहीं उठाया, लेकिन वैसे ही शान्त और दृढ़ कण्ठ से कहा-नहीं, तो भी नहीं!

सुरेश कोच पर लुढ़क गया और निःश्वास छोड़कर बोला-खैर, इससे यह तो साफ हो गया। जान में जान आयी!! कहकर कुछ देर चुप रहा, और फिर सीधा बैठकर बोला-लेकिन मैं इस मुश्किल को सोच रहा हूँ कि फिर आपके पिताजी का कर्ज कैसे चुकेगा?

अचला ने डरते हुए-से, जरा सिर उठाकर बड़े ही संकोच के साथ कहा-अब तो शायद आप दे नहीं सकेंगे?

नहीं दे सकूँगा क्यों?-सवाल करके सुरेश तीखी व्याकुल दृष्टि से देखता रहा। उत्तर का कुछ देर इन्तजार करके हँसा। लेकिन अबकी उसकी हँसी में खुशी न हो, पर बनावट भी न थी। बोला-देखिये, परिचय की घड़ी से ही मेरे जो व्यवहार रहे, उन्हें भद्र तो नहीं कहा जा सकता-यह मैं भी जानता हूँ; मगर मैं उतना गिरा हुआ भी नहीं हूँ! आपके पिताजी को मैंने रुपये घूस में नहीं देना चाहा था, मुसीबत में मदद के रूप में ही देना चाहा था। लिहाजा, देना आपकी राय पर निर्भर नहीं है। वह निर्भर है उनके लेने पर! अब वे रुपये लेंगे कैसे...मैं यही सोच रहा हूँ! बल्कि आइये, इस पर हम जरा राय-विचार कर लें।

अचला ने कहा-कहिए।

सुरेश ने कहा-देवकृपा से बहुत-बहुत रुपये का मालिक हूँ मैं। और रुपये-पैसे पर कभी मुझे किसी तरह का मोह नहीं रहा है। चारेक हजार रुपये मैं मजे से दे सकता हूँ। और आपके सुख के लिये तो ज्यादा भी गँवा सकता हूँ। खैर, आपके पिताजी का ख्याल है कि इन रुपयों को चुकाने की जरूरत न होगी। जबकि एक तरह से यह चुकाना ही होगा! समझ गयी?

सिर हिलाकर अचला ने अस्फुट स्वर में कहा-जी।

सुरेश ने कहा-मैं साफ कर रहा हूँ, मेरी साफगोई को अन्यथा न समझें। खूब समझ रहा हूँ कि रुपयों की उन्हें सख्त जरूरत है, मगर इतने रुपये चुकाने की उनकी अवस्था नहीं है। गरचे मेरी तरफ से कोई जरूरत भी नहीं-अच्छा यह तो आसानी से हो सकता है-परसों तक आप अपना इरादा उन पर जाहिर न करें, तो कोई गड़बड़ी न रहे। क्यों, बनेगा आपसे यह?

अचला उसी तरह सिर झुकाए बैठी रही। सुरेश ने कहा-आपने रुपयों के लोभ से राय नहीं दी, इससे मेरी श्रद्धा और भी बढ़ गयी। बल्कि आप राजी हो गयी होतीं तभी शायद मैं डर से पीछे हट जाता। मेरे लिये असम्भव कुछ भी नहीं। मैं चला।-सुरेश हँसते हुए खड़ा होकर बोला-कहने को अपना मुँह नहीं रहा, तो भी जाने की घड़ी में आपसे एक भीख माँगता हूँ-मेरे अपराधों को याद न रक्खें।-जरा आगा-पीछा करके बोला-नमस्ते। बुराई का जहाज लादकर मैं चला, मगर मैं पिशाच भी नहीं। खैर, एतबार करने का जब कोई उपाय नहीं रहने दिया, तो अभी कहना बेकार है!-और दोनों हाथ उठाकर नमस्कार करके वह तेजी से निकल गया।

धीरे-धीरे उसके पेरौं की आहट सीढ़ियों पर खो गयी। अचला ने उसे सुना, और फिर अकारण ही उसकी आँखों से टपाटप आँसू की बूँदे चूने लगीं।

अन्दर आते हुए केदार बाबू ने पूछा-सुरेश?

अचला ने झट आँसू पोंछकर कहा-अभी-अभी चले गये।

केदार बाबू ने चकित होकर कहा-अच्छा, मुझसे मिले बिना ही चला गया? जाते वक्त तुमने कल यहाँ आने की बात याद दिला दी थी?

अप्रतिभ होकर अचला ने कहा-मुझे याद नहीं रहा, पिताजी।

याद नहीं रहा? खूब!-कहकर केदार बाबू पास की चैकी पर निश्चेष्ट भाव से बैठ गये। बेटी की दबी आवाज से उनके मन में खटका-सा हुआ, लेकिन साँझ के धुँधलके में चेहरा न देख पाने के कारण वह टिकाऊ न हुआ। बोले-इस बुढ़ापे में जो काम खुद न करूँ, जिधर खुद नजर न रक्खूँ-वही नहीं होगा, उसी में कोई-न-कोई भूल रह जायेगी। चलूँ, बैरे के हाथों तुरन्त उसे लिख भेजूँ। उसके घर का पता क्या है?

-पता तो मुझे नहीं मालूम, बाबूजी!

यह भी नहीं मालूम? अच्छा!-केदार बाबू फिर कुर्सी पर बैठ गये। लेकिन तुरन्त रुखाई से बोल उठे-अपने हाथ-पाँव तुम खुद काट डालना चाहती हो, तो काटो, मुझे रोकने को नहीं पड़ी! इतना तो कम-से-कम सोचना चाहिए कि जो एक बात पर इतने-इतने रुपये देने को तैयार हो गया, वह आदमी किस किस्म का है? उसका पता भी नहीं पूछ रखना चाहिए? तुम जैसे-जैसे बड़ी हो रही हो, कैसी तो हुई जा रही हो अचला-कहकर उन्होंने एक लम्बा निःश्वास छोड़ा।

कर्ज के जाल में फँसे पिता जिस झूठ और हीनता से आत्म-रक्षा की कोशिश कर रहे थे-अचला यह सब देख रही थी। उससे उसके मन को चोट पहुँचती, पर यह सब चुपचाप सहा करती। अब भी कोई जवाब देकर उसने इस खीझ का कोई प्रतिवाद नहीं किया। लेकिन मन में यही कल्पना करके केदार बाबू को राहत मिली कि वह लज्जित और पीड़ित हुई।

बैरा बत्ती जलाकर दे गया। उन्होंने स्नेह की झिड़की देकर कहा-तुमने महिम की कभी खोज-पूछ भी न की। खैर, न ली, अच्छा ही किया। भगवान जो करते हैं, भले के लिये करते हैं! मगर सुरेश के बारे में तो यह लागू नहीं हो सकता। देखा नहीं, मानो ईश्वर हाथ पकड़ कर स्वयं इसे पहुँचा गये।

अचला ने पूछा-आप क्या सुरेश बाबू से रुपये कर्ज लेंगे?

केदार बाबू की भगवद्भक्ति अचानक बाधा पाकर विचलित हो उठी। बेटी की ओर देखकर बोले-हाँ-ना कर्ज तो नहीं। जानती हो बेटी, बात यह है कि सुरेश बड़ा भला है; आजकल ऐसा भला लड़का लाखों में कहीं एक मिलता है। उसकी भीतरी इच्छा है कि कर्ज के चलते यह मकान बेहाथ न हो जाये। रहेगा तो तुम्हीं लोगों का रहेगा, मैं अब कै दिन को हूँ, समझी?

अचला चुप रही। केदारबाबू उत्साहित हो बोल उठे-तुम तो जानती हो, मैं सदा साफ बात पसन्द करता हूँ! अन्दर और मुँह में और-यह मुझसे नहीं होने का!! इसीलिये खोलकर कह दिया कि अब सब जान-सुनकर महिम के हाथों तुम्हें सौंपने से पानी में फेंकना बेहतर है। सुरेश की भी जब यही राय है, तब कहना ही पड़ेगा कि उसके दोस्त से तुम्हारी शादी की बात दूर तक फैल चुकी है; ऐसे में रिश्ता तोड़ने से ही न चलेगा, नया ठीक भी करना होगा-नहीं तो समाज में मुँह दिखाना मुश्किल होगा। किन्तु जो कहो लड़का अच्छा है सुरेश! मैं मंगलमय को इसीलिये बार-बार प्रणाम करता हूँ।

पिता का प्रणाम करना जब निर्विघ्न सम्पन्न हो गया, तो अचला ने धीरे-धीरे कहा-इनसे इतना रुपया न लें, तो क्या न चले बाबूजी?

केदार बाबू शंका से चौंक उठे। बोले-लिये बिना चलने का जो नहीं, बेटी!

-मगर हम चुका जो नहीं सकेंगे।

चुकाने की बात क्या सुरेश-उद्विग्न आशंका से बूढ़े बात को खत्म ही न कर सके। उनका समूचा चेहरा सफेद हो गया। उनकी यह शक्ल देखकर अचला को तकलीफ हुई। झूठ बोली-वे कह रहे थे, परसों आकर वे रुपये दे जायेंगे।

-चुकाने की बात...

-नहीं, यह उन्होंने नहीं कहा।

-लिखा-पढ़ी...

-नहीं, इसकी शायद उन्हें बिल्कुल फिक्र नहीं।

यही बात!-कहकर, तृप्ति की रुँधी साँस झट फेंककर वे कुर्सी पर लेटे से बैठे, और आँखें बन्द करके दोनों पैर सामने की मेज पर रख दिये। आनन्द और आराम से उनका सर्वाú मानो कुछ देर के लिये शिथिल हो गया। कुछ देर उसी तरह से रहे, फिर पैर नीचे उतार कर दमकते स्वर में बोले-अब सोच तो देखो बेटी, कहाँ से क्या हुआ? इसमें उस सर्व-शक्तिमान् का हाथ क्या साफ नहीं देख रही हो? अचला चुपचाप पिता के मुँह की ओर ताकती रही। जवाब का इन्तजार न करके वे बोले-मैं साफ देख पा रहा हूँ कि यह केवल उनकी दया है! तुमसे क्या बताऊँ बिटिया, ये दो साल में एक भी रात ठीक से सो नहीं सका हूँ। केवल उन्हीं को पुकारता रहा हूँ। और सुरेश को देखते ही लगा-यह मानो मेरे उस जन्म की सन्तान है!

अचला चुप बैठी रही। पिता की गिरी हुई आर्थिक दशा वह जानती थी; लेकिन अन्दर-अन्दर वह इस हद तक पहुँच चुकी थी, यह नहीं मालूम था। दो साल की एकान्त प्रार्थना से मंगलमय की कृपा हुई भी-और अचानक वह समस्या हल भी हुई, तो उसी का अपना मसला बड़ा पेचीदा हो गया। सुरेश से रुपया न लेने के बारे में अभी-अभी उसने जो संकल्प किया था; उस संकल्प को छोड़ना पड़ा। इसमें जरा भी बाधा देने की बात वह सोच नहीं सकी। जो भी हो, रुपया लेना ही पड़ेगा!

केदार बाबू सन्ध्योपासना के लिये चले गये। अचला शुरू से अन्त तक सारी घटनाओं को दुहराकर निष्कर्ष के लिये वहीं बैठी रह गयी।

उसके जीवन के सन्धिस्थल पर जो मित्र अगल-बगल आकर खड़े हैं, उनमें से एक को तो ‘जाओ’ कहकर विदाई देनी ही पड़ेगी, इसमें एक तिल भी सन्देह नहीं। मगर किसे? कौन है वह? जो महिम उसके निःसन्देह विश्वास पर, पता नहीं किस कर्त्तव्य की पुकार से निश्चिन्त-बेखटके बैठा है, उसका शान्त मुखड़ा याद करते ही अचला की आँखें भर आयीं। जिसने कभी कोई अपराध नहीं किया, फिर भी जाओ कहते ही वह चुपचाप चला जायेगा-इस जिन्दगी में किसी भी बहाने, किसी भी नाते वह कभी उनके पथ में नहीं आयेगा। अचला को स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा, कि इस अभावनीय विदाई की अन्तिम घड़ी में भी उसकी अटूट गम्भीरता विचलित नहीं होगी; वह किसी को दोष नहीं देगा, शायद

कारण तक न जानना चाहेगा; गहरे विस्मय और गूढ़ वेदना की एक लकीर शायद उसके चेहरे पर झलके, मगर उसके सिवा कोई उसे देख भी न पायेगा।

उसके बाद एक दिन वह सुनेगा कि मेरा विवाह सुरेश से हुआ। उस समय असावधानता में ही शायद एक लम्बा निःश्वास छूट पड़ेगा, या कि जरा मुस्कराकर ही वह अपने काम में लग जायेगा! इस बात को सोचकर सूने कमरे में भी लज्जा और घृणा से उसका चेहरा लाल हो उठा

(9)

दस-बारह दिन बीत गये। केदार बाबू का रवैया देखकर लगता-इतनी स्फूर्ति शायद उनमें जवानी में भी न थी। आज साँझ से पहले सिनेमा देखकर लौटते हुए, गोल-दीघी के आस-पास हठात् गाड़ी से उतर पड़ने को तैयार होकर बोले-सुरेश, मैं यहाँ से समाज चला जाऊँगा-पैदल; तुम लोग घर जाओ, बेटे! और हाथ की छड़ी को घुमाते हुए वे तेजी से चले गये। सुरेश ने कहा-तुम्हारे पिताजी की तबीयत आजकल खूब अच्छी है, लगता है!

अचला उधर को ही ताक रही थी; बोली-जी हाँ, आपकी कृपा से। गाड़ी मोड़ पर मुड़ी और वे ओझल हो गये। सुरेश ने अचला के दायें हाथ को अपनी छाती पर खींचकर कहा-तुम्हें पता है, इस बात से मुझे दुःख होता है। क्या इसीलिये तुम बार-बार कहा करती हो!

अचला जरा फीका हँसकर बोली-कहीं इतनी बड़ी दया भूल जाऊँ, इसीलिये बार-बार याद करती हूँ। आपको दुःखाने के लिये नहीं कहती!

उसकी हथेली को जरा-सा दबाकर सुरेश ने कहा-इसीलिये मुझे चोट ज्यादा लगती है।

-क्यों?

मैं खूब समझता हूँ कि सिर्फ इस दया को स्मरण करके ही तुम मन में बल पाती हो। इसके सिवा तुम्हारा और कोई भी सम्बल नहीं, सच है या नहीं?

-अगर न कहूँ?

-इच्छा न हो तो मत कहो। लेकिन मुझको कभी 'तुम' नहीं कह सकोगी?

अचला का मुख मलिन हो गया। सिर झुकाए धीरे-धीरे बोली-कभी कहना पड़ेगा, यह तो आप जानते हैं।

उसके उदास मुखड़े को देखकर सुरेश ने निःश्वास फेंका-मगर जब यही होना है, तो दो दिन पहले कहने में ही कौन-सा गुनाह है?

अचला ने उत्तर नहीं दिया। अनमनी-सी रास्ते की तरफ देखती रही। मिनट-भर चुप रहकर सुरेश अचानक बोल उठा-मुझे लगता है, महिम को सब मालूम हो गया है।

चौंककर अचला ने मुँह फेरा। उसका एक हाथ अब तक सुरेश के हाथ में ही था। उसे खींच कर पूछा-आपने कैसे जाना?

उसकी आकुल आवाज सुरेश के कानों में खट् से लगी! बोला-नहीं तो अब तक वह जरूर आता! पन्द्रह-सोलह दिन हो गये न?

अचला ने सिर हिलाकर कहा-आज को मिलाकर उन्नीस दिन हुए। अच्छा, पिताजी ने क्या उन्हें कोई पत्र लिखा है-मालूम है आपको?

सुरेश ने संक्षेप में कहा-नहीं, नहीं मालूम।

-वे घर से लौटे या नहीं, जानते हैं?

-नहीं, यह भी नहीं जानता।

अचला ने फिर गाड़ी से बाहर देखते हुए कहा-तो फिर खत लिखकर उन्हें सब बताना पिताजी के लिये उचित है। किसी दिन अचानक आकर हाजिर न हो जायें।

फिर कुछ देर के लिये दोनों नीरव हो रहे। सुरेश ने फिर एक बार उसके शिथिल हाथ को अपने हाथ में लेकर धीरे-धीरे कहा-मुझे सबसे बड़ा डर इस बात का लगता है, अचला-जब

मैं सोचता हूँ कि तुम कभी मुझे श्रद्धा तक नहीं कर सकोगी। मुझे सदा यही लगेगा कि रुपये के बल पर मैं तुम्हें छीन लाया हूँ-दोष यही हुआ!

अचला ने इधर झट से मुँह फेर कर बाधा देते हुए कहा-आप ऐसी बात न कहें-आपको मैं दोष नहीं दे सकती!-जरा रुककर बोली-रुपये का जोर संसार में हर जगह है, यह तो जानी हुई बात है; मगर वह जोर आपने तो नहीं लगाया। पिताजी चाहे न जानें, पर सब कुछ जानते हुए मैं अगर आप पर अश्रद्धा करूँ, तो मुझे नर्क में भी जगह नहीं मिलेगी।

सुरेश की सदा की फितरत है-जरा-सी बात पर ही वह विगलित हो उठता। अचला के इसी छोटे-से प्यारे वाक्य पर उसकी आँखों में पानी भर आया। उस पानी को अचला के हाथ से पोंछ कर उसने कहा-यह न सोचो कि इस अपराध, इस अन्याय का परिणाम मैं नहीं समझ सकता हूँ। मगर मैं दुर्बल हूँ। बहुत ही दुर्बल! यह चोट महिम सह लेगा; मेरा कलेजा मगर टूक-टूक हो जायेगा।-कहते हुए मानो किसी जोर के धक्के को सम्हाल लिया, इस तरह से बोला-तुम मेरी नहीं, और किसी की हो-यह बात मैं सोच ही नहीं सकता। तुम्हें नहीं पाऊँगा-यह सोचते ही मेरे पाँवो के नीचे की जमीन तक खिसकने लगती है।

रास्ते पर गैस की बत्तियाँ जलायी जा रही थीं। उनकी गली में गाड़ी के घुसते ही सुरेश के चेहरे पर रोशनी पड़ी, और उसकी छलछलाती आँखें अचला को दिखाई पड़ गयीं। क्षणिक दयावश वह वही कर बैठी, जो कभी नहीं किया। सामने झुककर अपने हाथ से उसका आँसू पोंछती हुई बोली-मैं पिताजी की बात से कभी बाहर नहीं। मुझे तो उन्होंने तुम्हारे ही हाथों सौंपा है।

अचला के उस हाथ को अपने होंठों पर ले जाकर बार-बार चूमते हुए सुरेश कहने लगा-मेरे लिये यही सबसे बड़ा पुरस्कार है अचला-इससे ज्यादा नहीं चाहता! लेकिन इतने से मुझे वंचित न करो!

गाड़ी घर के सामने खड़ी हुई। साईस दरवाजा खोलकर हट गया। सुरेश उतरा, और उसने जतन से हाथ पकड़ कर अचला को उतारा, तथा एक साथ दोनों ने देखा-ठीक सामने महिम खड़ा है। नजर पड़ते ही पल में दोनों मानो पत्थर हो गये।

दूसरे ही क्षण अचला ने अव्यक्त आर्त-स्वर में न जाने क्या एक शब्द कहकर जोर से अपना हाथ खींच लिया, और पीछे हट गयी।

विस्मय से महिम हत-बुद्धि हो गया। बोला-सुरेश, तुम यहाँ? पहले तो सुरेश के मुँह से बात न फूटी। उसके बाद बिल्कुल फक पड़े चेहरे पर सूखी हँसी खींच कर बोला-वाह महिम! उसके बाद से लापता! बात क्या है? कब आये? चलो-चलो, ऊपर चलो! कहकर पास जाकर अचला का हाथ हिलाकर कहा-मगर आपके पिताजी ने यह खूब किया। अपने तो गये समाज, और पहुँचाने का भार पड़ा इस गरीब पर। खैर, अच्छा ही हुआ! नहीं तो महिम से शायद भेंट ही न होती। घर में इतने दिन कर क्या रहे थे, कहो तो?

महिम ने कहा-काम था!-मारे अचरज के उसे अचला को नमस्ते करने की भी सुध न रही।

उसे जरा धक्का-सा देकर सुरेश बोला-जो भी हो, आदमी खूब हो तुम! हम लोग तो डर से कातर थे। चिट्ठी भी देते न बना। खड़े क्यों रहे? ऊपर चलो! कहकर उसे जबर्दस्ती ढकेल कर ही ऊपर ले गया। लेकिन जब वे बैठके में जाकर बैठे, तो अचानक उसकी अस्वाभाविक प्रगल्भता एक-बारगी थम गयी। गैस की तेज रोशनी मे उसका चेहरा स्याह हो उठा। दो-तीन मिनट कोई कुछ न बोला। महिम ने सूनी आँखों एक बार अपने दोस्त और एक बार अचला को देखकर सूखे स्वर में पूछा-सब ठीक तो है?

अचला ने गर्दन हिलाकर जवाब दिया, बोली नहीं।

महिम बोला-मैं तो बेहद हैरान हूँ! मगर सुरेश से तुम लोगों का परिचय कैसे हुआ?

अचला सिर उठाकर मरी-सी होकर बोली-इन्होंने पिताजी के चार हजार का कर्जा अदा कर दिया है। उसका मुँह देखकर महिम के मुँह से सिर्फ इतना ही निकला-उसके बाद?

इसके बाद तुम पिताजी से पूछना-कहकर अचला तेजी से अन्दर चली गयी। महिम कुछ देर बैठा रहा, और अन्त में मित्र से बोला-माजरा क्या है सुरेश?

सुरेश ने उद्धत भाव से जवाब दिया तुम्हारी तरह रुपया ही मेरी जान नहीं है। भले आदमी आड़े वक्त में मदद माँगते हैं, तो मैं देता हूँ, बस इतना ही। वे चुका न सकें तो आशा है वह

मेरा दोष नहीं। इतने पर भी अगर मुझे ही दोषी ठहराओ, तो हजार बार ठहरा सकते हो, मुझे आपत्ति नहीं!

मित्र की यह बेसिर-पैर की सफाई और उसके कहने की ऐसे अनोखे ढंग से महिम वास्तव में मूढ़ होकर देखता रहा और अन्त में कहा-एकाएक मैं तुम्हें ही क्यों दोषी बनाऊँगा? इसका कोई मतलब मेरी समझ में नहीं आया, सुरेश! कृपा करके जब तक खोलकर न कहो, तो कैसे समझ सकता हूँ?

सुरेश ने उसी रुखाई से कहा-खोलकर क्या बताऊँ-बताने को है ही क्या?

महिम ने कहा-है! मैं जिस दिन घर जा रहा था, तब तुम इन लोगों को पहचानते न थे। इसी बीच ऐसी घनिष्ठता कैसे हो गयी, और एक ब्राह्म परिवार की मुसीबत में चार-चार हजार रुपये देने की यह उदारता ही मन में कैसे आयी-इतना ही मुझे समझा दो तो मैं कृतार्थ होऊँ!

सुरेश ने कहा-सो हो सकता है। लेकिन मुझे अभी बात करने का समय नहीं है। मैं अभी चलता हूँ। इसके सिवा केदार बाबू से ही पूछ लेना न, कहने के लिये तो वे बैठे ही हुए हैं।

ठीक है!-कहकर महिम उठ खड़ा हुआ-सुनने का बड़ा कौतूहल था, फिर भी उनके इन्तजार में बैठने का अभी समय नहीं है। मैं जाता हूँ-

सुरेश फिर बैठा रहा; कुछ बोला नहीं।

बाहर आकर महिम को नजर आया-सामने की रेलिंग पकड़ कर उसी तरफ देखती हुई, अँधेरे में अचला खड़ी है। लेकिन करीब आने या बात करने की उसने कोई कोशिश नहीं की। यह देखकर वह भी सीढ़ी से नीचे उतर गया।

(10)

महिम कुछ जरूरी दवाएँ खरीदने के लिये कलकत्ते आया था, लिहाजा रात ही की गाड़ी से लौट गया। सुरेश ने खोज-पूछ से जाना कि महिम उसके घर नहीं पहुँचा-चारेक दिन बाद,

केदार बाबू के बैठक में बैठकर यही चर्चा शायद हो रही थी। केदार बाबू को बाइस्कोप का नया नशा सवार हुआ था। तै था, कि आज भी चाय पीकर वे लोग निकलेंगे। सुरेश की गाड़ी बाहर खड़ी थी। ऐसे समय, किसी बुरे ग्रह की तरह अकस्मात् महिम आकर दरवाजे के पास खड़ा हुआ।

सबने नजर उठाकर देखा, और सबके चेहरे पर परिवर्तन-सा दिखाई दिया।

केदार बाबू ने विरस मुख से, जबर्दस्ती जरा हँसकर अगवानी की-आओ महिम! खबर सब ठीक है?

नमस्कार करके महिम अन्दर आकर बैठा। घर में इतनी देर होने का कारण पूछे जाने पर उसने सिर्फ यह कहा कि जरूरी काम था। सुरेश ने मेज पर से उस दिन का अखबार उठा कर पढ़ना शुरू कर दिया। और अचला बगल की चैकी पर से सिलाई उठा कर उसमें लग गयी। इसलिये बात सिर्फ केदार बाबू से होने लगी।

अचानक बीच में एक मिनट के लिये अचला उठकर बाहर गयी, और तुरन्त अन्दर आ गयी। जरा ही देर बाद सिर के ऊपर का पंखा खींचा जाने लगा। अचानक हवा जो लगी सो खुश होकर केदार बाबू बोल उठे-गनीमत है, इतनी देर में कम्बख्त पंखे वाले की कृपा तो हुई!

सुरेश ने तीखी और टेढ़ी निगाहों से देख लिया-महिम के कपाल पर पसीने की बूँदे जम आयी हैं। क्यों अचला उठकर बाहर गयी, और अचानक पंखे वाले की दया कैसे हो गयी-सारा कुछ लम्हे-भर में बिजली की तरह उसके मन में खेल गया; और जिस हवा से केदार बाबू खुश हुए थे, उसी हवा से उसका सर्वांग जलने लगा। अचानक वह गला खोलकर बोल उठा-पाँच बज गये। और देर करने से न चलेगा, केदार बाबू?

केदार बाबू ने बातचीत बन्द करके चाय के लिये चीख-पुकार मचायी, कि बैरा सारा सरंजाम लेकर पहुँचा। सिलाई छोड़कर, प्याले में चाय बनाकर पिता और सुरेश की ओर बढ़ाते ही केदार बाबू ने पूछा-तुम नहीं पिओगी बेटा?

अचला ने गर्दन हिलाकर कहा-नहीं, बड़ी गर्मी है।

अचानक महिम पर नजर पड़ते ही वे व्यस्त-से होकर बोल उठे-अरे, महिम को नहीं दी? तुम नहीं पिओगे महिम?

महिम जवाब दे, इसके पहले ही अचला ने मुड़कर उसकी ओर देख स्वाभाविक मृदुता से कहा-न, इतनी गर्मी में तुम चाय मत लो! फिर इस वक्त तो तुम्हें चाय बर्दाश्त भी नहीं होगी।

महिम की छाती पर से किसी ने मानो दुर्वह पत्थर का बोझ, जादू के बल से उठाकर फेंक दिया। वह बोल न सका, सिर्फ अव्यक्त विस्मय से एकटक देखता रहा। अचला बोली-जरा देर सब्र करो, मैं लाइम-जूस का शरबत बनाकर लाती हूँ-और सम्मति का इन्तजार किये बिना ही चली गयी। सुरेश एक तरफ को मुँह घुमाकर चाभी वाले खिलौने-सा चाय पीता रहा जरूर, पर चाय की एक-एक बूँद उसे विस्वाद और कड़वी लगने लगी।

चाय पीकर केदार बाबू झटपट कपड़े बदल आये। आकर देखा-अचला बैठी-बैठी ध्यान से सिलाई कर रही है। उन्होंने आश्चर्य से कहा-बैठी सिलाई ही कर रही हो, तैयार नहीं हुई?

अचला ने शान्त-भाव से कहा-मैं नहीं जाऊँगी!

-नहीं जाओगी? यह कैसी बात?

-नहीं, आज आप लोग जाइये। मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।-कहकर वह जरा हँसी।

कुढ़न और क्रोध को दबाकर सुरेश ने कहा-चलिये केदार बाबू, आज हम लोग चलें! उनकी शायद तबीयत ठीक नहीं। जबर्दस्ती से क्या लाभ?

उसे देखते ही केदार बाबू उसके अन्दर के क्रोध को भाँप गये। बेटी से पूछा-तुम्हें कुछ हुआ है?

अचला ने कहा-मैं ठीक ही हूँ।

सुरेश महिम की तरफ पीठ करके खड़ा था। उसके मुँह के भाव को गौर नहीं किया; बोला-चलिये हम चलें! उन्हें घर में कुछ काम हो सकता है-जोर करके ले जाने की क्या जरूरत है?

केदार बाबू ने कठोर स्वर से पूछा-घर में कोई काम है?

अचला ने सिर हिलाकर कहा-नहीं।

केदार बाबू चिल्ला पड़े-मैं कहता हूँ ,चल!! जिद्दी लड़की!!

अचला के हाथ की सिलाई छूट कर नीचे गिर गयी। वह स्तम्भित-सी, आँखें बड़ी-बड़ी करके पहले सुरेश फिर पिता को ताककर, एकाएक मुँह घुमाकर तेजी से चली गयी।

सुरेश ने स्याह मुखड़ा लिये कहा-आप तो सब बात में जोर-जबरदस्ती करते हैं। मगर मैं अब देर नहीं कर सकता, इजाजत दें तो मैं जाऊँ।

अपने अभद्र आचरण से केदार बाबू मन-ही-मन लज्जित हो रहे थे-सुरेश की बात से नाराजहो गये। मगर वह नाराजगी पड़ी महिम पर। वह बहुत ही दुःखी और क्षुब्ध होकर उठना ही चाहता था कि केदार बाबू ने कहा-तुम्हें कोई काम है, महिम? महिम अपने को जब्त करके उठते हुए बोला-नहीं।

केदार बाबू चलने को उद्यत होकर बोले-तो आज हम लोग जरा व्यस्त हैं, फिर कभी आने से-

महिम ने कहा-जैसी आज्ञा! आऊँगा। लेकिन आने की कोई आवश्यकता है?

सुरेश को सुनाकर केदार बाबू ने कहा-मुझे अपने लिये कोई जरूरत नहीं। लेकिन जरूरत समझो तो आना; कुछ बातों पर चर्चा की जायेगी।

तीनों जने बाहर निकल पड़े। नीचे आकर महिम की तरफ सुरेश ने ताका तक नहीं; वह केदार बाबू को लेकर गाड़ी पर सवार हो गया। कोचवान ने गाड़ी हाँक दी।

महिम कुछ ही दूर बढ़ा था, कि पीछे से अपने नाम की पुकार सुनकर खड़ा हो गया। देखा-केदार बाबू का बैरा है। वह बेचारा हाँफता हुआ उसके पास आया, और कागज की एक चिट उसके हाथ पर रख दी। उस पर पेंसिल से सिर्फ अचला लिखा था। बैरा ने कहा-उन्होंने बुलाया है।

महिम लौटा। सीढ़ी पर पाँव धरते ही देखा-अचला सामने खड़ी है। उसकी लाल आँखों की पलकें अब भी गीली थीं। पास जाते ही बोली-तुम क्या अपने कसाई मित्र के हाथों मुझे जिबह के लिये छोड़ गये? जिसने तुम्हारे साथ इतनी बड़ी कृतघ्नता की, तुम मुझे उसके हाथों छोड़ कर कैसे जा रहे हो? और वह झर-झर रो पड़ी।

महिम काठ का मारा-सा खड़ा रहा। दो-एक मिनट में आँखें पोंछकर वह बोली-मुझे शर्माने का समय अब नहीं रहा! तुम्हारा दायाँ हाथ देखूँ? और खुद उसका दाहिना हाथ खींचकर उसने अपनी अँगुली से सोने की अँगूठी निकाल कर उसे पहना दी। बोली-मैं और सोच नहीं सकती। अब जो करना है, तुम करो! इतना कहकर उसके पाँवों तक झुककर उसने प्रणाम किया और चली गयी।

महिम ने भला-बुरा कुछ न कहा-बड़ी देर तक रेलिंग पर भार देकर चुप खड़ा रहा, और फिर धीरे-धीरे उतरकर चल गया।

(11)

साँझ के बाद सिर झुकाए जब महिम अपने डेरे की तरफ लौट रहा था, तो उसकी शक्ल देखकर किसी को कुछ कहने की मजाल न थी। उस समय उसका प्राण, पीड़ा से बाहर आने के लिये उसी के हृदय की दीवारों को खोद रहा था। कैसे सुरेश वहाँ पहुँचा, कैसे इतना घनिष्ठ हो गया-इसका विस्तृत इतिहास अभी उसे मालूम जरूर नहीं हो सका था, लेकिन असली बात अब उसकी अजानी न थी। केदार बाबू को वह चीद्दता था। उन्हें जहाँ रुपये की बू मिली है, वहाँ से वे सहज ही पलट नहीं सकते-इसमें कोई सन्देह नहीं। सुरेश को भी वह छुटपन से, बहुत रूपों में देखता आया है। दैवात किसे वह प्यार करता है, उसे पाने के लिये वह क्या नहीं दे सकता-यह कल्पना करना भी मुश्किल है। रुपया तो कोई चीज ही नहीं,

यह तो उसके लिये सदा से तुच्छ रहा है। कभी उसी के लिये उसने मुँगेर की गंगा में अपनी जान की भी ममता नहीं की। आज अगर वह किसी दूसरे के प्रेम के प्रबलतर मोह में अपने उसी महिम का ख्याल न करे, तो वह उसे दोष कैसे दे? फलस्वरूप सारी घटना उसे एक मार्मिक दुर्घटना-सी लगने के अलावा उसने किसी को दोष नहीं दिया। लेकिन यह जो इतनी-इतनी प्रचण्ड विरोधी शक्तियाँ सहसा जाग उठी हैं; इनको रोककर अचला उसके पास लौट सकेगी-यह विश्वास उसे न था; इसीलिये अचला की अन्तिम बातों, अन्तिम आचरण ने क्षण भर के लिये चंचल करने के सिवा उसे कोई भरोसा नहीं दिया। अँगूठी की तरफ बार-बार देखकर भी उसे सान्त्वना नहीं मिली-फिर भी आखिरी फैसला तो जरूरी ही ठहरा! अपने को इस तरह भुलाकर तो अब एक पल भी नहीं चल सकता। होना है सो हो, इसका अन्तिम निर्णय वह जरूर ही कर लेगा-यही संकल्प करके वह अपने गरीब छात्रावास में रात के आठ बजे के बाद पहुँचा।

दूसरे दिन, तीसरे पहर वह केदारबाबू के यहाँ गया, तो पता चला-अभी-अभी वे लोग बाहर चले गये-कहीं न्योता है। उसके दूसरे दिन भी जाने पर भेंट नहीं हुई। बैरा ने कहा-सब बाइस्कोप देखने गये हैं, लौटने में देर होगी। सब कौन-बिना पूछे भी महिम समझ गया। अपमान और अभिमान चाहे जितना बड़ा हो, लगातार दो दिनों तक निराश लौट आना ही उसके जैसे आदमी के लिये काफी हो सकता था; लेकिन हाथ की अँगूठी ने उसे डेरे पर टिकने नहीं दिया, तीसरे दिन फिर उसे ठेलकर वहाँ भेजा। आज खबर मिली-बाबू घर में हैं, बैठक में बैठकर चाय पी रहे हैं। महिम को कमरे के पास देखकर, केदारबाबू ने गम्भीर स्वर में कहा-आओ महिम! महिम ने हाथ उठाकर नमस्ते किया।

वहाँ से कुछ दूर पर, खुले झरोखे के पास एक सोफा पर अगल-बगल अचला और सुरेश बैठे थे। अचला की गोद में तस्वीरों की एक भारी किताब थी; दोनों तस्वीरें देख रहे थे। सुरेश ने नजर उठाकर देखा और फिर तस्वीर देखने में मशगूल हो गया; लेकिन अचला ने उलट कर देखा भी नहीं। उसका झुका हुआ मुखड़ा देखा नहीं जा सका, पर वह अपनी किताब के पन्नों पर जिस आग्रह से झुकी थी, कि ऐसा सोचना असंगत नहीं कि पिता की आवाज, आगन्तुक के पैरों की आहट, कुछ भी उसके कानों तक न पहुँची।

महिम अन्दर जाकर एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। केदार बाबू बड़ी देर तक कुछ न बोले-थोड़ी-थोड़ी करके चाय पीने लगे। प्याला जब खत्म हो चुका और चुप रहना जब निहायत नामुमकिन हो गया तो प्याले को रखते हुए बोले-तो अब क्या कर रहे हो? कानून का परीक्षाफल निकलने में तो, लगता है अभी महीने-भर की देर है!

महिम सिर्फ बोला-जी हाँ!

केदार बाबू बोले-मान लिया कि पास ही कर गये-और पास तुम होंगे, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं-लेकिन कुछ दिन प्रैक्टिस करके कुछ रुपया जमा किये बिना तो और किसी तरफ मन को दौड़ा नहीं सकते। क्या ख्याल है, सुरेश, महिम की पारिवारिक हालत तो, सुनते हैं, अच्छी नहीं है!

सुरेश बोला नहीं। महिम जरा धीरे-धीरे हँसकर बोला-प्रैक्टिस करने से ही रुपये जमेंगे-इसका भी तो कोई ठिकाना नहीं?

केदारबाबू ने सिर हिलाकर कहा-नहीं, सो तो नहीं है-ईश्वर की मर्जी! लेकिन कोशिश से असम्भव कुछ भी नहीं!! हमारे शास्त्रकारों ने कहा है-पुरुषसिंह-तुम्हें वही पुरुषसिंह होना होगा। और किसी भी तरफ नजर नहीं रहे-बस उन्नति और उन्नति! उसके बाद घर बसाओ, जो जी चाहे करो, कोई दोष नहीं-नहीं तो महापाप! कहकर सुरेश की ओर एक बार देखकर बोले-क्यों सुरेश, परिवार को खिला-पहना न सकूँ, बच्चों को लिखा-पढ़ा न सकूँ-इसी तरह से तो हिन्दू लोग जहन्नुम में गये! हम ब्राह्म-समाजी भी अगर अच्छा आदर्श न दिखा पायें, तो सचमुच दुनिया के सामने मुँह तक न दिखा सकूँगा-ठीक है या नहीं? क्यों सुरेश?

सुरेश पहले की तरह ही मौन रहा। महिम मन-ही-मन असहिष्णु होकर बोला-आपके उपदेश को मैं याद रखूँगा! लेकिन आपने क्या मुझे इसी की चर्चा के लिये बुलाया था?

केदार बाबू उसके मन की बात समझ गये। बोले-नहीं, और भी बात है; लेकिन-कहकर उन्होंने सोफे की तरफ देखा।

सुरेश ने खड़े होकर कहा-तो हम लोग उस कमरे में जाकर बैठें! उसने झुककर अचला की गोद से तस्वीर वाली किताब उठा ली। उसका यह इशारा लेकिन अचला के आगे बिल्कुल बेकार हो गया। वह जैसी बैठी रही; बैठी रही उठने का उसमें कोई लक्षण ही न दिखाई दिया। केदार बाबू ने कहा-तुम दोनों जरा उस कमरे में जाकर बैठो बिटिया! मुझे महिम से कुछ बात करनी है।

अचला ने मुँह उठाकर पिता की ओर देखकर कहा-मैं रहूँ, बाबू जी?

सुरेश ने कहा-ठीक है, न हो मैं ही जाता हूँ। और एक प्रकार से नाराज होकर, हाथ की किताब उसकी गोद में फेंककर वह जोर से कमरे से निकल गया।

इस हुक्म-उदूली से बेटी पर केदार बाबू खुश नहीं हुए-यह उन्होंने चेहरे के भाव से साफ बता दिया। मगर जिद भी नहीं की। कुछ देर रंज होकर बैठे रहे; फिर कहा-महिम, तुम यह मत सोचो कि मैं तुमसे ऊबा हुआ हूँ; बल्कि तुम पर मेरी काफी श्रद्धा ही है! तभी एक बन्धु की नाईं सलाह दे रहा हूँ, कि इस समय किसी प्रकार की जिम्मेदारी कन्धे पर लादकर अपने को निकम्मा न बना लो। अपनी तरक्की करो, कृती बनो; फिर यह बोझ लेने का काफी समय मिलेगा।

महिम ने मुँह घुमाकर एक बार अचला की ओर देखा। देखते ही उसने नजर झुका ली। इस पर उसने केदार बाबू की ओर देखकर कहा-आपका आदेश सिर-आँखों! मगर आपकी बेटी की भी क्या यही राय है?

केदार बाबू छूटते ही कह उठे-बेशक! बेशक!! जरा देर वे स्थिर रहे और बोले-कम-से-कम इतना तो निश्चित है कि सारा कुछ जान-सुनकर, मैं तुम्हारे पल्ले बाँधकर बेटी को बहा नहीं दे सकता!

महिम ने शान्त स्वर से कहा-अँग्रेजों में एक प्रथा है-ऐसी हालत में वे एक-दूसरे के लिये इन्तजार करते हैं। मैं क्या आपका वही अभिप्राय मानूँ?

केदार बाबू जल-से उठे। बोले-सुनो महिम, तुम्हारे सामने शपथ लेने को मैंने तुम्हें नहीं बुलाया है! तुमने हमारे साथ जैसा सलूक किया है, और कोई बाप होता तो महाभारत मच जाता! पर मैं निहायत शान्ति चाहने वाला आदमी हूँ, कोई शोर-गुल, कोई हंगामा नहीं पसन्द करता। जहाँ तक सम्भव है, मीठी बातों से ही तुम्हें अपना इरादा बता दिया। अब तुम इन्तजार करोगे या नहीं-अँग्रेज लोग क्या करते हैं-इतनी कैफियत से हमें कोई मतलब नहीं! फिर हम अँग्रेज नहीं, बंगाली हैं; लड़की के बड़ी हो जाने से हमें नींद नहीं आती, खाना रहीं रुचता। यह तुम्हीं क्या नहीं जानते हो?

महिम का चेहरा और आँखें सुर्ख हो आयीं, मगर अपने को जब्त करके उसने धीर भाव से कहा-मैंने ऐसा क्या सलूक किया, कि और कोई होता तो महाभारत मच जाता-यह सवाल मैं आपसे नहीं पूछना चाहता! केवल आपकी बेटी के मुँह से एक बार यह सुनना चाहता हूँ, कि उनका भी यही अभिप्राय है या नहीं! और वह खुद उठकर अचला के पास गया-क्यों, यही तो?

अचला ने न सिर उठाया, न बात की।

उमड़ते हुए एक उच्छ्वास को पीकर महिम ने फिर कहा-एकान्त में तुम्हारी मंशा जानने-पूछने का मुझे मौका नहीं मिला-इसके लिये मैं क्षमा चाहता हूँ। उस दिन शाम को सनक में तुम जो कर बैठी थीं, उसके लिये भी तुम्हें जिम्मेवार न बनाऊँगा!! सिर्फ एक बार यह कहो, कि यह अँगूठी तुम वापस चाहती हो या नहीं?

आँधी की तेजी से कमरे के अन्दर आकर सुरेश ने कहा-मुझे माफ करना पड़ेगा केदार बाबू, अब एक मिनट भी ठहरने का समय मेरे पास नहीं है!

जो मौजूद थे, सबने अचरज से नजर उठाकर देखा। केदार बाबू ने पूछा-क्यों?

सुरेश ने नाटकीय भंगिमा से कहा-नहीं-नहीं, मेरी इस गलती के लिये माफी नहीं। मेरा अन्तरंग मित्र प्लेग से मरणासन्न है, और मैं यहाँ बैठा-बैठा नाहक ही समय बर्बाद कर रहा हूँ।

केदार बाबू ने घबराकर पूछा-कहते क्या हो सुरेश? प्लेग? तुम वहाँ जाओगे क्या?

सुरेश हँसकर बोला-बेशक! बहुत पहले ही मेरा वहाँ जाना उचित था।

केदार बाबू शंकित होकर बोले-मगर प्लेग है! वे क्या तुम्हारे ऐसे कोई खास आत्मीय है?

सुरेश ने कहा-आत्मीय? आत्मीय से बहुत बड़ा, केदार बाबू! महिम को कटाक्ष करके उसने यही पहली बार बात की-महिम, अपने निशीथ को कल रात से ही प्लेग हुआ है। जियेगा-यह आशा नहीं है। तुमसे भी बता देना उचित है-चलोगे उसे देखने?

महिम इस निशीथ को पहचान नहीं सका। पूछा-कौन निशीथ?

कौन निशीथ? कह क्या रहे हो महिम? इसी बीच तुम निशीथ को भूल गये? जिसके साथ तुम सारा सेकेण्ड-इयर पढ़ते रहे, ऐसी आफत की घड़ी में उसे भूल गये?-कहकर उसने अचला की तरफ देखकर व्यंग्य के स्वर में कहा-याद भी क्यों आये? प्लेग है न !

महिम ने इस व्यंग्य को चुपचाप सहकर पूछा-वे क्या भवानीपुर से आया करते थे?

सुरेश ने व्यंग्य से ही जवाब दिया-हाँ वही! मगर निशीथ तो दो-चार थे नहीं, कि अब तक तुम्हें याद नहीं आया। पूछता हूँ-चलोगे?

अब पहचान कर उसने पूछा-निशीथ इन दिनों कहाँ रहता है?

सुरेश बोला-और कहाँ? अपने घर, भवानीपुर में! ऐसे आड़े वक्त एक बार उससे मिलना क्या अपना कर्त्तव्य नहीं लगता तुम्हें? मैं डॉक्टर ठहरा, मुझे तो जाना ही पड़ेगा; और वैसी मिताई भूल नहीं गये हो तो तुम भी मेरे साथ चल सकते हो! केदार बाबू, मेरा ख्याल है-आप लोगों की बात खत्म हो चुकी। आशाा है, थोड़ी देर के लिये इसे फुर्सत दे सकेंगे।

यह व्यंग्य किस पर है-समझ न पाने के कारण केदार बाबू-कभी महिम और कभी बेटी की ओर उद्‌विग्न होकर ताकने लगे। अपने धनी भावी दामाद का मान-अभिमान किस बात में और कब तुनक पड़ता है-यह वे आज भी समझ न सके। उनके मुँह से बात न निकली;

महिम भी काठ का मारा-सा देखता रहा। देखते-देखते अचला का चेहरा लाल हो उठा। वह धीरे-धीरे हाथ वाली किताब को मेज पर रखकर इतनी देर के बाद बोली-तुम्हें तो जाना ही चाहिए; मगर इनकी कानून की किताब में तो प्लेग का निदान नहीं लिखा है! ये किसलिये जायें?

इस एकबारगी अप्रत्याशित जवाब से सुरेश अवाक् हो गया। मगर दूसरे ही क्षण बोल उठा-मैं वहाँ डाक्टरी करने नहीं जा रहा हूँ; उसे डॉक्टरों की कमी नहीं है! मैं जा रहा हूँ, मित्र की सेवा करने!! मिताई को मैं अपनी जान से भी बड़ा मानता हूँ!!

एक निष्ठुर हँसी की झलक अचला के होंठों पर झलक आयी; बोली-हर आदमी तुम्हारी ही तरह महान होगा-ऐसी तो कोई बात नहीं! मिताई का इतना बड़ा बोध उन्हें न हो, तो मैं लज्जा का कारण भी नहीं समझती!!! जो भी हो, वहाँ इनका जाना हर्गिज न होगा!!!

सुरेश का चेहरा काला पड़ गया। केदार बाबू शंकित हो उठे। भय से कहने लगे-यह सब तू क्या कह रही है, अचला? सुरेश जैसा-सच ही तो-निशीथ बाबू जैसे. ..

अचला ने टोककर कहा-निशीथ बाबू को पहले तो ये पहचान ही नहीं सकूँ। फिर वे डॉक्टर हैं, वे जा सकते हैं। लेकिन दूसरे को नाहक ही मुसीबत में खींच ले जाना क्या?

चोट खाने पर सुरेश को होश नहीं रहता। उसने मेज पर जोरों की मुट्ठी मारी, और जो मुँह में आया, चिल्लाकर वही बोल उठा-मैं डरपोक नहीं, जान को डरता नहीं मैं! महिम की ओर इशारा करके बोला-इस नमकहराम से ही पूछ देखो, दो-दो बार मैने इसे मरने से बचाया या नहीं?

अचला ने जोर भरे शब्दों में कहा-नमकहराम ये हैं? खूब! मगर जिसे एक बार बचाया, कभी जी में आया तो उसका शायद खून भी कर दिया!!

केदार बाबू किंकर्त्तव्यविमूढ़-से बोल उठे-रुक भी अचला! ठहरो सुरेश! यह सब क्या है?

सुरेश ने लाल-लाल आँखों से केदार बाबू की ओर देखकर कहा-मैं प्लेग के पास जा सकता हूँ इसमें हर्ज नहीं! महिम की जान ही जान है, मेरी कुछ नहीं!!! देख लिया न आपने?

लज्जा और क्षोभ से अचला रो पड़ी। रुँधे स्वर में कहने लगी-जो अपनी जान देना चाहते है वे दें, मैं रोक नहीं सकती, किन्तु जहाँ रोकने का मुझे पूरा अधिकार है, वहाँ मैं जरूर रोकूँगी! मैं इन्हें वैसी जगह हर्गिज नहीं जाने दे सकती!! कहकर वह वहाँ से जाने लगी, कि केदार बाबू चीख उठे-जा कहाँ रही है अचला?

अचला ठिठक गयी। बोली-नहीं बाबू जी, रात-दिन इतना जुल्म अब मुझसे बर्दाश्त नहीं होता! जो बिल्कुल गैरमुमकिन है, प्राण रहते जो मैं कदापि नहीं कर सकूँगी-उसी के लिये तुम लोग रात-दिन मुझे बेध रहे हो!! उमड़ती हुई रुलाई को दबाती हुई वह कमरे से बाहर चली गयी। बूढ़े केदार बाबू हतबुद्धि-से जरा देर ताकते रहे, फिर बोले-सब बच्चे-से जुटे हैं-यह सब क्या है? कहो तो?

(12)

एक महीना के करीब बीता। केदार बाबू राजी हो गये-अगले रविवार को महिम से अचला की शादी तै पायी गयी। उस दिन सुरेश जैसी हरकत कर गया, वह सचमुच ही केदार बाबू के कलेजे में चुभी थी। लेकिन यह नहीं कि उसी अपमान को तौलकर-अन्त में महिम पर प्रसन्न होकर उन्होंने हामी भरी हो सुरेश खुद ही जाने कहाँ गायब हो गया, तब से आज तक उसका कोई पता ही नहीं। ऐसा सुनने में आया-वह कहीं पश्चिम चला गया है; कब लौटेगा? कोई नहीं जानता!

उस दिन अपनी रुलाई को दबाने के लिये अचला जब कमरे से बाहर चली गयी, तो बड़ी देर तक स्याह मुँह किये तीनों जने बैठे रहे थे। फिर बात पहले सुरेश ने ही की। केदार बाबू की तरफ मुखातिब होकर उसने कहा-मगर आपको आपत्ति न हो, तो आपके सामने ही मैं आपकी लड़की से दो-एक बातें कहना चाहता हूँ।

केदार बाबू ने कहा-बखूबी! तुम बात कहोगे, इसमें आपत्ति कैसी सुरेश? सब बचपने की बात-

तो फिर उसे बुलाइए, मुझे ज्यादा फुर्सत नहीं है!

उसके चेहरे और कण्ठ-स्वर की गम्भीरता से केदार बाबू के मन में शंका हुई! मगर जबर्दस्ती जरा हँसकर फिर वही टेक ले बैठे-सब बचपने की बात! उसे जरा सम्हलने का मौका दिये, बिना.... समझ गये सुरेश? यह प्लेग-प्लेग के नाम से ही-औरत का जी ठहरा न? सुना नहीं कि होश फाख्ता-समझ गये बेटे-

किसी तरह की कैफियत पर ध्यान देने जैसी मन की अवस्था सुरेश की न थी-वह अधीर होकर बोल उठा-सच मानिए, इन्तजार करने का मुझे बिल्कुल अवकाश नहीं!

सो तो है! सो तो-अरे, कौन है?-कहकर उन्होंने आवाज दी। कनखियों से महिम को देखा। महिम ने खड़े होकर नमस्ते किया और चुपचाप बाहर चला गया।

केदार बाबू खुद जब अचला को बुलाकर ले आये, तब पश्चिम के झरोखे-दरवाजे से, तीसरे पहर के सूरज की रंगीन किरणें कमरे-भर में बिखर गयी थीं। उस आभा में निखरी हुई इस युवती के दुबले-छरहरे बदन की ओर देखकर, पल के लिये सुरेश के कुढ़े मन में एक मोह और पुलक का स्पर्श खेल गया-लेकिन वह स्थायी न हो सका। उसके चेहरे पर नजर पड़ते ही उसका वह भाव तुरन्त काफूर हो गया। फिर भी उससे आँखें हटाते न बना, अपलक उसे देखते हुए स्तब्ध बैठा रहा। अचला के मुँह पर आसमान का प्रकाश नहीं पड़ रहा था, पर सामने की दीवार से छिटककर आती हुई ज्योति में उसका मुखड़ा, सुरेश को ब्रोंज की कठोर मूर्ति-सा लगा। उसने साफ देखा कि कैसी तो एक गहरी वितृष्णा ने उसकी सारी मधुरता, सारी कोमलता को सोख लिया है,और उसके मुख की एक-एक रेखा तक को-अडिग दृढ़ता से एक बारगी धातु की तरह सख्त कर दिया है। अचानक केदार बाबू के एक गहरे निःश्वास के आघात से सुरेश चौंक उठा, और सीधा बैठ गया।

केदार बाबू ने फिर अपनी वही पुरानी बात दुहराई-सब पागलपन, किससे क्या कहूँ? मैं सोच नहीं पाता-

अचला को लक्ष्य करके सुरेश खासी गम्भीरता से बोला-आप जो कह गयीं, वही ठीक है?

अचला ने सिर हिलाकर कहा-हाँ!

-इसमें कोई परिवर्तन की गुंजाइश नहीं?

अचला ने सिर हिलाकर कहा-नहीं!

खून के एक उबाल ने आग की लहक-सा-सुरेश के आँख-मुँह को चमका दिया; लेकिन वह आवाज को संयत करके ही बोला-जब मेरी जान की ही कोई कीमत नहीं, तभी मैं समझ रहा था।-उसकी छाती उस समय अन्दर से जल रही थी। कुछ देर स्थिर रहकर वह फिर बोला-अच्छा, यह पूछता हूँ-मैं ही क्या पहला शिकार हूँ कि और भी बहुत-से लोग जाल में फँसकर सिर-मुड़वा चुके हैं।

असह्य विस्मय से अचला ने आँखें बड़ी-बड़ी करके देखा। सुरेश ने केदार बाबू से कहा-सुना है, बाप-बेटी मिलकर शिकार फँसाने का व्यापार विलायत में नया नहीं है; मगर आपसे मैं यह भी कहे देता हूँ केदार बाबू, आपको किसी दिन जेल जाना पड़ेगा!

केदार बाबू चीख उठे-तुम यह सब क्या कर रहे हो सुरेश?

सुरेश ने उसी दृढ़ता के साथ कहा-चुप भी रहिए केदार बाबू, नाटक का अभिनय बहुत दिनों से चल रहा है। पुराना पड़ गया। मैं अब इससे बहलने का नहीं! रुपये मेरे गये, बला से-बदले में सबक भी कम नहीं मिला!! मगर काश यही अन्तिम हो!!!

अचला रो उठी-आपने इनके रुपये लिये क्यों बाबूजी ?

केदार बाबू एक टुकड़ा सादा कागज के लिये इधर-उधर हाथ बढ़ाते फिरे; आखिरकार एक पुराने अखबार को ही उठाकर चिल्ला उठे-मैं अभी हैण्ड नोट लिखे देता हूँ।

सुरेश ने कहा-रहने दीजिए, इस लिखा-पढ़ी की जरूरत नहीं! आप रुपये चुकायेंगे, सो मैं जानता हूँ। लेकिन उन थोड़े से-रुपयों के लिये नालिश करके मैं अदालत में खड़ा न हो सकूँगा।

जवाब देने के लिये केदार बाबू लगातार होंठ हिलाने लगे, पर एक भी शब्द न निकला।

सुरेश ने घूमकर अचला की तरफ देखा। उसके पीले-पड़े चेहरे और गीली आँखों को देखकर उसे बूँद भर दया न आयी, बल्कि अन्दर की ज्वाला सौ गुनी बढ़ गयी। वह पैशाचिक निष्ठुरता से बोल उठा-नाज करने लायक तुममें है क्या अचला, यही तो मुँह की खूबसूरती, यही तो लकड़ी का शरीर, यही रंग! फिर भी मैं लट्टू था-वह क्या तुम्हारे रूप से? ऐसा ख्याल भी न करना!

पिता के सामने ऐसे बेहया अपमान से, अचला दुःख और घृणा से दोनों हाथों से आँखें छिपाकर कोच पर औंधी पड़ गयी। सुरेश ने खड़े होकर कहा-ब्राह्म को मैं फूटी आँखों नहीं देख सकता। जिनकी छाया छू जाने से भी मुझे नफरत होती थी-उनके घर में कदम रखते ही जब मेरे आजन्म के संस्कार सदा का विद्‌वेष एक पल में धुल गया, तभी मुझे शंका होनी चाहिए थी कि यह जादू है! मुझ पर जो बीता बीते; परन्तु जाते समय मैं आप लोगों को हजारों धन्यवाद दिये बिना नहीं जा सकता। धन्यवाद अचला!

अचला मुँह गाड़े हुए ही, रुँधे स्वर से बोल उठी-पिताजी, उन्हें चुप रहने को कहिए! हम पेड़ के नीचे रहेंगे-वह भी अच्छा, मगर आपने उनका जो लिया है, लौटा दीजिए।

सुरेश ने कहा-पेड़ के नीचे? कभी तुम लोगों को वह भी नसीब न होगा! कहे देता हूँ!! फिर भी उस दिन मुझे स्मरण, करना-कहकर वह उत्तर की राह देखे बिना ही जल्दी से चला गया।

केदार बाबू कुछ देर चुप रहे फिर एक लम्बी उसाँस लेकर बोले-उफ! कैसा खतरनाक आदमी!! ऐसा जानता तो मैं उसे घर में कदम रखने देता?

पिता की बात अचला के कानों पहुँची, पर वह कुछ न बोली। औंधी पड़ी जैसे रो रही थी, वैसी ही पड़ी आसूँ से अपनी छाती को भिगो रही थी। पास ही बैठे केदार बाबू सब देखते रहे, लेकिन दिलासे का एक शब्द भी कहने का उन्हें साहस नहीं हुआ। साँझ हो गयी। बैरा गैस की बत्ती जलाने आया, कि उठकर वह अपने कमरे में चली गयी।

महिम को लेकिन यह सब कुछ न मालूम हो पाया। सिर्फ उस दिन जब अन्ततः केदार बाबू ने अपनी बेटी के साथ उसके विवाह की सम्मति दी, वह कुछ देर के लिये विह्नल की नाईं

स्तब्ध बैठा रहा। बहुत तरह की बातें, शंकाएँ उसके मन में उठीं जरूर-पर अपने इस सौभाग्य का खुद सुरेश ही मूल कारण है, इसकी कल्पना तक उसके मन में न उठ सकी। अचला के प्रति स्नेह, प्रेम और करुणा से उसका हृदय परिपर्ण् हो उठा, मगर वह सदा से मौन प्रवृत्ति का आदमी ठहरा। आवेग और उच्छ्‌वास कभी प्रकट नहीं कर सकता, कर पाता भी तो यह उसकी जुबान के लिये निहायत अप्रत्याशित, अजीब-सा आचरण लोगों की नजर में लगता। बल्कि शाम को अकेले में केदार बाबू से कुछ बातें करके जब वह डेरे पर लौटा, तो और दिनों की तरह अचला से भेंट करके, उसे मामूली-सा नमस्कार भी न कर सका। बात केदार बाबू ने खुद उठायी थी। प्रसंग उठाने से लेकर के ब्याह की सम्मति, यहाँ तक कि दिन तै करना तक सब अकेले उन्होंने ही किया। मगर सब कुछ जैसे निरुपाय होकर किया।-उनके चेहरे पर उत्साह और उमंग की झलक तक न आयीं। फिर भी दिन बीतने लगे, और ब्याह का दिन आया।

परसों विवाह! मगर लड़की के विवाह में धूम-धाम न करने की सोच रखी थी, इसलिये आयोजन जितना चुपचाप हो सके-इसमें कुछ कसर न रखी।

आज तीसरे पहर भी वे यथा समय चाय पीने बैठे थे। कोई सिलाई लेकर अचला पास ही एक कोच पर बैठी थी। बहुत दिनों से तकलीफ में दिन काटते हुए, इन सौ दिनों से जो शान्ति उसके मन में बिराज रही थी, उसी की हलकी आभा से उसका पीला मुखड़ा, मद्‌धिम चाँदनी-सा ही स्निग्ध दीख रहा था। चाय पीते-पीते केदार बाबू बीच-बीच में यही देख रहे थे। झगड़कर सुरेश के चले जाने के बाद से, मनहूसियत से ही दिन काट रहे थे। लौटकर वह क्या करेगा, न करेगा-इसकी फिक्र। फिर भी इस सम्बन्ध में उन्हीं का अपना क्या कर्त्तव्य है-हैण्डनोट लिख देना, या रुपया चुका देने के लिये और कहीं कर्ज लेना, या कि इसकी जिम्मेदारी महिम के कन्धों लाद देना-क्या किया जाये, सोच-सोचकर कोई किनारा नहीं पा रहे थे। लेकिन कुछ करना जरूरी है, सुरेश के गायब हो जाने को दुहाई पर नहीं चलने का-या बेटी की तरह, अपनी धुन में मगन हो आँखें मूँदे रहने से यह आफत नहीं टलेगी-इसे वे खूब समझते थे। निराश प्रेमी अचानक एक दिन ताजा हो उठेगा-और उस दिन आकर, चारों तरफ यह बात फैलाकर एक हंगामा खड़ा कर देगा। रुपया उसने चेक से दिया है, लिहाजा अदालत में उससे इंकार करना मुश्किल होगा-सब सोच कर वे निस्सन्देह हो उठे

थे; लेकिन बेटी से जरा राय-सलाह की भी गुंजाइश न थी। सुरेश का जिक्र करने में भी उन्हें डर लगता था। अभी अचला के शान्त-स्थिर मुख की छवि को देख-देखकर उन्हें जलन-सी हो रही थी, कि उनके सारे दुःखों की जड़ यह लड़की ही है-जबकि कैसी सहूलियत हो आयी थी, और भविष्य में जाने कितनी सहूलियत होती!

जो निर्दयी बेटी बाप के बारम्बार मना करने पर भी, उनके सुख-दुःख का ख्याल न कर सकी-सारा गुड़ जिसने गोबर कर दिया, उस स्वार्थी सन्तान पर उनका छिपा क्रोध जब-तब अभिशाप बनकर यही कामना करता-जिसमें उसे इसका फल मिले, जिसमें किसी दिन उसे रो-रोकर कहना पड़े कि तुम्हारे खिलाफ जाने की सजा मैं भोग रही हूँ, पिताजी! जहाँ तक लड़के का सवाल है, महिम सुरेश से कहीं अधिक वांछनीय है। यह धारणा उनके जी में ऐसी जम गयी थी, कि उससे नाता टूट जाने को वे बहुत बड़ा नुकसान मान रहे थे। मन में उन्हें उस पर क्रोध न था। इतना कुछ गुजर चुकने के बाद भी, अगर उसे फिर से पाने का कोई उपाय होता तो, तै-शुदा शादी को तोड़ देने में भी उन्हें देर न होती मगर कोई उपाय नहीं-कोई उपाय नहीं! अचला के सामने तो उसका आभास तक लाने का उपाय नहीं!!

सिलाई करते-करते अचानक सिर उठाकर अचला ने कहा-सुरेश बाबू के बारे में पढ़ा?

अचला की जबान पर सुरेश का नाम? केदार बाबू ने चौंककर उधर देखा। अपने कानों पर विश्वास न हुआ। सुबह का अखबार मेज पर पड़ा था। अचला ने उसे उठाकर फिर से वही पूछा-अखबार पर सवेरे उन्होंने जहाँ-तहाँ नजर फेरी थी, लेकिन किसी और की खबर के लिये वैसी दिलचस्पी इस समय उन्हें नहीं थी। बोले-कौन सुरेश?

अखबार में उस जगह को ढूँढ़ते हुए अचला बोली। शायद अपने ही सुरेश बाबू हैं!

केदार बाबू ने अचरज से दोनों आँखें फाड़ ली।

बोले-अपने सुरेश बाबू? क्या किया उन्होंने? कहाँ हैं वे?

अचला अखबार का वह स्थल पिता के हाथ पर रखते हुए बोली-पढ़ देखो न।

चश्में के लिये जेब टटोलते हुए केदार बाबू बोले-चश्मा शायद मैं कमरे में ही छोड़ आया। तुम्हीं पढ़ो न, क्या माजरा है?

अचला ने पढ़कर सुनाया-फैजाबाद से किसी सज्जन ने पत्र लिखा है-उस दिन शहर के गरीबों के मुहल्ले में जोरों की आग लग गयी। एक तो प्लेग फैला है, तिस पर यह दुर्घटना-लोगों के कष्ट की कोई सीमा न रही। कुछ दिनों से सुरेश नाम के एक भद्र युवक यहाँ आकर रुपये-पैसे, दवाई और शारीरिक श्रम लगाकर रोगियों की सेवा कर रहे हैं। इस मुसीबत के समय उन्हें खबर मिली-कोई बीमार औरत किसी जलते हुए घर के अन्दर घिर गयी है-उसे बचाने वाला कोई नहीं! संवाददाता ने इसके बाद लिखा-उस बेचारी की जान बचाने के लिये, किस प्रकार से वह दुस्साहसिक बंगाली युवक अपनी जान को हथेली पर रख कर लहकती आग में कूद पड़ा, आदि-इत्यादि।

पढ़ना खत्म हुआ। केदार बाबू बड़ी देर तक चुप बैठे रहे, फिर एक निःश्वास छोड़कर बोले-लेकिन यह अपना ही सुरेश है, तुम्हें ऐसा लगता है?

अचला ने शान्त-भाव से कहा-हाँ, ये अपने ही सुरेश बाबू हैं!

केदार बाबू फिर चौंक उठे! शायद अपने अजानते ही अचला के मुँह से, इस 'अपने' शब्द पर जरा ज्यादा जोर पड़ गया था। हो सकता है, निश्चित विश्वास जताने के लिये, पर केदार बाबू के कलेजे में वह और ही प्रकार से लगा और डूबता हुआ आदमी जैसे तिनका पकड़ने के लिये दोनों हाथ बढ़ा देता है, ठीक वैसे ही बूढ़े पिता ने बेटी के मुँह की इस बात को बड़े आग्रह से कलेजे में धर लिया। यही एक बात उनके कानों पलक-मारते कितनी-क्या असम्भव-सम्भावनाओं का द्वार खोल गयी, जिसकी सीमा नहीं। इतने दिनों के बाद आज उनका मुखड़ा एकाएक आशा के आनन्द से उद्भासित हो उठा। बोले-अचला बेटी, तुम्हें क्या ऐसा नहीं लगता कि. ..

पिता को हठात् थम जाते देख अचला ने उनकी ओर देखकर पूछा-नहीं लगता है बाबूजी?

केदार बाबू सावधानी से बढ़ने की नीयत से, मुँह की बात को दबा गये।

बोले-तुम्हें क्या ऐसा नहीं लगता कि सुरेश हम लोगों के साथ जो व्यवहार कर गया, उसके लिये वह बहुत ही अनुतप्त है?

अचला तुरन्त बोल उठी-मुझे ऐसा निश्चित लगता है पिताजी! केदार बाबू जोर से सिर हिलाकर बोले-बेशक! बेशक! हजार बार! ऐसा न होता, तो वह इस तरह भाग न जाता-कहाँ की एक मामूली स्त्री को बचाने के लिये आग में कूद पड़ा! मुझे ऐसा लगता है, वह सिर्फ इसी अफसोस में जल-मरने गया था! सच है न बिटिया?

पिता जी की बात के ठीक जवाब को टालकर, अचला धीरे-धीरे बोली-दूसरे को बचाने के लिये वे और भी कई बार अपनी जान खतरे में डाल चुके हैं।

बात केदार बाबू को वैसी अच्छी न लगी। बोले-वह और बात है अचला। यह तो आग में कूदना हुआ!! मौत को सीधे गले लगाना!!! दोनों का फर्क नहीं समझती?

अचला ने बात नहीं काटी। कहा-जी हाँ, सो है! लेकिन जो बड़े दिल वाले होते हैं, वे किसी भी अवस्था में, औरों की मुसीबत की घड़ी में अपनी मुसीबत भूल जाते हैं।

केदार बाबू उत्साह से उछल पड़े। दमकते स्वर में बोले-ठीक! ठीक कहती हो!! जभी तो तुझसे कहता हूँ, सुरेश एक महत्-प्राण व्यक्ति है!!! उससे क्या किसी की तुलना हो सकती है? इतने-इतने तो लोग हैं, मगर कौन-किसकी बात पर पाँच-पाँच हजार रुपये दे सकता है जी? उसने जो भी चाहे किया, बड़े दु:ख से ही कर बैठा-यह मैं शपथ लेकर कह सकता हूँ!

मगर शपथ की कोई जरूरत नहीं थी। यह सत्य अचला खुद जितना जानती थी, उसका सौवाँ हिस्सा भी वे नहीं जानते थे। लेकिन वह जवाब न दे सकी-पलक की लज्जा कहीं खुल जाये, इस डर से गर्दन झुकाकर वह मौन ही रही। लेकिन बूढ़े की प्यासी आँखों से वह बच न सकी। वे पुलकित हृदय से कहने लगे-आखिर आदमी देवता तो है नहीं, वह आदमी ही है! उसका शरीर दोष-गुणमय है-लेकिन इसीलिये उसकी दुर्बल क्षणिक उत्तेजना को उसका स्वभाव नहीं मान लेना चाहिए। बाहर के जो चाहे सो कहें, मगर हम लोग भी अगर इसी को उसका दोष कहें-तो उनसे हमारा फर्क कहाँ रहेगा, बता? धनी तो बहुतेरे पड़े हैं, पर इस तरह से देना कौन जानता है? क्या लिखा है? एक बार फिर तो पढ़ बेटी! आग से उसे सुरक्षित

निकाल लाया? ओः कितना बड़ा साहस! देवता और कहते किसे हैं? कहकर उन्होंने लम्बा निःश्वास छोड़ा।

अचला वैसे ही सिर झुकाये चुप बैठी रही।

केदार बाबू कुछ देर स्तब्ध बैठे रहे; फिर बोल उठे-अच्छा, तार भेजकर उसका कुशल मँगाना क्या उचित नहीं है? उसकी इस मुसीबत में भी क्या रूसना ठीक है?

अचला ने अब की सिर उठाकर कहा-मगर हमें उनका पता जो नहीं मालूम!

केदार बाबू बोले-पता? फैजाबाद में ऐसा भी कोई है, जो आज अपने सुरेश को नहीं पहचानता? उस पर मुझे बड़ा गुस्सा आया था, लेकिन अब कुछ नहीं है। एक तार लिखकर तुरन्त भेज दो बिटिया; उसके कुशल के लिये मैं व्यग्र हो उठा हूँ।

अभी भेज देती हूँ बाबूजी-वह तार का कागज लाने के लिये निकली कि खुद सुरेश सामने आ खड़ा हुआ।

हृदय में गहरा दुःख ढोने की थकावट इतनी जल्दी मनुष्य के मुखड़े को सूखा और श्रीहीन कर देती है-अपने जीवन में अचला ने यही पहली बार देखा।-चौंक उठी वह। कुछ देर तक किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकली। उसके बाद वही बोली-बाबूजी बैठे हैं, चलिये, अन्दर चलिये! फैजाबाद से कब आये? अच्छे तो हैं?

अनजानते उसकी बातों में कितना स्नेह झलक गया, वह खुद न समझ सकी। लेकिन सुरेश मानो टूट-पड़ने को हो गया-फिर भी उसने अपने पिछले दिनों के कठोर सबक को बेकार नहीं होने दिया। तुरन्त उन दोनों रंगे चरणों में घुटने टेककर अपना सारा कुछ उड़ेल देने की दुर्जय आकांक्षा को जी-जान से दमन करके, अदब के साथ बोला-मेरे फैजाबाद जाने की बात को आपने कैसे जाना?

अचला ने वैसे ही स्नेह-भीगे स्वर में कहा-अखबार में पढ़कर बाबू जी तुरन्त मुझे तार भेजने को कह रहे थे। आपके लिये वे बड़े बेचैन हो उठे हैं। चलिये, उनसे जरा भेंट कर

लीजिए! कहकर उसने मुड़ने की चेष्टा की, कि सुरेश बोला-वे बेचैन हो सकते हैं, मगर तुमने मुझे कैसे माफ किया अचला?

अचला के होंठों पर हँसी की हलकी-सी झलक दिखाई दी। बोली-उसकी मुझे जरूरत नहीं पड़ी। मैंने एक दिन के लिये भी आप पर गुस्सा नहीं किया। आइए, अन्दर आइए!

(13)

सुरेश ने जब बताया कि वह महिम के पत्र में शादी की खबर पाकर ही जल्दी-जल्दी आ गया है, तो केदार बाबू शर्म से चंचल हो उठे; मगर अचला के भाव में कुछ नहीं झलका।

सुरेश बोला-महिम के विवाह में आये बिना कैसे चले; वरना और कुछ दिन अस्पताल में रह गया होता, तो ठीक था!

केदार बाबू ने उतावली से पूछा-अस्पताल में क्यों सुरेश? वैसा कुछ तो...

सुरेश ने कहा-जी हाँ, खास कुछ नहीं; लेकिन शरीर ठीक न था।

केदार बाबू निश्चिन्त हो कर बोले-इसके लिये ईश्वर को प्रणाम करता हूँ! अचला ने जब अखबार से तुम्हारी अलौकिक कहानी पढ़कर सुनाई-तो क्या बताऊँ तुमसे-आनन्द और गर्व से मेरी आँखों से आँसू बहने लगे! मन-ही-मन कहा-हे ईश्वर, मैं धन्य हूँ कि मैं ऐसे आदमी का भी बन्धु हूँ! उन्होंने हाथ जोड़कर कपाल से लगाया। कुछ रुककर बोले-मगर यह भी कहूँ, बार-बार अपनी जान को खतरे में डालना भी क्या ठीक है? एक साधारण-से प्राण को बचाने में अगर ऐसा एक महत् प्राण चला जाता, तो संसार का ज्यादा नुकसान नहीं होता?

नुकसान ऐसा क्या होता!-कहकर सलज्ज भाव से नजर घुमाते ही उसने देखा, अचला अब तक एकटक उसी के चेहरे की तरफ ताक रही थी। अब उसने नजर झुका ली।

केदार बाबू बार-बार कहने लगे-ऐसी बात जबान पर भी नहीं लानी चाहिये! क्योंकि अपनों के दिल में इससे कितनी चोट लगती है, इसका ठिकाना नहीं!!

सुरेश हँसने लगा। बोला-अपना तो कोई नहीं है मेरा, केदार बाबू! हैं केवल एक फूफी। मेरे गुजर जाने से उन्हीं को शायद तकलीफ होगा।

गरचे सुरेश हँसते हुए बोला-तो भी यह सुनकर केदार बाबू की आँखें गीली हो गयीं कि उसका कोई नहीं है। बोले-केवल फूफी को ही कष्ट होगा सुरेश? नहीं-नहीं, इस बूढ़े को भी कुछ कम कष्ट नहीं होगा बेटे! खैर, मैं जब तक जिन्दा हूँ, इन कुछ दिनों अपने शरीर की हिफाजत रखो सुरेश-यही मेरा एकान्त अनुरोध है!

घड़ी में रात के दस बजे। लौटने को तैयार होकर, अचानक हाथ जोड़कर उसने कहा-एक विनती है मेरी, महिम का विवाह तो मेरे ही घर से होगा, यही तै हुआ है; लेकिन वह तो परसों होगा; कल रात भी लेकिन इस नाचीज के घर चरणों की धूल देनी पड़ेगी-नहीं तो मुझे यह यकीन न आयेगा कि मुझे माफी मिली है। कहिए, यह भीख देंगे आप? झुककर वह केदार बाबू के पैरों में धूल लेने बढ़ा।

केदार बाबू हड़बड़ी में जबर्दस्ती उसे रोकने लगे कि उसकी अस्फुट आह से उछल पड़े। पीठ पर मामूली जल जाने के कारण पट्टी बँधी थी-ऊनी चादर डालकर सुरेश ने उसको छिपा रखा था। अनजाने में खींचातानी करते समय उन्होंने पट्टी ही खिसका दी थी। खुले जख्म को देखकर केदार बाबू डर से चीख पड़े। बिजली की तरह झट अचला आ पहुँची, और पट्टी को थामकर बोली-ठहरिए, मैं ठीक से बाँध देती हूँ। सुरेश को बगल के सोफे पर बैठाकर जतन से पट्टी बाँधने लगी।

केदार बाबू धप्प से अपनी कुर्सी पर बैठ गये-आँखें बन्द कर लीं। बड़ी देरी तक उनके मुँह से शब्द ही न निकला। कोच की पीठ पर अपनी दोनों केहुँनी टेककर, पीछे खड़ी हो अचला पट्टी बाँध रही थी। देखते ही देखते उसकी दोनों आँखें आँसुओं से भर उठीं, और धीरे-धीरे मुक्ता जैसी बूँद एक-पर-एक टपकने लगीं। लेकिन सुरेश कुछ भी न देख पाया; इधर का उसे ध्यान ही न था। वह केवल निमीलित नयनों, स्थिर बैठा, अपने अपार प्रेम की अधिकारिणी के कोमल हाथों के करुण स्पर्श का हृदय में अनुभव करता रहा।

किसी कदर अपने आँसू पोंछकर, बीच में अचला ने चुपचाप कहा-आज मेरे आगे आपको एक प्रतिज्ञा करनी होगी!

सुरेश का ध्यान टूटा। वहा चौंका। लेकिन उसने भी उसी कोमलता से पूछा-कैसी प्रतिज्ञा?

-इस प्रकार से आप अपनी जान नहीं बर्बाद कर सकते!

-लेकिन जान देने तो मैं जानकर नहीं गया था! दूसरे की मुसीबत में मुझे होश-हवास ही नहीं रहता-यह तो मेरे बचपन का स्वभाव है अचला!

अचला ने बात नहीं काटी, लेकिन साथ ही उसके हृदय से एक विश्वास टूट गया। सुरेश को इसकी खाक भी खबर न हुई। पट्टी बँध गयी तो सुरेश ने खड़े होकर कहा-कल लेकिन इस गरीब के घर पैरों की धूल देनी पड़ेगी। उसकी आँखें भर आयीं, पर आवाज में कोई व्याकुलता नहीं झलकी।

सिर हिलाकर अचला ने कहा-अच्छा!

केदार बाबू को नमस्कार करके सुरेश ने हँसकर कहा-देखिए निराश न कीजिएगा। और फिर एक बार अचला की तरफ ताककर, अपना निवेदन चुपचाप बताकर वह धीरे-धीरे चला गया।

दूसरे दिन समय पर सुरेश की गाड़ी पहुँच गयी। केदार बाबू तैयार ही थे, बेटी के साथ न्योते पर चल पड़े।

सुरेश के फाटक के अन्दर दाखिल होते ही केदार बाबू दंग रह गये। सुरेश बड़ा आदमी है-यह मालूम था, लेकिन कितना बड़ा-केवल अन्दाज से इसका अनुमान करते थे। आज इस बात से वे निश्चिन्त हो गये।

सुरेश ने आकर दोनों का स्वागत किया। हँसकर बोला-महिम की जिद लेकिन तोड़ी न जा सकी। कल दोपहर से पहले, इस घर में कदम रखने को वह हर्गिज तैयार नहीं हुआ!!

केदार बाबू ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। तीनों जने बैठक में पहुँचे, कि एक प्रौढ़ा स्त्री दरवाजे की ओट से अन्दर आकर, अचला का हाथ पकड़ कर उसे भीतर लिवा गयी। उनके कमरे के फर्श पर एक कालीन बिछा था। उसी पर जतन से अचला को बैठा कर अपना परिचय दिया। बोलीं-नाते में मैं तुम्हारी सास होती हूँ, बहू! मैं महिम की फूफी हूँ।

अचला ने प्रणाम करके उनके पैरों की धूल ली। अचरज से उनकी तरफ देखकर पूछा-आप यहाँ कब आयी?

महिम की फूफी हैं, इसका उसे पता न था। प्रौढ़ा उसके अचरज का कारण समझ गयी। हँसकर बोली-मैं यहीं रहती हूँ बिटिया-मैं सुरेश की फूफी हूँ! महिम भी तो मेरा बिराना नहीं, इसलिये उसकी भी फूफी लगती हूँ!!

उनके स्वाभाविक कोमल स्वर में कुछ ऐसा ही स्नेह और हार्दिकता जाहिर हुई, कि अचला का हृदय आलोड़ित हो उठा। उसके माँ नहीं, इस कमी को जरा भी पूरा करे, ऐसी कोई औरत भी घर में नहीं रही। होश होने तक पिता के ही स्नेह में पली; लेकिन उस स्नेह ने उसके हृदय के कितने अंश को खाली रख छोड़ा था, वह एक पल में साफ झलक पड़ा-जब पराये घर की, पराई फूफी ने 'बहू' कहकर उसे आदर से बैठाया। शुरू में इस नये सम्बोधन से वह शर्मा गयी थी-पर इसकी मधुरता, इसका गौरव उसके नारी-हृदय की अतल गहराई में देर तक गूँजता रहा!

देखते-ही-देखते दोनों में बातों का सिलसिला जम गया। अचला ने लजाते हुए पूछा-अच्छा फूफी, आपने तो मुझे अपने पास बैठाया, ब्राह्म लड़की के नाते घृणा तो नहीं की आपने?

फूफी ने झट अपनी अँगुली के छोर से उसका चुम्बन लेते हुए कहा-तुमसे घृणा क्यों करूँ बिटिया? जरा हँसकर कहा-चूँकि हम हिन्दू हैं, इसलिये क्या ऐसे निर्बोध, इतने ही न हैं बहू, कि अलग धर्म के नाते तुम्हारी जैसी लड़की को भी पास बैठाने में हिचकें? घृणा तो दूर की बात है!

अचला को बड़ी शर्म आयी। बोली-मुझे माफ करें फूफी! मुझे मालमू नहीं था। अपने समाज के बाहर की किसी स्त्री से मैं कभी मिल नहीं पायी; केवल सुना था कि वे हमसे बहुत घृणा करती हैं-यहाँ तक कि साथ बैठने-खड़े होने पर भी उन्हें स्नान करना पड़ता है।

फूफी ने कहा-वह घृणा नहीं है बेटी, वह एक आचार है! हमारे बाहरी आचरण देखकर बहुत बार हम ऐसी ही लगती हैं; पर सच मानो-वास्तव में घृणा हम किसी से नहीं करतीं!! हमारे गाँव में बागदी चाची अभी जिन्दा हैं। उसे मैं कितना चाहती हूँ, कह नहीं सकती!

कुछ क्षण रुककर बोलीं-अच्छा, तुमसे एक बात पूछूँ-सुरेश की बातचीत से या आज मुझे देखकर तुम्हें इसकी याद आयी?

सुरेश का जिक्र आ गया, सो अचला धीरे-धीरे बोली-हाँ, एक बार उन्होंने भी कहा था!

फूफी ने कहा-उसकी यही आदत है! कुछ ख्याल आये कि बस खैर नहीं-चारों तरफ वही कहता फिरेगा!! ब्राह्मों से कभी मिले बिना ही उसने सोच लिया कि वह उनसे बहुत घृणा करता है। इसी बात पर कितनी बार महिम से लड़ाई होते-होते रही। मगर मैंने ही तो उसे एक प्रकार से पाला है-मैं जानती हूँ, वह किसी से घृणा नहीं करता-करने की मजाल भी नहीं! यही समझो न, जिस रोज से उसने तुम लोगों को देखा...

लेकिन अपनी बात वे पूरी न कर सकीं, अचला के मुँह पर नजर पड़ते ही सहसा थम गयी। फूफी उन दोनों के सम्बन्ध के बारे में कहाँ तक जानती है, यह न समझते हुए भी, अचला को सन्देह हुआ कि कम-से-कम कुछ तो फूफी जानती है। कुछ क्षण के लिये दोनों चुप हो रहीं; अपनी क्षणिक शर्म को दबाकर अचला ने दूसरी बात छेड़ दी। कहा-सुरेश बाबू को क्या आपने ही पाला था, फूफी?

आवेग-विभोर होकर फूफी ने कहा-हाँ बेटी, मैंने ही तो पाला है! दो ही साल की उम्र में माँ-बाप को खो बैठा था। मेरा वह भार अभी तक सिर से नहीं उतरा। किसी की दुःख-तकलीफ, आफत-मुसीबत वह सह नहीं सकता, प्राण की आशा-भरोसा छोड़कर खतरे में कूद पड़ता है। मैं जो दिन-रात किस कदर डरते-डरते काटती हूँ, यह तुमसे क्या बताऊँ बहू!

अचला ने धीरे से पूछा-फैजाबाद वाली घटना सुनी आपने?

फूफी ने गर्दन हिलाकर कहा-क्यों नहीं बहू, सुनी है! तभी तो भगवान से मनाती रहती हूँ-हे भगवान, इन आँखों अब मुझे वह सब न देखना पड़े-माथे पर लात रखकर मुझे रसातल में मत बोर देना! यह मैं हर्गिज बर्दाश्त नहीं कर सकूँगी!! कहते-कहते उनका गला रुँध गया। उनकी मातृ-स्नेह से सनी उस कातर प्रार्थना को सुनकर अचला की आँखें सजल हो गयीं। करुण-कण्ठ से बोली-आप मना क्यों नहीं करतीं फूफी?

आँसुओं के अन्दर से जरा हँसकर फूफी ने कहा-मना! मेरे मना करने से क्या होना है बेटी? जिसके मना करने से कुछ हो सकता है, मैं कितने सालों से उसी को तो खोजती-फिरती हूँ! परन्तु वह तो जिस-तिस लड़की का काम नहीं!! जो उसे बचा सके, वैसी लड़की भगवान न मिलायें तो मैं कहाँ पाऊँ?

अचला थोड़ी देर चुप रही। उसके बाद पूछा-आपकी पसन्द की लड़की कहीं मिल नहीं रही है?

फूफी ने कहा-तुमसे कहा तो बिटिया, भगवान न मिलायें तो कोई कभी नहीं पाता। जो सुरेश इस बात पर कान ही नहीं देता, वह जब एक दिन खुद आकर बोला कि फूफी, अब तुम्हें एक दासी मैं ला दूँगा। उस दिन मुझे कितनी खुशी हुई, वह शब्दों में नहीं बतायी जा सकती! मन-ही-मन आशीर्वाद देकर मैं बोली-तेरे मुँह फूल-चन्दन बेटे! वह दिन कब आयेगा, जब बहू-बेटे को परछ कर घर लाऊँगी!! मैंने लाख कहा-सुरेश, एक बार मुझे दिखा तो ला; पर किसी भी तरह राजी न हुआ। हँसते हुए बोला-जिस दिन आशीर्वाद देने जाओगी, दिन तै कर आना! उसके बाद अचानक एक दिन आकर बोला-मामला ठीक बैठा नहीं फूफी। मैं रात को पश्चिम जा रहा हूँ। मैं पूछती रह गयी-क्या ठीक नहीं बैठा, खोलकर बात बता मुझे; लेकिन कोई बात न बतायी; रात ही चला गया। मैंने मन में सोचा-केवल मेरे बेटे की इच्छा से ही तो नहीं होने का; उस लड़की की भी तो जन्म-जन्मान्तर की तपस्या चाहिए! है न बेटी?

अचला ने चुपचाप सिर हिलाया। अब उसने समझा कि वह लड़की कौन है-फूफी यह नहीं जानतीं। एक बार तो लगा कि कलेजे पर से एक पत्थर उतर गया-मगर वह पत्थर यों ही नहीं उतरा, कलेजे के बहुत-से हिस्से को पीस-खरोंच गया है, यह दूसरे ही क्षण वह महसूस करने लगी।

खाने की तैयारी हुई, तो फूफी ने अचला को अलग बैठाकर खिलाया; और साथ-साथ एक-एक कमरा, एक-एक चीज घुमाकर दिखाने के बाद एक निःश्वास छोड़ती हुई बोली-बेटी, भगवान की दया से, कमी किसी बात की नहीं-मगर यह तो मानो लक्ष्मीविहीन बैकुण्ठ है! कभी-कभी तो मेरे आँसू रोके नहीं रुकते!!

नौकर ने आकर खबर दी-बाहर केदारबाबू जाने के लिये तैयार हैं। अचला ने उन्हें प्रणाम किया, पैरों की धूल ली। फूफी ने उसका हाथ थाम कर जरा झिझकती हुई फुसफुसाकर कहा-एक बात पूछूँ, अगर और कुछ न सोचो!

अचला उनकी ओर देखकर सिर्फ जरा हँसी।

फूफी बोलीं-सुरेश से मैंने तुम्हारे और महिम के बारे में सब कुछ सुना है। उसी से यह सुना कि चूँकि वह गरीब है, शायद इसलिये तुम्हारे पिता की इच्छा न थी। सिर्फ तुम्हारी ही वजह से...

सिर झुकाकर अचला ने धीमे से कहा-सच ही है फूफी!

फूफी अकस्मात, मानो उमड़े आवेग से अचला के दोनों हाथ पकड़कर बोल उठीं-यही चाहिए बेटी! जिसको प्यार किया है, उसके सामने रुपया-पैसा धन-दौलत की क्या बिसात? मन में कोई गिला न रक्खो। मैं महिम को खूब जानती हूँ, वह ऐसा ही लड़का है कि उसके लिये जितना ही दुःख चाहे क्यों न उठाओ-भगवान की दया से, एक दिन वह सब सार्थक होगा! भगवान् इतने महान प्यार की हर्गिज हेठी नहीं कर सकते, यह मैं निश्चित कह सकती हूँ!!

अचला ने झुककर फिर एक बार उनके चरणों की धूल ली। उसकी ठोढ़ी को छूकर चुम्बन करते हुए फूफी बोलीं-आह! काश ऐसी ही बहू के साथ मैं भी गिरस्थी कर पाती।

सुरेश ने जाकर दोनों को गाड़ी पर सवार कराया, और नमस्कार करके चुपचाप लौट आया। लौटते समय, लालटेन की रोशनी में उसके चेहरे ने पल को अचला का ध्यान खींचा; उस चेहरे में क्या था, ईश्वर जानें; लेकिन रुलाई उसके कण्ठ तक उमड़ आयी-घोड़ा गाड़ी तेजी से रास्ते पर पहुँच गयी। रास्ते की भीड़ कम हो गयी थी, उधर देखकर उसे अचानक लगा-अब तक वह मानो एक बहुत बड़ा ख्वाब देख रही थी। वह ख्वाब दुःख का था या सुख का-कहना मुश्किल था। केदार बाबू अब तक चुप ही थे-शायद सुरेश का ऐश्वर्य ही अभी तक उनके दिमाग में चक्कर काटता रहा था। अचानक एक लम्बा निःश्वास लेकर बोले-बेशक धनी है!

लेकिन लड़की की ओर से कोई चेष्टा न झलकी। उत्साह के अभाव में बाकी रास्ता वे चुप ही रहे।

गाड़ी जब उनके दरवाजे पर लगी और कोचवान दरवाजा खोलकर हटकर खड़ा हो गया, तो मानो एक बार उनको चेत हुआ। एक उसाँस खींच कर बोले-सुरेश को हम बिल्कुल नहीं पहचान सके! देवता है वह!!

(14)

आज अचला का विवाह था। विवाह-मण्डप की राह में एक पल के लिये सुरेश पर उसकी नजर पड़ी थी। उसके बाद वह न जाने कहाँ गायब हो गया, केदार बाबू के यहाँ रात-भर में उसका पता न चला।

ब्याह हो गया। दो-एक दिन अचला के मन में उथल-पुथल सी होती रही। उस रात सुरेश की फूफी ने जो कही, वे बातें वह भूल नहीं पा रही थी-आज उसका अन्त हुआ।

महिम की अटल गम्भीरता आज भी बनी रही। खुशी-गम का कुछ भी बाहरी प्रकाश उसके चेहरे पर न दिखा। तो भी शुभदृष्टि[1] की घड़ी में वही मुखड़ा देखकर अचला का हृदय आनन्द और माधुर्य से भर उठा। मन-ही-मन पति के चरणों पर सिर रखकर अपने तईं बोली-प्रभु, अब मुझे कोई डर नहीं; तुम्हारे साथ जहाँ भी, जिस अवस्था में ही क्यों न रहूँ, वहीं मेरा स्वर्ग है! आज से, तुम्हारा झोंपड़ा ही मेरा राजप्रासाद है!!

उसके ससुराल जाने के दिन, कुरते के आस्तीन से आँखें पोंछते हुए केदार बाबू ने कहा-मैं आशीर्वाद देता हूँ बेटी-पति के साथ दुःख और गरीबी का सामना करते हुए, जीवन के मार्ग पर, कर्त्तव्य के पथ पर आगे बढ़ो! ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें।-कहते हुए उसी तरह आँखें पोंछते-पोंछते बगल के कमरे में चले गये।

उसके बाद सावन के एक धुँधले-से दिन को, दोपहर में, माथे पर बारिश थमे मेघ भरे आकाश, और नीचे सँकरी कीचभरी फिसलन वाली राह से, पालकी पर चढ़कर अचला अपनी ससुराल पहुँची। लेकिन इतने से ही रास्ते में उसके नये विवाह का आधा आनन्द उड़ गया।

देहात से उसका परिचय छापे के अक्षरों से ही था। उस परिचय में दुःख-दरिद्रता के हजारों संकेतों के बावजूद, एक-एक पंक्ति में कविता थी, कल्पना की खुशबू थी। पालकी से उतर कर घर के अन्दर जाकर उसने एक बार चारों तरफ देखा-कहीं से भी, किसी ओर से भी कवित्व का जरा भी माधुर्य उसके जी को न छू सका। उसकी कल्पना का गाँव, प्रत्यक्ष में ऐसा आनन्दहीन, ऐसा सूना है-कच्चे मकान के कमरे ऐसे सील वाले, अँधेरे दरवाजे, खिड़कियाँ इतनी छोटी और सँकरी, ऊपर बाँस का छप्पर इतना भद्दा-इसे वह स्वप्न में भी न सोच सकी। इसी घर में जिन्दगी बितानी पड़ेगी-यह सोच कर उसका कलेजा मानो टूक-टूक होने लगा। पति मिलन का सुख, विवाह की खुशियाँ सब माया-मरीचिका-सी उसके हृदय से तुरन्त काफूर हो गयीं। घर में सास, ससुर, नन्द, देवरानी-कोई नहीं। दूर के रिश्ते की एक दादीजी स्वेच्छा से, वर-वधू के परिछन के लिये दूसरे टोले से आयी थीं। ब्याह की जिस साज-पोशाक की वे आदी थीं, उनकी निहायत कमी देखकर वे अत्यन्त अचरज से कुछ देर चुप खड़ी रहीं; अन्त में बहू का हाथ पकड़ कर उसे अन्दर ले जाकर बैठा दिया। टोले की जो औरतें बहू को देखने के लिये दौड़ी आयीं, अचला की उम्र देखकर उन्होंने एक-दूसरे का मुँह देखा, एक-दूसरे के बदन पर चिकोटी काटी, और उनके लौटते समय अस्फुट स्वर में-बरहम, म्लेच्छ आदि दो-एक मोटे शब्द भी अचला के कानों पहुँचे।

बात-की-बात में तमाम गाँव में यह बात फैल गयी, कि यह बात सच है कि महिम एक म्लेच्छ लड़की को उठा लाया है। विवाह के पहले ही ऐसी एक अफवाह, आन्दोलन और

आलोचना चल चुकी थी; अब बहू को देखकर किसी को तिल-भर भी सन्देह न रहा, कि जो बात फैली थी वह सोलहों आने सही है!

पड़ोसिनों के लौट जाने पर दादीजी ने आकर कहा-तो बहु, आज अब चलती हूँ! काफी दूर जाना है, और बिना गये चलने का नहीं! छोटा पोता-इत्यादि कहते-कहते, आग्रह-अनुरोध का मौका दिये बिना ही वे चली गयीं। वे एक नाते की सोच कर ही अब तक जा नहीं पा रही थीं-और जाने को छटपटा रही थीं-अचला यह ताड़ गयी थी। दादीजी का दोष भी न था। अगर वे जानतीं कि मामला इस हद तक पहुँचेगा, तो शायद आती भी नहीं। क्योंकि गाँव में रहे और इन बातों से न डरे-देहात के इतिहास में इतने चौड़े-कलेजे का उदाहरण दुर्लभ है!

दादीजी के चल देने के बाद नौकर जद्दू, उड़िया रसोइया, और मैके से साथ आयी दाई हरिया की माँ के सिवा, विवाह वाला घर बिल्कुल सूना हो गया। थोड़ी देर के लिये बारिश थम गयी थी-फिर बूँदा-बाँदी शुरू हो गयी। हरिया की माँ नजदीक आकर बोली-दीदी, ऐसा घर तो मैंने देखा ही नहीं-कोई कहीं नहीं...

अचला मुँह नीचा किये बैठी थी। अनमनी-सी सिर्फ-'हूँ' बोली।

हरिया की माँ ने फिर कहा-दामाद जी तो नहीं दिख रहे हैं! बस एक बार झलक दिखाकर जो गये...

अचला ने इस बात का भी जवाब नहीं दिया।

वन-जंगल भरी इस शून्य पुरी में हरिया की माँ का अपना जी चाहे जितना धकधक करता हो-अचला को उसने छुटपन से ही पाला था; उसे जरा सचेत करने की गरज से बोली-डरना क्या, आखिर हम पानी में तो नहीं आ-डूबे हैं! दामादजी आ जायें, सब ठीक हो जायेगा! तब तक ये कपड़े उतारो, मैं बक्से में से कपड़े निकाल देती हूँ।

अभी छोड़ो हरिया की माँ-कहकर अचला उसी तरह सिर झुकाये, काठ की मूरत-सी बैठी रही। जीवन का सारा स्वाद, सारी खुशबू उड़ चुकी थी।

बारिश जम गयी। उस बढ़ती जाती वर्षा में न जाने कब दिन की क्षीण आभा बुझ गयी, कब सावन के गाढ़े मेघ-स्तर को चीर कर उदास गाँव में संध्या उतरी-कुछ भी पता न चला। सिर्फ अँधेरे कमरे के कोने-कोने में गीला अँधेरा चुपचाप गाढ़ा होने लगा। जद्दू ने आकर कमरे में लालटेन रख दी। हरिया की माँ ने पूछा-और दामादजी कहाँ हैं?

क्या पता-कहकर जद्दू लौटने लगा। उसके मुख्तसर और भद्दे जवाब से हरिया की माँ ने शंकित होकर कहा-यह 'क्या पता' क्या हुआ? वे बाहर नहीं है क्या?

नहीं-कहकर जद्दू चला गया। यह खूब समझ में आया कि वह इन आगन्तुकों से प्रसन्न नहीं है। बहुत भयभीत होकर हरिया की माँ अचला के पास जाकर बोली-रंग-ढंग तो मुझे अच्छा नहीं दीख रहा, दीदी! दरवाजे की कुण्डी लगा दूँ?

अचला ने अचरज से कहा-कुण्डी क्यों लगायेगी?

हरिया की माँ छुटपन में ही गाँव छोड़कर कलकत्ते आयी थी, फिर कभी नहीं गयी। देहात के चोर, डकैत, लठैत आदि के किस्सों की याद के सिवा सब कुछ उसके लिये धुँधला हो गया था। बाहर के अँधेरे पर एक चकित दृष्टि डालकर अचला के बदन से सटते हुए उसने कहा-कुछ कहना मुश्किल है दीदी! कहते-ही कहते उसके बदन के रोयें खड़े हो गये।

ठीक ऐसे समय आँगन में से आवाज आयी-दीदीजी कहाँ हैं?-और कहते-कहते ही, बीस-इक्कीस साल की एक दुबली-पतली-सी लड़की, भीगती हुई, दरवाजे के पास आकर खड़ी हुई: बोली-पहले आपको प्रणाम कर लूँ दीदीजी, फिर गीले कपडे बदलूँगी-और अचला के पैरों के पास झुककर उसने प्रणाम किया तथा अचला के मुँह के पास लालटेन उठाकर देखते हुए चीख उठी-सँझले भैया-ओ सँझले भैया!

घर आकर महिम खुद इस लड़की को लाने गया था। बगल के कमरे से आवाज आयी-क्या है मृणालिनी?

-इधर आओ न, बताती हूँ।

कमरे के बाहर खड़ा होकर महिम ने कहा-बोल?

मृणाल ने लालटेन की रोशनी में और एक बार अच्छी तरह से अचला का मुँह देखकर कहा-नः; तुम्हीं जीत गये! मुझसे शादी करके ठगा जाते भैया तुम!

महिम ने बाहर से डाँट बतायी-तू मेरी बात मानेगी नहीं मृणाल? फिर दिल्लगी? नहीं मानेगी तू?

वाः-दिल्लगी कैसी?-अचला की ओर देखकर बोली-मजाक नहीं दीदीजी, कसम ले लो! अच्छा, अपने उनसे ही पूछ देखो, कि कभी उन्होंने मुझे पसन्द किया था कि नहीं?

महिम ने कहा-तो तू करती रह बक-बक, मैं बाहर चला!

मृणाल बोली-सो जाओ, मैंने क्या पकड़ रक्खा है तुम्हें? बड़े स्नेह से एक बार अचला की ठोढ़ी को हिलाकर कहा-तुम्ही बताओ बहन, डाह नहीं होती? इस गिरस्ती की मालकिन मैं ही होने वाली थी! मगर मेरी मुँहजली माँ ने न जाने क्या मन्तर सँझले भैया के कानों भर दिया, कि मैं इसे फूटी आँखों से भी न सुहाने लगी। अरे जद्दू-घोषाल जी कहाँ गये?

जद्दू ने कहा-हाथ-पाँव धोने के लिये पोखरे की तरफ गये!

ऐं! इस अँधेरे में पोखरे की तरफ?-मृणाल का हँसता मुखड़ा एक ही क्षण में दुश्चिन्ता से मलिन हो गया। घबराकर बोली-जद्दू, जरा लालटेन लेकर देख भैया उन्हें! बूढ़ा आदमी कहीं गिर-पड़कर हाथ-पाँव तोड़ लेगा।

उसके बाद अचला की तरफ देखकर लजाती हुई बोली-क्या नसीब लेकर आयी थी, दीदीजी-कहाँ के एक महाबूढ़े को ला दिया मुझे-उसकी सेवा करते-करते और उसे सम्भालते-सम्भालते ही जान गयी मेरी! अच्छा बहन, पहले मैं गीले कपड़े बदलकर आऊँ, फिर बातें होंगी। मगर सौत कहकर नाराज न होना-कहे देती हूँ; मैं अपने बुड्ढे का भी हिस्सा दूँगी तुम्हें!-कहकर हँसी की छटा से सारे कमरे को चमकाती हुई वह जल्दी से चली गयी।

इस तरह के हँसी-मजाक से अचला को कभी साबका नहीं पड़ा। सारा मजाक उसे ऐसा भद्दा और कुरुचिपूर्ण लग रहा था, कि लज्जा के मारे वह सकुचा गयी। वह सोच भी नहीं

सकती थी कि ऐसी निर्लज्ज-प्रगल्भता भी किसी औरत में हो सकती है। लिहाजा यह रसिकता उसके जीवन-भर की शिक्षा और संस्कार की बुनियाद पर चोट पहुँचा रही थी। इतने पर भी उसे लग रहा था कि इसके आ जाने से, उसके निर्वासन की पीड़ा का आधा तो छूमन्तर हो गया; और यह कौन है, कहाँ से आयी, इससे नाता क्या है-ये सब बातें जानने के लिये वह उत्सुक हो उठी।

हरिया की माँ ने पूछा-यह है कौन, दीदी? बड़ी मजाकिया है!

अचला ने गर्दन हिलाकर सिर्फ 'हाँ' कहा!

मृणाल कपड़े बदलकर आयी। बोली-हँसी-मजाक करके ही चली गयी दीदीजी, अपना असली परिचय अभी तक नहीं दिया मैंने। मगर परिचय भी वैसा क्या है? असल में तुम्हारे 'वे' जो हैं, वे मेरी माँ के बाप हैं। इसीलिये मैं छुटपन से सँझले भैया कहा करती हूँ। इतना कहकर वह एक क्षण चुप रहकर फिर बोली-मेरे पिता और तुम्हारे ससुर, दोनों बड़े दोस्त थे। अचानक गाड़ी के नीचे आ जाने से पिताजी का जब हाथ टूट गया और नौकरी चली गयी, तो तुम्हारे ससुर ने सबको अपने यहाँ जगह दी। उसके बहुत दिनों के बाद मेरा जन्म हुआ। सँझले दादा उस समय आठ साल के थे। उनकी माँ तो उनके जन्मते ही चल बसी थीं-दो बड़े लड़के पहले ही डिप्थीरिया से गुजर चुके थे। सो आते ही मेरी माँ इस घर की सब कुछ हो गयी थीं। उसके बाद मेरे पिताजी चल बसे-हम लोग यहीं रहे। उसके बाद तुम्हारे ससुर गुजर गये, हम लोग लेकिन रही गये यहाँ! पाँच साल हुए, पलासी के घोषाल-परिवार में मेरी शादी करके सँझले दादा ने मुझे दूर हटा दिया! माँ जिन्दा होती, तो कुछ भरोसा भी होता!

बड़ी बहू यहाँ हो? कहते हुए, नाटे कद के गोरे-गोरे-से एक बूढ़े सज्जन दरवाजे के पास आकर खड़े हुए।

मृणाल ने कहा-आओ-आओ! अचला की ओर देखकर होंठ दबाए हँसती हुई बोली-दीदीजी यही हैं अपने पतिदेव! अच्छा, तुम्ही बताओ, इस खूसट बूढ़े के बगल में सोहती हूँ मैं? इस जन्म का रूप-यौवन सब मिट्टी नहीं हो गया बहन?

अचला जवाब क्या दे, लाज से उसने सिर झुका लिया।

उन सज्जन का नाम था भवानी घोषाल। हँसकर बोले-आप इनकी सुनें मत दीदीजी-सब सफेद झूठ! इनकी यही कोशिश रहती है कि मुझे उड़ा दें! नहीं तो मेरी उम्र तो महज बावन या ति...

मृणाल बोली-चुप भी रहो, बहुत हुआ! यह सँझले दादा मेरा कितना दुश्मन है, भगवान ही जानते हैं! मुझे चारों तरफ से मिट्टी कर छोड़ा-अच्छा, इस बूढ़े के जिम्मे देने के बजाय, हाथ-पाँव बाँधकर मुझे पानी में डाल देना बेहतर नहीं होता, दीदीजी? तुम्हीं कहो बहन!

अचला वैसे ही सिर झुकाये बैठी रही।

घोषाल धीरे-धीरे अन्दर आये। अचला के लजीले झुके हुए मुख को कुछ देर चुपचाप देखते रहकर अचानक बोल उठे-आपने मेरी जान बचा ली दीदीजी-अब जाकर इस छोरी का गुमान जाता रहा! अचानक खूबसूरती के घमण्ड से यह आँख से देख नहीं पाती थी!! और पत्नी की ओर देखकर बोले-क्यों, हुआ न? जंगली इलाके में अब तक गीदड़ राजा; शहर का रूप किसे कहते हैं, आँख खोलकर देख लो!

मृणाल बोली-अच्छा, यह बात! मेरा घमण्ड जहाँ है-किसी की मजाल है जो तोड़े? कहकर उसने पति की तरफ छिपा कटाक्ष किया, लेकिन अचला ने देख लिया।

घोषाल हँसकर बोले-सुन लिया न दीदी-जरा सँभलकर रहियेगा! इन दोनों में जैसी पटती है, जैसा आना-जाना है कि कुछ कहा नहीं जा सकता!! और मैं तो खूसट बूढ़ा ठहरा, बीच में हूँ तो क्या, न हूँ तो क्या? अपने उनको सँभाले रहें-इस बूढ़े की यही बिनती है!

-मृणाल, तमाम रात तुम लोग यही करती रहोगी?-महिम ने आकर कहा।

-क्या करूँ?

-रसोई की तरफ नहीं जायेगी?

मृणाल उछल पड़ी-उफ् कैसी गलती हो गयी? उस उड़िया रसोइया को पहले ही देख आना चाहिए था। अच्छा, तुम लोग जाओ बाहर, हम जा रही हैं!

महिम ने पूछा-हम कौन?

मृणाल ने कहा-मैं और दीदीजी! फिर अचला से बोली-जब मैं आ गयी हूँ, तो इस गिरस्ती का सब कुछ तुम्हें समझाकर तब जाऊँगी!

महिम और भवानी बाहर चले गये। मृणाल ने अचला से कहा-मुझे दो दिन पहले आना चाहिए था। मगर सास के दमे के चलते, घर से निकल ही न पायी! अच्छा तुम कपड़े बदल डालो; मैं इतने में आती हूँ, आकर तुम्हें ले चलूँगी। मृणाल रसोई में चली गयी।

बारिश थम गयी थी, और गाढ़ी बदली छँटकर, नौमी की चाँदनी में आसमान बहुत कुछ साफ होता आ रहा था।

रसोई का सारा इन्तजाम करके मृणाल आकर अचला के पास बैठी। उसका एक हाथ अपने हाथ में लेकर बोली-इस दीदीजी से सँझली दी कहना कहीं अच्छा है, क्यों सँझली दी?

अचला ने धीमे से कहा-हाँ।

मृणाल बोली-रिश्ते में गरचे तुम बड़ी हो, मगर उम्र में मैं बड़ी हूँ। मुझे भी तुम मृणाल दीदी कहना, क्यों?

अचला ने कहा-अच्छा।

मृणाल बोली-आज तुम्हें रसोई दिखा लायी। कल एकबारगी भण्डार की कुंजी अँचरे के छोर में बाँध दूँगी, है न?

अचला ने कहा-कुँजी से मुझे कोई काम नहीं, बहन!

मृणाल बोली-काम नहीं है? बाप रे, यह कैसी बात! भण्डार आखिर कोई मामूली चीज है सँझली दी कि कह रही हो कुंजी से कोई काम नहीं? मालकिन की रियासत की वही तो राजधानी है!

अचला बोली-बला से राजधानी है, मुझे उसका लोभ नहीं! लेकिन तुम पर मुझे बहुत लोभ है!! इतनी आसानी से छोड़ नहीं देने की, मृणाल दीदी!!!

मृणाल ने दोनों बाँहों में अचला को लपेट लिया। कहा-सौत को झाड़ू मारकर भगाने के बजाय रोक रखना चाहती हो, तुम्हारी यह कैसी अकल है सँझली दी?

अचला ने धीमे-धीमे कहा-मगर तुम्हारे ये मजाक अच्छे नहीं लगे, बहन! इधर क्या सब ऐसे ही मजाक करते हैं?

मृणाल खिलखिलाकर हँस उठी-नहीं-नहीं दीदीजी, सब नहीं करते-मैं ही करती हूँ! सबको यह चीज नसीब कहाँ कि करें?

अचला बोली-नसीब हो तो भी हम ऐसी बात जबान पर नहीं ला सकतीं, बहन! हमारे कलकत्ते के समाज में, बहुत-से लोग तो शायद यह सोच भी नहीं सकते, कि कोई भद्र स्त्री यह सब जबान पर ला भी सकती है!

मृणाल मगर जरा भी लज्जित न हुई, बल्कि अचला को फिर एक बार गले से लगाते हुए बोली-तुम्हारे शहर की कितनी भद्र महिलाएँ इस तरह से गले लगा सकती हैं, यह तो कहो सँझली दी? सबसे क्या सब काम होता है? तुम्हें मैंने कितनी देर को देखा है, इसी में ऐसा लगता है कि मेरी कोई बहन न थी, एक छोटी बहन मिल गयी! और यह सहज बात नहीं, जिन्दगी भर मुझे इसका सबूत देना पड़ेगा, याद रखना!! इसमें हँसी-मजाक नहीं चलने का!!!

अचला पढ़ी-लिखी थी। गाँव के इस विरोधी समाज में उसका भावी जीवन कैसे कटेगा, यह घर में कदम रखते ही वह समझ गयी थी। उसने इस मौके को सहज ही नहीं छोड़ दिया।

परिहास को गम्भीरता में बदलकर बोली-अच्छा, मृणाल दीदी, सच ही क्या इसका सबूत तुम जीवन-भर जुगाती रहोगी?

मृणाल ने कहा-आखिर हम शहर की तो हैं नहीं बहन-बेशक जुगाना होगा! तुम्हें छूकर जो शपथ ली, मर जाऊँ, मगर पलटा तो इसे सकती नहीं!!

उस बात को और ज्यादा न चलाकर अचला ने दूसरी बात उठायी। हँसकर कहा-जल्दी चली नहीं जाओगी, यह भी वैसे ही कहो!

मृणाल हँस पड़ी। बोली-बेवकूफ जानकर और भी फन्दे में डालना चाहती हो, सँझली दी? मगर मैंने तो पहले ही कह दिया-ठीक से तुम्हें सब समझाये-बुझाये बिना न मानूँगी!

अचला ने सिर हिलाकर कहा-यह चार्ज लेने का आग्रह मुझे बिल्कुल नहीं।

मृणाल ने कहा-वही मैं कर लूँगी, तब जाऊँगी! ज्यादा दिन तो घर छोड़ने की गुंजाइश नहीं, बहन! जानती हो, कितनी बड़ी गिरस्ती है मेरे माथे के ऊपर?

अचला ने सिर हिलाकर कहा-नहीं, नहीं जानती।

मृणाल ने चौंककर कहा-सँझले दादा ने मेरे बारे में पहले तुमसे जिक्र नहीं किया?

अचला बोली-नहीं, कभी नहीं! अपने घर-द्वार के बारे में सब कुछ बताया था; लेकिन जो सबसे पहले बताना चाहिए था, वही तुम्हारे बारे में क्यों जो नहीं बताया, मुझे बड़ा अचरज लग रहा है!

मृणाल ने अनमने भाव से कहा-सो तो है!

अचला कुछ देर चुप रही। फिर हँसती हुई धीमे से बोली-पहले शायद तुमसे इनकी शादी की बात चली थी?

मृणाल तब भी अनमनी-सी सोच रही थी कुछ। बोली-हाँ।

अचला ने कहा-फिर हुई क्यों नहीं? होना ही तो ठीक होता!

अब इस बात ने मृणाल के कानों में चोट की। अचला की ओर नजर उठाकर बोली-वह होना न था, न हुआ!

अचला ने तो भी पूछा-होने में अड़चन क्या थी? तुम कुछ उनके नाते-रिश्ते की तो थी नहीं? इसके सिवा छुटपन में जो प्रेम पनपता है, उसकी उपेक्षा करना भी तो ठीक नहीं!

उसके पूछने के ढंग से मृणाल एकाएक चौंक उठी। जरा देर थिर निगाहों से अचला की ओर ताककर कहा-इस तरह तुम क्या टटोल रही हो, सँझली दी? तुम्हारा क्या ख्याल है, छुटपन के हर प्यार का यही आखिरी अंजाम है? या कि मनुष्य ब्याह कर देने में समर्थ है? यह सिर्फ इस जन्म का नहीं सँझली दी, जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है! जिनकी मैं सदा-सदा की दासी हूँ, उन्हीं के हाथों इन्होंने सौंप दिया मुझे। मनुष्य की इच्छा-अनिच्छा से क्या आता-जाता है?

अचला अप्रतिभ होकर बोली-ठीक है मृणाल दीदी-मैं वही पूछ रही थी।

बात वह पूरी नहीं कर सकी, चेहरा लाज से लाल हो उठा। मृणाल से यह छिपा न रहा। उसने अचला का हाथ अपनी मुट्ठी में लेकर स्नेह से कहा-सँझली दी, तुम्हें अभी उसी दिन पति मिला है, मगर मैं पाँच साल से उनकी सेवा कर रही हूँ! मेरी एक बात रखना, पति की इस दिशा को कभी अकल से आविष्कार करने की कोशिश मत करना! इसमें ठगी जाओ, वह भी बेहतर; लेकिन जीतने में लाभ नहीं!!

जद्दू ने बाहर से आवाज दी-दीदी, बाबुओं का आसन लगा दिया गया।

अच्छा, चल, मैं आयी-कहकर मृणाल हठात् दोनों हाथ बढ़ाकर अचला का मुखड़ा नजदीक खींचकर, उसे चूमकर जल्दी-जल्दी चली गयी।

(15)

-अरे ओ सँझली दी!

अचला घबराकर बगल के कमरे से आ पहुँची।

मृणाल ने कमर में फेंटा कस रक्खा था, और एक दराज को-अकेली ही सीधा करके रख रही थी। अचला के आते ही रंज होने का दिखावा करती हुई चिल्लाई-अरी मुँहजली, तुम हाथ-पाँव समेटे बैठी रहोगी, और तुम्हारे सोने का कमरा मैं सँवार दूँगी? उठाओ झाड़ू उस कोने को बुहार डालो! और हँसी न सँभाल पाकर खिलखिला उठी।

शोर सुनकर हरिया की माँ भी पीछे लगी आयी। बोली-तुम भी खूब कहती हो दीदी! इनके घर कितने तो नौकर-नौकरानी हैं-इन्हें झाड़ू छूने की कभी आदत भी है कि आप देहाती औरतों की तरह झाड़ू लगायें? मैं बुहार देती हूँ-कहकर वह झाड़ू उठाने लगी कि मृणाल ने डाँट बतायी-तू छोड़ भी! अपनी दीदी को मुझसे ज्यादा जानती है-कि बीच में पंच बनने आयी है? मृणाल ने जबरन झाड़ू अचला के हाथ में देकर कहा-अरे, तेरी दीदी चाहे तो वह काम करे, जो कोड़ियों देहाती स्त्रियाँ ने कर सकें! अचला से बोली-लो तो सँझली दी, उस कोने को झटपट बुहार दो!

अचला बुहारने लगी-तुम जादू जानती हो, मृणाल दीदी?

-कैसे, कहो तो?

अचला बोली-नहीं तो मैं भला घर बुहारने को झाड़ू उठाती? यह जादू नहीं तो क्या है?

मृणाल बोली-तुम नहीं उठाओगी तो कौन उठायेगी? तुम्हारा घर बुहारने के लिये उस टोले से जद्दू की मौसी आयेगी? लो, बातों में समय मत बिताओ, साँझ हो चली!

काम करते-करते अचला ने हँसकर कहा-खुद भी घड़ी-भर को न बैठोगी, और मुझको भी काम करा-कराके मार डालोगी। सच कहती हूँ-ये पाँच-छः दिन तुमने मुझसे जो करारी मेहनत कराई-कि चाय-बागान के मालिक भी कुलियों से नहीं कराते!

उसकी ठोढ़ी पर अँगुली की मीठी चोट मारकर मृणाल बोली-जभी तो घर-अँगना देखकर लगता है कि लछमी आयी है! मेहनत की कहती हो सँझली दी? पति-पुत्र, घर-गिरस्ती के चलते जब नहाने-खाने का समय न पाओगी, तभी तो औरत का जनम सार्थक होगा।

भगवान से मनाती हूँ, तुम्हारा वह दिन आये-मेहनत अभी हुई क्या है मलकिनी जी?-कहकर उसने हँसना चाहा, पर होंठ काँप गये।

हरिया की माँ अचानक फक् से रो पड़ी। बोली-यही आशीर्वाद दो दीदी, यही आशीर्वाद दो! उसे अचला की माँ की याद आ गयी। वह साध्वी जब असमय में ही चल बसीं, तो इत्ती-सी अपनी इस बच्ची को हरिया की माँ के ही हाथों सौंप गयी थीं। वही बच्ची अब इतनी बड़ी होकर पति की गिरस्ती करने आयी है।

मृणाल ने उसे डाँटकर कहा-अरी दईमारी, रोने क्या लगी? हरिया की माँ आँसू पोंछती हुई बोली-रोती क्या शौक से हूँ दीदी? तुम्हारी बात से, रुलाई रोके नहीं रुकती! तुम्हारी कसम, तुम नहीं आतीं-तो इस घर से हमारी एक रात भी कैसे कटती, सोच नहीं पाती हूँ!

छः दिन हुए मृणाल इस घर में आयी है। और आने के वक्त से ही, घर-द्वार से लेकर यहाँ के लोगों तक की शक्ल बदल देने में जुट गयी है। लेकिन उसके हर काम, हर हँसी-मजाक में उसके वापस जाने का आभास, अचला को बड़ा दुःखाता था। क्योंकि मृणाल के बात-काम, आचार-व्यवहार में एक इतनी बड़ी आत्मीयता थी कि उसकी ओट में खड़ी होकर, उझककर अचला अपने नये जीवन, अनचीन्ही गिरस्ती को चीन्ह लेने का मौका पा रही थी, और इससे भी एक बड़ी चीज को अच्छी तरह तथा खास तौर से पहचानने का कौतूहल हुआ था, वह स्वयं मृणाल को। उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं, यह उसके दो नंगे हाथों को देखने से ही समझ में आ जाता-फिर स्वास्थ्यविहीन बूढ़े स्वामी, जो किसी ओर से उसके उपयुक्त नहीं, तिस पर घर में मशक्कत की हद नहीं-बूढ़ी सास अब-मरी-तब मरी हालत में गले-से झूल रही है, वजह-बे-वजह उसकी बक-झक का अन्त नहीं-यह उसने मृणाल से ही सुना। लेकिन कोई भी प्रतिकूलता मानो सताकर, इस औरत को जीवन यात्रा के मार्ग में निश्चेष्ट करके नहीं बैठा सकती। मन के खुशी-गम के सिवा बाहर किसी चीज का जैसे कोई अस्तित्व ही नहीं-कुछ ऐसा ही भाव था इस देहाती स्त्री का। लगातार साथ रह कर वह समझ रही थी-कमल जैसे कीच में पैदा होते हुए भी कीच से परे है वैसे ही देहात की यह गरीब अपढ़ लड़की भी, रात-दिन हर तरह के दुःख-कष्टों की गोदी में रहते हुए भी, सभी प्रकार की व्यथा-पीड़ा से ऊपर ही तिरती चलती है। न तो उसे देह की क्लांति है, न

मुँह की शान्ति। लिहाजा अचला को भी वह सारे अनभ्यस्त कामों में घसीटे चल रही थी। गोकि वैसे किसी काम से उसकी शिक्षा-दीक्षा, उसके संस्कार का कोई मेल नहीं था। तो भी अचला को यही लगता था कि मुँह फेरकर खड़ी रहना बहुत बड़ी शर्म की बात है। अपने भाग्य को कोसते हुए जरा देर बैठकर पछताए, इन छः दिनों में इतना भी समय उसे नहीं मिला-सारे समय को काम, गपशप, हँसी-खुशी से ऐसा ही भर रखा था उसने। इसीलिये जब वह लौट जाने को कहती, अचला को लगता-तुरन्त यह मिट्टी का मकान, द्वार-खिड़की समेत-पल भर में ताश के महल-सा औंधा उलट जायेगा। मृणाल दीदी के चले जाने पर वह एक पल भी यहाँ टिकेगी कैसे?

साँझ के बाद एक बार अचला ने कहा-यह हरघड़ी जो तुम चलने की कहती हो-मैके आकर कौन इतनी जल्दी लौट जाना चाहती है, कहो तो? यह नहीं होने का। जब तक मैं कलकत्ते नहीं लौट जाती, तुम्हें रहना ही पड़ेगा!!

मृणाल बोली-क्या करूँ सँझली दीदी, सास बूढ़ी न आप मरेगी, न मुझे जीने देगी! मैं कहती हूँ, तू मर जा बूढ़ी!! तेरे बेटे की उम्र साठ की हो गयी, क्या अन्त में उसको निगलकर तब तू जायेगी? मगर रात-दिन इतनी जो खाँसती है, दम तो फिर भी नहीं घुटता!

अचला हँसकर बोली-शायद तुमको वह देख नहीं सकतीं?

मृणाल सिर हिलाकर बोली-फूटी आँखों नहीं!

अचला ने पूछा-और तुम?

मृणाल बोली-मैं भी नहीं! मैंने तो मन्नत मान रखी है-कि बुढ़िया गुजरे तो सवा रुपये का प्रसाद चढ़ाऊँ!!

अचला ने सिर हिलाकर कहा-लेकिन यकीन नहीं आता, दीदी! तुम्हें संसार में कौन सुहाता है-तुम्हारी बातों से यह समझना मुश्किल है!! शायद हो कि इस बुढ़िया को ही तुम सबसे ज्यादा चाहती हो!!!

मृणाल ने कहा-सबसे ज्यादा चाहती हूँ? हो शायद! कहकर उसने अचला का गाल मसल दिया और चली गयी।

अब गयी, अब गयी करते-करते भी मृणाल के कुछ दिन निकल गये। एक दिन अचानक अचला को यह लगा कि उसे जाने की जितनी जुबानी जल्दी है, सचमुच जाने की उतनी नहीं! सचमुच ही जाने को वह वास्तव में उतनी उत्सुक नहीं। अब तक उसकी आड़ में खड़ी हो वह दुनिया को जैसे पहचाने ले रही थी; अब उसके आवरण के बाहर आकर दुनिया की वह शक्ल उसकी आँखों में न रही। यहाँ आने के बाद से ही जब भी उसे पति से कभी मजाक करते देखा-उसके जी में छन् से लगा, अब लेकिन बीच-बीच में सुई चुभने लगी है। यह सब कुछ भी नहीं, इसमें मजाक के सिवा और कुछ नहीं, जी-खराब करने की बात ही नहीं-मेरा ही मन बड़ा पापी है-इस तरह से अपने को रोकने की जितनी भी चेष्टा करती-उतने ही, जाने कहाँ से संशय के ठीक उलटे तर्क उसके हृदय में, न चाहते हुए भी बार-बार मुँह निकाल कर उसे मुँह चिढ़ाया करते। महिम की स्वाभाविक गम्भीरता उसे ज्यादती सी लगती। वह वितर्क करती-जब मन में कुछ है नहीं, तो मजाक के बदले मजाक करने में क्या गुनाह है? जो मजाक से उत्तर नहीं दे सकता, वह कम-से-कम हँसकर उसका लुत्फ तो ले सकता है! लेकिन वह साफ देखा करती, कि मृणाल मजाक किया चाहती कि महिम तुरन्त भागकर जान-बचाता। सो वह इन दिनों इस चिन्ता को किसी भी तरह अपने मन से नहीं निकाल पाती, कि इसमें कोई अन्याय जरूर छिपा है। लगातार मृणाल के साथ कामकाज करते हुए भी हजार बार उसके जी में आता-कि औरत होकर, जी में ईर्ष्या की पीड़ा पालते हुए भी जब मैं इसके किसी तरह से छोड़ नहीं सकती, तो इतने दिनों तक साथ रहकर-कोई पुरुष क्या इस स्त्री को प्यार किये बिना रह सकता है?

अचला को यह न मालूम था, कि मृणाल के आते ही उड़िया रसोइया की जान का छुटकारा हो जाता था। अब की वह छुट्टी पाकर घूमता-फिर रहा था। अचला लेकिन यही गौर से देखती रही, कि अपने हाथों पकाकर महिम को खिलाना मृणाल को हृदय से अच्छा लगता। आज सुबह अचानक वह बोल उठी-मृणाल दीदी, आज तुम्हारी छुट्टी!

मृणाल समझ नहीं सकी। पूछा-काहे की सँझली दी?

अचला ने कहा-रसोई की! आज मैं रसोई करूँगी।

मृणाल अवाक् होकर बोली-हाय रे नसीब, तुम क्या रसोई करोगी?

अचला ने सिर हिलाकर कहा-वाह, मैं जैसे जानती ही नहीं! घर में कितनी ही बार मैंने पकाया है! आज नहीं मानूँगी, मैं आज जरूर रसोई करूँगी!!

उसकी जिद्द देखकर मृणाल म्लान हो गयी! बोली-अरे, यह भी होता है कहीं! मेरे रहते तुम किस दुःख से धुएँ में कष्ट करोगी?

उसके भाव को ध्यान से देखकर अचला और अड़ गयी-फिर रसोइया के होते तुम्हीं क्यों कष्ट उठाती हो? इस बेला मैं जरूर रसोई करूँगी!

उसे क्यों यह जिद्द हुई, मृणाल कुछ भी समझ नहीं सकी। वह हँसी दबाकर, बनावटी रूसने के ढंग पर बोली-वाह री लड़की! एक-एक कर तुम मेरा सब कुछ छीन लिया चाहती हो? सब तो ले चुकीं, दो दिन पकाकर खिला जाऊँ, यह भी शायद बर्दाश्त नहीं हो रहा? सौत की डाह शुरू हो गयी!

अचला के कलेजे के अन्दर फिर छिन्-से लगा। मृणाल की अन्तिम बात ने उसकी डाह की पीड़ा पर चोट की। वह जरा देर गम्भीर हो गयी, और बोली-नहीं, आज मैं ही पकाऊँगी!

मृणाल ने देखा-अचला रंज हो गयी है। सो उसने और विवाद नहीं किया। उदास होकर बोली-ठीक है, तुम्हीं पकाओ! चलो, मैं तुम्हें दिखा आऊँ, कहाँ पर क्या है।

महिम घर ही में था-यह बात दोनों में से किसी को मालूम न थी। अचानक उसे सामने देखकर दोनों अप्रतिभ हो गयीं।

उसने अचला से कहा-जब तक मृणाल है, वही रसोई करे न!

एतराज वह क्यों कर रही थी-महिम यह जानता था; पर यह तो खोलकर कहा नहीं जा सकता।

अचला और भी जल उठी। लेकिन गुस्से को पीकर सिर्फ बोली-नहीं, मैं ही रसोई करूँगी-और किसी बात का इन्तजार किये बिना वह चली गयी।

अचला जबर्दस्ती रसोई करने चली गयी। रसोई करने में वह किसी से कम नहीं थी, लेकिन इस ओर वह ध्यान ही नहीं दे सकी। पिछले दिनों के सारे किस्से हिलते-डुलते उसे चुभने लगे। उसे लगने लगा-शायद महिम कभी भी उसे वैसा प्यार नहीं कर सका है! विवाह से कुछ ही पहले सुरेश से जो ठन गयी थी, उन बातों को खोद-खोदकर याद करके, आज वह मानो साफ देख पाई कि महिम सदा से ही उसके प्रति उदासीन है। यहाँ तक कि पिताजी की राय से पहला रिश्ता जब बिल्कुल टूट जाने को था, उस समय भी महिम जरा भी नहीं डगमगाया-इसमें उसे जरा भी सन्देह न रहा!!!

जब से यहाँ आयी, मृणाल और अचला एकसाथ खाने बैठती थीं। दोपहर को अचला ने, मृणाल को बुलाने के लिये हरिया की माँ को भेजा और इन्तजार करती रही। हरिया की माँ ने लौटकर बताया-उन्हें बुखार-सा हो आया है, वे नहीं खाएँगी!

अचला कुछ बोली नहीं। मृणाल के कमरे में गयीं। मृणाल आँखें बन्द किये पड़ी थी। अचला ने कहा-मृणाल दीदी, चलो खा लें न!

मृणाल ने आँखें खोलकर देखा। मुस्कराती हुई बोली-तुम चलकर खा लो सँझली दी, मेरी तबियत ठीक नहीं!

अचला ने रूखे स्वर से पूछा-क्या हुआ? बुखार?

मृणाल ने कहा-वैसा ही लग रहा है! आजा फाका कर लूँ, ठीक हो जायेगा।

अचला ने झुककर मृणाल के कपाल का ताप देखकर कहा-मैं वैसी बेवकूफ नहीं हूँ दीदी, चलो खा लें न!

मृणाल सिर हिलाकर बोली-कसम सँझली दी, मैं कहती हूँ, खाने का उपाय नहीं! नाहक ही तुम कष्ट उठाकर मुझे बुलाने आयीं!! बल्कि चलो, मैं चलकर तुम्हारे पास बैठती हूँ!!!

अचला सख्त होकर बोली-एक भूखी मित्र को सामने बैठाकर खुद खाने की शिक्षा हमें नहीं मिली है, मृणाल दीदी!

मृणाल फिर भी हँसने की कोशिश करती हुई बोली-मगर मित्र के खाने की गुंजाइश न हो तब?

अचला ने उसी भाव से जवाब दिया-उपाय है क्यों नहीं, सुनूँ जरा? तुम्हें दरअसल बुखार नहीं हुआ है, हुआ है गुस्सा! खुद न खाकर मुझे भी भूखे मारने की ख्वाहिश हो, तो खोलकर कहो, मैं तंग न करूँगी!!

मृणाल झट उठकर झोंक में कह गयी-पति की सौगन्ध खाकर कहती हूँ सँझली दी, मैंने नाम को भी गुस्सा नहीं किया है! लेकिन खाने का सचमुच कोई उपाय नहीं!! चलो, मैं तुम्हें गोदी में बैठाकर खिलाऊँ!

अचला बोली-तो मतलब कि बुखार-उखार नहीं, बहाना है!

मृणाल चुप रह गयी। अचला खुद भी कुछ देर स्तब्ध-सी रहकर एक निःश्वास छोड़कर बोली-अब समझी! लेकिन तुमने शुरू में ही कह दिया होता दीदी, कि तुम मेरा छुआ घृणा से मुँह में नहीं रख सकोगी-तो नाहक जिद करके मैं तुम्हें भी तकलीफ न देती-और नौकर-दासियों के आगे खुद भी शर्मिन्दगी में न पड़ती!! खैर, मुझे माफ करना बहन-लेकिन दूध तो नहीं छुआ ना, एक कटोरा दूध ही ला दूँ-और जद्दू दुकान से मिठाई ले आये, क्यों?

पहले तो मृणाल काठ की मारी-सी रह गयी, जरा देर में वह स्थिति जाती भी रही, तो भी वह कुछ बोली नहीं, मुँह झुकाए चुप बैठी रही।

अचला ने फिर टोका-क्या कहती हो?

आँचल से आँखें पोंछकर मृणाल बोली-अभी छोड़ो!

अचला कुछ क्षण चुपचाप खड़ी रही, फिर धीरे-धीरे चली गयी।

मृणाल ने न सिर उठाया, न बात की। बुढ़िया सास के लिये उसे पकाना पड़ता है। वे बेहद अन्धविश्वासी हैं। कहीं यह सुन लें, तो उसके हाथ का पानी तक न छुएंगी-अचला को उसने इसका आभास तक नहीं दिया।

अचला रसोई में गयी। वहाँ का काम-काज कर लिया-और हाथ धोकर अपने कमरे में जाकर पड़ रही। लेकिन और चाहे जिस कारण से भी हो, केवल घृणा से ही मृणाल ने उसके हाथ की रसोई नहीं खाई-इसे अचला मन में झूठ ही समझती थी, इसीलिये उसने जानकर इस तरह का आघात पहुँचाया। अगर सच समझती, तो वह मुँह से उच्चारण भी नहीं कर पाती। पर जिस सुबह की शुरुआत कलह से हुई, उसकी दोपहर को भगवान् ने किसी की किस्मत में भोजन नहीं दिया था-इसे दोनों ने मन-ही-मन समझा।

तीसरे पहर बैलगाड़ी दरवाजे पर आकर खड़ी हुई, मृणाल अचला के कमरे में गयी और कहा-नमस्ते करने आयी हूँ सँझली दी, अपने घर जा रही हूँ! जी में कभी आये, तो बुलाना, फिर हाजिर हो जाऊँगी!! थोड़ा थमकर बोली-जाने के समय बात भी नहीं करोगी बहन? कहकर कुछ देर उत्सुकता से देखती रही।

लेकिन अचला एक शब्द न बोली। जैसे बैठी थी, सिर झुकाये वैसी ही बैठी रही। उसके कमरे से निकलते ही मृणाल ने देख-महिम घर आ रहा है। बोली-जरा रुक जाओ सँझले दादा, तुम्हें भी प्रणाम कर लूँ!

महिम ने पूछा-बिना खाए ही चल दी मृणाल? न हो आज की रात रहकर सुबह जाना!

मृणाल सिर्फ जरा होठों में हँसकर बोली-नहीं-नहीं, जद्दू गाड़ी ले आया। आज मैं जाती हूँ!! फिर कभी ले आना!!! यह कहकर उसने गले में अँचरा डालकर उसे प्रणाम किया, और चरणों की धूल ली। कहा-मेरे सिर की कसम, और एक बार बुलाना भूल मत जाना!

आज महिम हँस पड़ा। बोला-जलमुँही, तेरी आदत क्या कभी जायेगी नहीं? मरने पर जायेगी, उसके पहले नहीं-फिर एक बार हँसकर वह गाड़ी पर जा बैठी।

मृणाल अचानक आज ही चली जा सकती है-अचला ने यह कल्पना भी न की थी। मृणाल ने खुद नहीं खाया, न ही उसे खाने दिया, इसकी सबसे बड़ी सजा कैसे देगी-कमरे में अकेली बैठी अब तक यही सोच रही थी। जो प्यार करता है, उसे घृणा करने का दोष लगाने जैसी बड़ी सजा दूसरी नहीं-यह बात प्यार ही कह देता है! मृणाल के लिये यही सजा तजबीज करके अचला बैठी थी। मृणाल इसे ब्राह्म लड़की समझकर हृदय से घृणा करती है-उठते-बैठते यही उलाहना देकर इसका बदला चुकाने का निश्चय किया था, सो बेकार हो गया।

लेकिन भूखी मृणाल जब विदा लेकर कमरे से बाहर चली गयी, तो उसकी भी आँखें आँसुओं से भर गयी थीं; पर मृणाल के होंठों की उस रत्ती-भर हँसी की आवाज ने लमहे में, सूखे मरु की नाईं उस निकले आँसू को सोख लिया-और किवाड़ की आड़ से उन दोनों की विदाई का दृश्य देख, ठीक वज्र-गिरे पेड़ की नाईं जलती रही।

थोड़ी देर में जब महिम अन्दर आया, तो अचला का स्वाभाविक धीरज जड़ से खत्म हो चुका था। फिर भी लेकिन उसकी सदा की शिक्षा और संस्कार ने उसे इतरता से बचाया। जी-जान से अपने को जब्त करके, वह सख्त हँसी हँसकर बोली-शहर के आदमी के देहात में आकर बसने जैसी विडम्बना थोड़ी ही है, है न?

महिम ने स्त्री के मुँह की तरफ देखा, और कुछ क्षण चुप रहकर बोला-तुम अपने बारे में कह रही हो न? मैं समझ रहा था-शुरू में तुम्हें तरह-तरह का कष्ट होगा; लेकिन मृणाल से तुम्हारी बनेगी नहीं, यह नहीं सोच सकता था। क्योंकि उससे कभी किसी की लड़ाई नहीं हुई।

अचला बोली-लेकिन मुझी से मुहल्ले भर की सदा लड़ाई होती है, यही तुमने कहाँ सुना?

महिम ने धीरे-धीरे कहा-तुमने दिनभर खाया-पीया नहीं-छोड़ो, इस बात की अभी जरूरत नहीं!

अचला और भी जल-भुनकर बोली-मृणाल दीदी भी तो बिना खाए ही घर गयीं, लेकिन उनसे तो हँसकर बात करने में तुम्हें आपत्ति नहीं हुई!

महिम ने आश्चर्य से कहा-यह सब तुम क्या कह रही हो?

अचला बोली-यही कह रही हूँ कि मैंने कौन-सा ऐसा बहुत बड़ा अपराध किया, कि जिसके लिये मेरा अपमान किये बिना नहीं चल रहा था?

महिम ने हतबुद्धि होकर वही प्रश्न फिर पूछा। कहाँ-क्या कह रही हो, मतलब क्या है इन बातों का?

अचला अचानक जोर से बोल उठी-मतलब यही कि किस कसूर पर मेरा यह अपमान किया तुमने? मैंने क्या किया?

महिम विह्नल हो उठा-मैंने तुम्हारा अपमान किया?

अचला ने कहा-हाँ, तुमने!

महिम ने प्रतिवाद किया-झूठी बात!

अचला क्षणभर के लिये स्तम्भित हो रही। उसके बाद स्वर को कोमल करके कहा-मैं कभी झूठ नहीं बोलती! खैर, उसे छोड़ो, अगर तुम्हें सत्यवादी होने का अभिमान हो तो सच्चा जवाब दो!!

महिम उत्सुक आँखों से सिर्फ देखता रहा।

अचला ने कहा-मृणाल दीदी आज जो कुछ करके चली गयीं, उसे क्या तुम्हारे देहाती समाज में अपमान नहीं कहते?

महिम बोला-लेकिन उसमें मुझे क्यों घसीट रही हो?

अचला ने कहा-बताती हूँ। पहले यह कहो कि उसे यहाँ क्या कहते हैं?

महिम बोला-खैर, वही अगर हो...

अचला ने टोककर कहा-अगर हो नहीं, ठीक जवाब दो!

महिम बोला-हाँ, गाँव में भी लोग अपमान ही समझते हैं।

अचला बोली-समझते हैं न? फिर सब जान-सुनकर तुमने अपमान कराया है! तुम्हें बेशक पता था कि वे मेरा छुआ नहीं खायेंगी!! ठीक है या नहीं? कहकर अपलक आँखों से ताकती हुई, वह महिम के कलेजे के भीतर तक अपनी जलती निगाह गड़ाने लगी। महिम वैसा ही अभिभूत-सा देखता रहा-मुँह से एक शब्द भी न निकला।

ठीक ऐसे समय में बाहर से सुरेश की आवाज आयी-महिम, अरे कहाँ हो भाई-

(16)

-अरे, सुरेश! आओ-आओ, अन्दर आओ!! सब मजे में?

महिम का स्वागत-भाषण समाप्त होने के पहले ही, सुरेश सामने आकर खड़ा हुआ। हाथ के ग्लैडस्टोन बैग को उतार कर बोला-हाँ, मजे में! मगर यह क्या अकेले खड़े हो? अचला बहूरानी पल में सचला होकर कहाँ अन्तर्ध्यान हो गयीं? उनकी ऊँची आवाज ने तो मोड़ पर से ही-मुझे इस घर का पता बताया!

वास्तव में अचला की आखिरी बात नाराजगी में जरा जोर से निकली थी, वह घर के बाहर ही सुरेश के कानों तक पहुँची थी।

सुरेश ने कहा-देख लिया महिम, विदुषी स्त्री पाने का कितना बड़ा लाभ है? कै दिन हुए आये, और इसी बीच देहात के प्रेमालाप के ढंग तक को ऐसा हासिल कर लिया कि उसमें त्रुटि निकाल सके-देहात की स्त्री में भी ऐसी मजाल नहीं!

शर्म के मारे महिम का कान तक रंग गया। वह चुप खड़ा रहा।

सुरेश ने कमरे की ओर देखकर, अचला को लक्ष्य करके कहा-'बड़े बेमौके आकर मजा किरकिरा कर दिया भाभी, माफ करना! महिम, अरे खड़े हो? बैठने को कुछ हो तो ले चलो, जरा बैठूँ! चलते-चलते तो पाँव की गाँठें टूट गयीं-अच्छी जगह घर बनाया था भैया! चलो-चलो!!

चलो-कहकर महिम ने उसे बाहरी बैठक में ले जाकर बैठाया!!

सुरेश ने कहा-भाभी मेरे सामने न आयेंगी क्या? पर्दानशीन?

सुरेश के जवाब देने से पहले ही, अचला बगल का दरवाजा ठेलकर अन्दर आयी। उसके चेहरे पर कलह की जरा भी निशानी नहीं। प्रसन्न मुख हो बोली-यह सौभाग्य तो आशातीत है! मगर यों अचानक?

उसके प्रसन्न-हँसते चेहरे से सुख-सौभाग्य के निखरे विकास की कल्पना करके, सुरेश का कलेजा डाह से मानो जल उठा। हाथ उठाकर उसने नमस्कार किया। कहा-लगता है, यों अचानक आकर मैंने ठीक नहीं किया है-मगर हो क्या रहा था अभी? जीमपत पितेज कपिमतमदबम या जब से आयी हैं, मतभेद चल रहा है? कौन-सा ठीक है?

अचला ने हँसते हुए कहा-कौन-सा सुनने पर आप खुश होंगे? दूसरा है न? तो फिर मेरा वही कहना ठीक है-अतिथि का मन छोटा करना ठीक नहीं!

सुरेश का मुँह गम्भीर हो गया। बोला-किसने कहा? घर की मालकिन का वही तो असली काम है, वही पक्का परिचय है!

अचला ने हँसते हुए कहा-घर ही नहीं, तो घर की मालकिन कैसी! गरीब के इस झोंपड़े में आपकी रात कैसे बीतेगी-इसी की चिन्ता हो रही है मुझे। मगर धन्य हैं आप, जान कर यह दुःख उठाने आये!

पति की ओर देखकर बोली-अच्छा, नयन बाबू से कहकर चन्द्र बाबू के यहाँ रात को इनके सोने का इन्तजाम नहीं कराया जा सकता? उनका घर पक्का है-बैठका भी है। इन्हें कोई तकलीफ न होगी!

सौजन्य की आड़ में दोनों के श्लेष के इन वारों से महिम का मन अधीर हो रहा था। मगर इसे रोके कैसे, समझ नहीं आ रहा था-ऐसे में सुरेश ने खुद ही इसका प्रतिकार किया। हाथ जोड़कर बोल उठा-पहले जरा चाय-वाय दो भाभी, पीकर जरा संजीदा हो लूँ, फिर नयन बाबू

से कहो और श्रवण बाबू से कहो-चन्द्र बाबू के पक्के घर में सोने की सिफारिश पर भी राजी हूँ। मगर चाहे जो कहा महिम, इस गाँव-घर पर ऐसा खिंचाव होना तो खुशी की बात है!

महिम की ओर से अचला ने ही जवाब दिया। हँसकर कहा-खुशी होना न होना किसी के अपने ऊपर है; लेकिन यह मेरे ससुर का घर है-इस पर खिंचाव न हो ओर बड़े लाट के भवन पर हो, तो वही तो झूठ है! खैर, पहले संजीदा हो लीजिए, फिर बातें होंगी! मैं चाय के लिये पानी रखने को कह आयी हूँ। पाँचेक मिनट में चाय करती हूँ-तब तक मुँह बन्द करके जरा आराम कीजिए। कहकर हँसती हुई अचला चली गयी।

उसके वहाँ से जाते ही सुरेश के जी की जलन मानो बढ़ गयी। अपने को वह सदा कमजोर और चंचल चित्त का ही जानता था-और उसके लिये उसे लज्जा या क्षोभ भी न था। छुटपन में, महिम से उसकी तुलना करते हुए जब संगी-साथी उसे सनकी-ख्याली आदि कहा करते, तो वह मन-ही-मन खुश होकर कहता, कि यह सही है, कि मुझमें निश्चय की दृढ़ता नहीं, प्रवृत्ति से मैं मजबूर हूँ-किन्तु दिल मेरा साफ है, मैं कभी नीच या छोटा काम नहीं कर सकता। मैं अपनी आमदनी समझकर खर्च करना नहीं जानता, अच्छे-बुरे का विचार करके तब दान नहीं करता-मगर मेरा जी रो उठे तो बदन का कपड़ा तक किसी को दे आने में मुझे झिझक नहीं होती-सो जिसकी भी और जिस कारण से भी हो; मगर मेरे बारे में किसी को भी शिकायत करने की गुंजाइश नहीं कि सुरेश ने किसी से डाह की है या कि स्वार्थ के लिये ऐसा कुछ किया है-जो उसे नहीं करना चाहिए था। लिहाजा शुरू से दिल के मामले में जिसकी बेहद कमजोर होने की बदनामी थी-और खुद भी जिसे वह सत्य ही मानता था, उसी सुरेश ने जब अचला के सम्बन्ध में अन्तिम क्षण में अपने ऐसे कठोर संयम का परिचय पाया, तो अपने में इस अज्ञात शक्ति के आभास से न केवल खुश हुआ-बल्कि गर्व से उसकी छाती फूल गयी। अचला के विवाह के बाद दो दिनों तक वह अपने को यह कहता रहा कि मैं कमजोर और लाचार नहीं-प्रवृत्ति का गुलाम नहीं हूँ-जरूरत हो तो मन से सारी प्रवृत्ति को ही कुरेद कर फेंक दे सकता हूँ। अब मेरे मित्र और उनकी पत्नी यह सोचा करें-कि दोस्ती क्या चीज होती है और उसके लिये कोई कितना त्याग कर सकता है?

लेकिन किसी भी झूठ से ज्यादा दिनों तक कोई दरार भरकर नहीं रक्खी जा सकती। उसका आत्म-संयम सत्य न था, वह आत्म-प्रतारणा थी! नतीजा यह हुआ कि एक हफ्ता गुजरते-न-गुजरते उसके झूठे संयम का यह मोह-फूले हुए हृदय से धीरे-धीरे निकल कर उसे बड़ा संकुचित कर देने लगा। उसका मन बार-बार कहने लगा-इस त्याग से उसे क्या मिला? इस त्याग ने उसे क्या दिया? अब किस सहारे से वह अपने को खड़ा रक्खेगा? फूफी कहेंगी-बेटे, अब तुम ऐसी बहू ले आओ, उसके सहारे गिरस्ती सम्हालूँ।

एक दिन समाज के फाटक पर केदार बाबू से भेंट हो गयी। उन्होंने साफ कहा, कि गलती हो गयी। महिम से अचला के ब्याह में वे शुरू से ही राजी न थे-लेकिन चूँकि सुरेश उदासीन-सा रहा, इसलिये लाचारी में राजी होना पड़ा। घर लौट कर उसका मन शाप देने लगा-कि इस विवाह से दोनों में से कोई सुखी न हों! मेरे मित्र भी औकात से बाहर जाने की गलती महसूस करें, और अचला भी अपनी भूल समझकर अफसोस की आग में जले। लेकिन जो भी हो, उसका दिल छोटा नहीं है। इस बुरा-चाहने के लिये वह अपने मन को तरह-तरह से दबाने लगा, पर उसका दुःखी और प्रताड़ित मन वश में न आया-जिद्दी लड़के की नाईं बार-बार उसी को दुहराने लगा। इसी तरह उसने एक महीना तो काटा, और एक दिन कुतूहल को दबा न पाकर-हाथ में बैग लिये महिम के घर जा पहुँचा।

सुरेश ने दोस्त की तरफ ताककर कहा-अब समझ रहे हो महिम, मेरी बात कितनी सही थी?

महिम ने पूछा-कौन-सी बात?

सुरेश ने विज्ञ जैसा कहा-देहात में मैं रहता जरूर नहीं हूँ, पर उसका सब कुछ मैं जानता हूँ! मैंने आगाह नहीं किया था तुम्हें, कि गाँव से, समाज से बड़ा विरोध होगा?

महिम ने सहज ही कहा-कहाँ, विरोध तो वैसा कुछ नहीं हुआ!

-विरोध और किसे कहते हैं? तुम्हारे यहाँ किसी ने भोजन किया? यही क्या काफी बेइज्जती नहीं?

-मैंने किसी को खाने के लिये कहा नहीं।

-नहीं कहा? अच्छा हाँ, दावत का मुझे तो न्यौता ही नहीं दिया!

-दावत ही नहीं हुई!

सुरेश ने अचरज से कहा-दावत नहीं हुई? ओ, तुम्हारा तो-लेकिन ऐसे कब तक खैर मनाओगे? आफत-मुसीबत है, बाल-बच्चों का जनेऊ-ब्याह है-दुनियादारी करो तो है क्या नहीं? मैं कहता हूँ...

जद्दू से चाय का सरंजाम लिवाए, खुद मिठाई की रकाबी लेकर अचला आयी। सुरेश की अन्तिम बात उसके कानों पहुँची थी, पर चेहरे के भाव से सुरेश उसे समझ न सका। दोनों दोस्तों का नाश्ता और चाय पीना हो चुका, तो कन्धे पर चादर रखकर महिम उठ खड़ा हुआ। गाँव का जमींदार था मुसलमान। महिम उसके लड़के को अँग्रेजी पढ़ाता था। जमींदार खुद लिखा-पढ़ा न था, मगर उदार था और महिम पर अच्छा ख्याल रखता था। इसीलिये समाज की दुहाई देकर गाँव के लोग उस पर जुल्म करने की हिम्मत न कर सके।

अचला ने कहा-आज पढ़ाने न जाते तो क्या था?

महिम बोला-क्यों?

अचला के मन की शक्ति और हृदय की निर्मलता जितनी बड़ी भी क्यों न हो-सुरेश से उसका सम्बन्ध जैसा हो गया था, कि उसके इस अचानक आगमन से कोई भी स्त्री संकोच किये बिना नहीं रह सकती। सुरेश को वह पहचानती थी। उसका हृदय चाहे जितना बड़ा हो, उसकी सनक पर उसे आस्था न थी, बल्कि डर ही लगता था। उसी के साथ उसे अकेली छोड़कर जाने के इस प्रस्ताव से वह उत्कण्ठित हो उठी, मगर चेहरे पर उसे जाहिर न होने दिया और बोली-खूब! यह भी होता है? मेहमान को अकेला छोड़कर...

महिम ने कहा-मेहमान-नवाजी में इससे कमी न होगी। फिर, तुम तो हो ही. ..

अचला ने धुकचुक करके कहा-लेकिन मैं भी नहीं रह सकूँगी। यह जो उड़िया रसोइया है अपना, ऐसा पक्का है यह कि उसके साथ न रहो, तो एक कौर भी मुँह में रखना मुश्किल। मैं बताऊँ, तुम बल्कि...

महिम ने सिर हिलाकर कहा-नहीं-नहीं, सो न होगा! महज घण्टे-दो-घण्टे की तो बात है!! और उसने कोने से अपनी छड़ी उठा ली। एक तो यों ही महिम का नियम टूटना मुश्किल, तिस पर एक मामूली-सी बात के लिये बार-बार आग्रह करने में भी अचला को शर्म आने लगी-कहीं इस डर का राज सुरेश को मालूम हो जाये तो और भी शर्मिन्दा न होना पड़े।

महिम धीरे-धीरे चला गया। उसे सुनाते हुए सुरेश ने अचला से कहा-नाहक ही जबान खोलना! शुरू से जानता हूँ, वह ऐसा आदमी ही नहीं कि किसी का कहा माने!! तुम मुझे कोई किताब देकर अपने काम में चली जाओ, मेरा समय मजे में कट जायेगा।

यह बात अचला को अचानक लग गयी। सच ही महिम कभी उसका कोई अनुरोध नहीं मानता। यह उसका एक बड़ा गुण हो चाहे, फिर भी सुरेश के मुँह से पति की इस कर्त्तव्य-निष्ठा की बात, उसी के सामने-उसे अपमानजनक उपेक्षा-सी लगी। वह कुछ बोली नहीं। जद्दू से एक किताब भिजवाकर वह रसोई में चली गयी।

काफी रात हुए जब सब सोने गये, तो महिम ने पूछा-सुरेश ने तुमसे कुछ कहा कि कितने दिन यहाँ रहेगा?

एक तो यों ही आज कई कारणों से वह पति पर प्रसन्न न थी, तिस पर इस पूछने में कुछ टेढ़ा व्यंग्य है-यह सोचकर वह कुढ़ गयी। रुखाई से पूछा-इसका मतलब?

महिम अवाक् हो गया। उसने सहज ही ढंग से जानना चाहा था, व्यंग्य-मजाक नहीं किया था। असल में इतनी देर की बातचीत में, संकोचवश वह मित्र से यह बात पूछ न सका, न सुरेश ने ही बताया। उसे उम्मीद थी कि सुरेश ने अचला को जरूर ही बताया होगा।

महिम को चुप देख अचला आप ही बोली-इस बात का अर्थ इतना आसान है कि तुमसे पूछने की भी जरूरत नहीं! तुम्हारा ख्याल है, सुरेश बाबू कुछ नीयत लेकर आये हैं, और उसे पूरा होने में कितना समय लगेगा-मैं समझती हूँ। यही न?

महिम कुछ देर चुप रहकर बोला-मेरा ऐसा कोई ख्याल नहीं! लेकिन मृणाल के व्यवहार से आज तुम्हारा मन ठीक नहीं है, तुम कुछ भी धीर होकर समझ नहीं सकोगी। आज सो जाओ, कल बातें होंगी! कहकर उसने करवट बदल ली।

अचला भी लेट गयी, पर उसे किसी भी प्रकार की नींद न आयी। उसके मन में दिनभर जो खीझ जमा होती रही थी-वह किसी झगड़े के रूप में निकल जाती तो शायद उसे चैन मिलता-लेकिन इस तरह से उसकी जुबान ही बन्द कर देने के कारण वह भीतर-ही-भीतर जलती रही। वह प्रसंग तो बन्द हो गया, जबर्दस्ती उसे खोदकर झगड़ने में जो कमीनापन है, अचला के लिये वह भी असम्भव था। सो कल्पना में ही पति को विपक्ष में खड़ा करके, सुलगते सवालों से घायल करती हुई वह बिस्तर पर छटपटाती रही।

नींद जरा देर से टूटी। हड़बड़ा कर अचला बाहर निकली कि देखा-जद्दू चाय की केतली हाथ में लिये रसोई की तरफ जा रहा है। पूछा-बाबू कुछ कह गये हैं?

जद्दू ने कहा-कह गये हैं-पहर भर में लौटेंगे!

अचला ने पूछा-नये बाबू जग गये हैं?

जद्दू बोला-जी! उन्होंने तो चाय के लिये कहा है।

अचला ने झटपट मुँह धोया, कपड़े बदले और बाहर निकली। देखा-सुरेश कब का तैयार हो चुका है। कमरे की सारी खिड़कियाँ खोल दी हैं, दरवाजे के सामने एक कुर्सी रखकर कलवाली किताब पढ़ रहा है। अचला के पैरों की आहट से उसने नजर उठाकर देखा। अचला के चेहरे पर, रात के जागने के सारे ही लक्षण साफ झलक रहे थे। आँखों के नीचे स्याही-सी, गाल फीके, होंठ सूखे-सुरेश देखने लगा और उसका जी डाह की आग से जलने लगा; मगर अपनी नजर वह किसी भी तरफ हटा न सका । उसके देखने के ढंग से अचला को अचरज

हुआ, लेकिन वह मतलब न समझ सकी। बोली-कब जगे आप? मुझे तो उठने में आज देर हो गयी।

वही तो देख रहा हूँ-कहकर सुरेश ने धीरे-धीरे गर्दन हिलाई, सामने की दीवार पर बड़ा-सा एक पुराना आयीना टँगा था-ठीक उसी समय आयीने की तरफ देखते ही, एक पल में अचला के सामने सुरेश की उस निगाह का अर्थ साफ हो गया, और अपनी श्रीहीनता की शर्म से वह मानो गड़ गयी। अपना यह मुँह वह कहाँ छिपाए, या सुरेश की मूल धारणा का प्रतिवाद करे-वह कुछ भी न सोच सकी, और जल्दी से कमरे से बाहर निकल गयी। कहती गयी-आपकी चाय ले आऊँ!

सुरेश कुछ नहीं बोला, एक लम्बी उसाँस भरकर वह सूनी आँखों देखता हुआ मौन बैठा रहा।

दसेक मिनट के बाद चाय लेकर अचला आयी, तो सुरेश अपने को सम्हाल चुका था। चाय का घूँट लेते हुए वह बोला-तुमने नहीं पी?

अचला हँसकर बोली-मैं अब नहीं पीती।

क्यों?

अब अच्छी नहीं लगती! तिस पर यह जगह शायद गर्म है, पीने से नींद नहीं आती। कल तो तमाम रात सो ही नहीं सकी। एक रात नींद न आये तो ऐसी बन जाती है सूरत, कि यह जला मुँह किसी को दिखाना मुश्किल! कहकर शर्माती हुई वह हँसने लगी। सुरेश कुछ क्षण चुप रहकर बोला-मगर यह तो तुम्हारी बचपन की आदत है! महिम अनुरोध नहीं करता, पीने का?

अचला हँसकर बोली-करे भी तो सुनता कौन है? और यह ऐसी चीज ही क्या है कि पिए बिना न चले?

अचला की यह हँसी सूखी थी, यह सुरेश ने स्पष्ट देखा। वह फिर कुछ देर चुप रहकर बोला-तुम्हें तो मालूम है, भूमिका बनाकर बात करने की मेरी आदत नहीं, मुझसे बनता भी नहीं! मगर तुमसे जी-खोलकर दो-एक बात पूछूँ तो नाराज होगी?

अचला हँसकर बोली-खूब है आपकी बात! नाराज क्यों होने लगी?

सुरेश ने कहा-खैर! तो यह पूछूँ, तुम यहाँ सुखी हो?

अचला का हँसता मुखड़ा लाल हो उठा। बोली-आपका यह पूछना भी उचित नहीं!

-उचित क्यों नहीं?

अचला सिर हिलाकर बोली-नहीं! मैं सुखी नहीं हूँ-यह बात आपके मन में आना ही नाजायज है!!

सुरेश जरा फीका हँसा। बोला-मन क्या कुछ जायज-नाजायज सोचकर विचार करता है अचला? महज दो महीने पहले, ऐसा सोचना मेरे लिये उचित ही नहीं, अधिकार था? इन दो महीनों के अरसे में वह अधिकार मेरा जाता रहा है, तो जाये, उसकी नालिश नहीं करूँगा-अब मैं केवल यह हकीकत जानकर जाना चाहता हूँ। जब से आया हूँ, कभी तो लगता है कि जीत गयी हो, कभी लगता है, हार गयी हो। मेरा मन भी तुमसे छिपा नहीं, एक बार सच-सच कहो तो क्या है?

रुलाई का एक बेरोक उफान अचला के गले तक उठ आया-लेकिन जी-जान से उसे रोककर, जोरों से सिर हिलाकर बोली-मैं मजे में हूँ।

सुरेश ने धीमे से कहा-ठीक है!

इसके बाद कुछ देर तक, दोनों में से किसी को जैसे कोई शब्द ढूँढ़े न मिला।

अचानक चौंककर सुरेश बोला-और एक बात, मैंने तुम्हारे लिये इतना झेला, यह तुम्हें कभी...

अचला ने दोनों कानों में अँगुली डालकर कहा-माफ करें, यह चर्चा आप न करें!

दोनों हाथ खुले दरवाजे में फैलाकर, भागने की राह रोकते हुए सुरेश ने कहा-नहीं, माफ मैं नहीं कर सकता, तुम्हें सुनना ही पड़ेगा!

सुरेश की आँखों में वही दृष्टि-जिसकी याद आते ही अचला आज भी सिहर उठती है। थोड़ा पीछे हटकर डरती हुई बोली-अच्छा, कहिए।

सुरेश बोला-डरो मत, बदन में हाथ न लगाऊँगा-इतना होश अभी है! सुरेश फिर कुर्सी पर बैठ गया। बोला-इतना तो तुम्हें याद रखना ही होगा कि तुम पर अपना अधिकार मैं गर्चे खो चुका हूँ, पर मेरे ऊपर तुम्हारा सारा अधिकार है! टोककर अचला ने कहा-इसे याद रखने में मुझे कोई लाभ नहीं, लेकिन... कहते-कहते उसने देखा, इस बात ने चोट पहुँचाकर सुरेश को बदरंग बना दिया, और तुरन्त खुद भी उसने महसूस किया कि उसे भी अफसोस ने चोट की है।

वह कुछ देर चुप रही। फिर बोली-सुरेश बाबू, यह बातें सुनना मेरे लिये पाप है, और आपका भी बोलना उचित नहीं! आप ये बातें उठाकर मुझे क्यों दुःखाते हैं?

उसके चेहरे पर नजर रोककर सुरेश ने कहा-दुःख होता भी है, अचला?

अचला के मुँह से एकाएक निकल पड़ा-आखिर मैं क्या पत्थर हूँ?

सुरेश ने अपनी निगाह अचला पर से नहीं हटायी, पर अचला की आँखें झुक गयीं। सुरेश ने धीरे-धीरे कहा-बस, यही मेरे जीवन-भर का सहारा रहा-इससे ज्यादा नहीं चाहता मैं!

वह कुछ क्षण स्थिर रहकर फिर बोला-जब तुम पत्थर नहीं हो, तो इस अन्तिम भीख से तुम मुझे वंचित नहीं कर सकतीं! तुम्हारे सुख की जिम्मेदारी जिस पर है, रहे; लेकिन तुम्हारे हाथों जब दुःख ही मिलता रहा है, तो तुम्हारे दुःख का बोझा भी आज से मेरा रहे-यही वरदान मैं माँगता हूँ-यही भीख दो! कहते-कहते आँसुओं से उसका गला रुँध गया। अचला की आँखों से भी-उसके पिछले दिन और रात की सारी संचित वेदना, न चाहते हुए भी गल कर झरने लगी।

इतने में दरवाजे के बाहर जूतों का शब्द सुनाई पड़ा, और तुरन्त ही अन्दर दाखिल होते हुए महिम ने कहा-क्यों भई, सुरेश, चाय-वाय पी?

सुरेश से तुरन्त जवाब देते न बना। उसने किसी प्रकार सिर झुकाकर धोती के छोर से आँखें पोंछीं और अचला आँचल से मुँह छिपाए महिम के बगल से जल्दी से निकल गयी। महिम एक पाँव चौखट के अन्दर और एक बाहर रखकर, काठ मारा-सा खड़ा रह गया।

(17)

अपने को जब्त करके महिम अन्दर एक कुर्सी पर बैठ गया।

जिस स्थिति में मनुष्य का मन निहायत बेहयाई और तपाक से झूठ गढ़ सकता है, सुरेश के मन की वही स्थिति थी। उसने झट हाथ से आँसू पोंछकर शर्माया-सा कहा-सचमुच मैं बेहद कमजोर ही पड़ा हूँ! लेकिन महिम ने इसके लिये कोई बेचैनी न दिखाई, यहाँ तक कि इसका कारण भी न पूछा।

तब सुरेश आप अपनी कैफियत देने लगा। बोला-कहने को जो चाहे कहें लोग, मगर मैं यह जोर के साथ कह सकता हूँ-कि इन लोगों की आँखों में आँसू देखकर, जाने कहाँ से तो अपनी आँखों में भी आँसू आ जाता है-रोके नहीं रुकता! मैं नहीं पहुँच गया होता, तो केदार बाबू तो इस बार हर्गिज नहीं बचते। मगर बड़ा अजीब बदमिजाज है! महिम, इकलौती लड़की-उसे भी खबर नहीं करने दी। शादी होने के दिन से ही जो नाराज हैं, सो नाराज ही हैं! मैंने कहा-होना था सो तो हो ही चुका।

महिम ने पूछा-चाय तो मिली?

सुरेश ने सिर हिलाकर कहा-हाँ, मिल गयी! मगर बाप से ऐसा सलूक मिले तो किसकी आँखों में आँसू न आये!! कहो, मर्द ही नहीं झेल सकते, फिर यह तो औरत ठहरी!!!

महिम बोला-बजा है! रात सोने में दिक्कत तो नहीं हुई, नींद आयी थी ठीक! नयी जगह...

सुरेश झट बोल उठा-नहीं, नयी जगह में मुझे नींद में कोई दिक्कत न हुई। एक ही करवट में सबेरा हो गया! अच्छा महिम, केदार बाबू ने अपनी बीमारी के बारे में कतई बताया ही नहीं? अजीब बात है!

महिम ने बिल्कुल सहज भाव से कहा-बेशक अजीब है! फिर जरा हँसकर कहा-मुँह धोकर जरा घूमने नहीं चलोगे? जाओ, झटपट तैयार हो लो-मुझे फिर घण्टे-भर में ही निकलना पड़ेगा। मेरा तो सुबह का नित्यकर्म भी नहीं हुआ!

सुरेश ने किताब में ध्यान गड़ाते हुए कहा-कहानी मजे की लग रही है, खत्म ही कर डालूँ।

वही करो। मैं दो घण्टे के अन्दर-अन्दर लौट आऊँगा।-कहकर महिम वहाँ से उठ गया।

उसके मुड़ते ही सुरेश ने नजर उठाकर देखा। लगा-किसी अदेखे हाथ ने मानो उसके समूचे चेहरे पर शर्म की स्याही फेर दी।

जिस दरवाजे से महिम गया, उसी खुले दरवाजे की ओर एकटक देखता हुआ सुरेश काठ-जैसा सख्त हो रहा। लेकिन अन्दर-ही-अन्दर उसके अयाचित उत्तरदायित्व की सारी विफलता, कुढ़न से उसके सर्वांग में डंक मारती रही।

महिम ने नजर उठायी, कि अचला ने अस्वाभाविक स्वर में पूछा-मेरे पिताजी ने कोई बहुत बड़ा अपराध किया है?

अचानक ऐसे सवाल का मतलब न समझ कर, महिम उत्सुक होकर उसको केवल देखता रहा।

अचला ने फिर पूछा-मेरी बात शायद समझ नहीं सके।

महिम ने कहा-नहीं। प्रिय न होते हुए भी बात साफ है, मगर मतलब समझना मुश्किल है-कम-से-कम मेरे लिये!

भीतर के क्रोध को भरसक दबाते हुए अचला ने कहा-कठिन तुम्हारे लिये दोनों में से कोई नहीं-कठिन है कबूल करना! जो बात सुरेश को तुम सहज ही जता आये, वही बात मुझे बताने की तुम्हें हिम्मत नहीं पड़ रही है शायद। महिम, आज मैं तुमसे साफ पूछना चाहती हूँ, कि मेरे पिताजी तुम्हारे लिये इतने नाचीज हैं कि उनकी सख्त बीमारी की बात पर भी ध्यान देना तुम जरूरी नहीं समझते?

महिम ने कहा-बेशक जरूरी समझते हैं! मगर जहाँ यह जरूरी न हो, वहाँ मुझे क्या करने को कहती हो?

अचला ने कहा-कहाँ जरूरी नहीं है, सुनूँ जरा?

महिम ने चुपचाप एक बार स्त्री की ओर ताका, और कड़े स्वर में कह बैठा-जैसे अभी-अभी सुरेश के लिये नहीं था! और जैसे इसके लिये तुम्हारा भी नाराज होकर मेरे मुँह से कठोर शब्द कहलाना जरूरी न था। खैर छोड़ो! जिसके नीचे कीचड़ है, उस पानी को कदोड़ करना मैं बुद्धिमानी नहीं समझता। कहकर महिम बाहर आ रहा था, अचला ने झपटकर सामने से रास्ता रोक लिया। जरा देर वह दाँतों से अपना होंठ जोरों से दबाये रही, ठीक जैसे किसी आकस्मिक चोट को-मार्मिक चीख को जी-जान से दबा रही हो, ऐसा लगा। उसके बाद बोली-बाहर क्या कोई जरूरी काम है? दो मिनट रुक नहीं सकोगे?

महिम बोला-रुक सकता हूँ।

अचला बोली-तो फिर बात साफ ही हो ले! पानी जब हट जाता है-कीचड़ का पता तभी चलता है, यही?

महिम ने सिर हिलाकर कहा-हाँ!

अचला ने कहा-नाहक ही पानी को कदोड़ करने की मैं भी हिमायती नहीं, मगर इस डर से पंकोद्धार भी बन्द रखना क्या ठीक है? कदोड़ होता हो तो हो-मगर कीचड़ से छुटकारा मिले! क्या ख्याल है?

महिम ने सख्त होकर कहा-मुझको एतराज नहीं, लेकिन उससे भी जरूरी काम पड़ा है-अभी समय नहीं है!

अचला ने वैसी ही सख्त आवाज में कहा-तुम्हारे इस ज्यादा जरूरी काम के हो जाने पर तो मिलेगी फुर्सत? खैर, न होगा, मैं तब तक इन्तजार करूँगी! कहकर वह रास्ते से हट गयी।

महिम कमरे से बाहर हो गया। जब तक वह दीखता रहा, तब तक वह स्थिर खड़ी रही, उसके बाद किवाड़ बन्द कर लिया।

घण्टे भर बाद जब नहाने को कहने के लिये वह सुरेश के कमरे में पहुँची, तो उसकी थकी और शोकभरी सूरत का अनुभव सुरेश नजर उठाते ही कर सका। वह समझ गया-हो-न-हो, महिम से उसकी कुछ खटपट हुई है। वह सिमट-सा गया, मगर प्रश्न करने की हिम्मत न हुई।

अचला चुप खड़ी रही, फिर पूछा-यह क्या हो रहा है?

सुरेश कपड़ों को बैग में सहेज रहा था। बोला-गाड़ी तो एक ही बजे जाती है।

पहले से सब ठीक-ठाक किये लेता हूँ!

अचला ने आश्चर्य से पूछा-आप क्या आज ही चले जायेंगे?

सुरेश ने सिर बिना उठाये ही कहा-हाँ!

अचला बोली-लेकिन क्यों भला?

सुरेश ने उसी तरह सिर झुकाये हुए ही कहा-और ज्यादा रहना क्या? तुम लोगों से एक बार भेंट करनी थी, हो गयी!

अचला जरा देर चुप रही। बोली-तो आप इधर आ जाइए। यह सब काम औरतों का है, आप लोगों का नहीं! मैं सब सहेज देती हूँ। वह आगे बढ़ आयी। सुरेश बोल उठा-अरे नहीं-नहीं, तुम छोड़ दो-यह भी ऐसा क्या काम है-यह तो...

लेकिन उसके मुँह की बात खत्म होने से पहले ही अचला ने बैग उसके हाथ से ले लिया। उसकी चीजों को बाहर निकाला, और तह किये हुए कपड़ों को फिर से चपोत-चपोत कर बैग में भरने लगी। पास खड़ा सुरेश सकुचा कर कहता गया-कोई जरूरत नहीं थी इसकी... अगर... मैं खुद ही वगैरा-वगैरा।

अचला ने थोड़ी देर तक उसकी किसी बात का जवाब नहीं दिया। काम करते-करते कहने लगी-आपकी बहन या स्त्री होती तो यह काम वही करती-आपको नहीं करने देती! मगर आपको डर है, कहीं आपके दोस्त आकर देख न लें-है न? मगर देखें तो क्या? यह काम तो औरतों का ही है!

सुरेश चुप खड़ा रहा। अभी-अभी महिम के साथ उसका जो कुछ हो चुका, अचला उसे बेशक नहीं जानती, लिहाजा उस बात का जिक्र करके उसे दुखाने की हिम्मत न हुई; लेकिन डर भी लगता रहा-कहीं महिम आकर फिर अपनी आँखों से न देख ले।

बैग को ढंग से सजाकर अचला ने धीरे-धीरे कहा-पिताजी की बीमारी का जिक्र न करना ही ठीक था, इससे उनका महज अपमान ही हुआ-उन्होंने तो डकार भी न ली।

सुरेश ने चकित होकर कहा-महिम ने तुमसे क्या कहा?

अचला ने उसकी बात का जवाब नहीं दिया, आँख के इशारे से बगल के दरवाजे को दिखाकर कहा-वहाँ खड़ी होकर मैंने अपने कानों सब सुना।

सुरेश ने अप्रतिभ होकर कहा-इसके लिये मैं तुमसे माफी चाहता हूँ, अचला!

अचला ने हँसकर कहा-क्यों?

अफसोस के साथ सुरेश बोला-कारण तो तुमने खुद ही बनाया! अपनी गलती से मैंने तुम्हारा और उनका, दोनों का अपमान किया है। खास करके इसीलिये तुमसे क्षमा माँगता हूँ।

अचला ने नजर उठाकर देखा। अचानक भीतर के आवेग से उसकी आँखें, उसका चेहरा दमक उठा; बोली-आपने किया चाहे जो कुछ भी हो सुरेश बाबू, किया मेरे ही लिये है न? मुझे शर्मिन्दगी से बचाने के लिये ही तो यह शर्मिन्दगी आपको झेलनी पड़ी! फिर भी आपको मुझसे माफी माँगनी पड़े, ऐसी अनाड़ी मैं नहीं हूँ!! आप किसलिये लज्जित हो रहे हैं? जो किया ठीक ही किया!

सुरेश की ठगी-सी सूरत देखकर अचला ने समझा-वह उसकी बात का मर्म समझ नहीं सका। इसलिये थोड़ी देर चुप रहकर बोली-आप आज न जायें सुरेश बाबू! यहाँ आपको अगर कुछ शर्मिन्दा होना पड़ा है, तो वह मेरी लाज ढाँकने के लिये; वरना अपने लिये आपको पड़ी भी क्या थी! और यह घर अकेले आपके मित्र का नहीं है, इस पर मेरा भी तो कुछ अधिकार है। उसी बल पर मैं आपको आमंत्रित करती हूँ, आप मेरे अतिथि होकर और कुछ दिन रहें!

उसका साहस देखकर सुरेश ठक् रह गया। दुविधा में पड़कर वह कुछ कहना ही चाहता था कि देखा-महिम आ रहा है।

अचला उस समय तक सामने बैग को रखे, इधर को पीठ किये बैठी थी। महिम के आने की बात न जानकर कहीं वह और कुछ न बोल उठे, इस डर से सुरेश सकुचाकर बोल उठा-तुम्हारा काम हो चुका महिम?

-हाँ, हो गया! कहकर अन्दर आते ही, अचला को उस हालत में देखकर बोला-यह क्या हो रहा है?

अचला ने मुँह फेरकर देखा, मगर उस सवाल का जवाब न देकर पिछले प्रसंग के सिलसिले में बोली-आप हमारे मित्र हैं, और मित्र ही क्यों, आपने जो कुछ हमारे लिये किया है, उससे आप मेरे आत्मीय हैं! आपके इस तरह चले जाने से मेरी लज्जा और क्षोभ की सीमा न रहेगी!! आज तो मैं आपको हर्गिज नहीं जाने दे सकती!!!

सुरेश सूखी हँसकर बोला-जरा सुन लो महिम! तुम लोगों से मिलने आया था। मिलना हो तो गया, बस! मगर इस जंगल में मुझे ज्यादा दिन रोकने से तुम लोगों को लाभ क्या होगा, और मेरे लिये ही यह दुःख सहने का नतीजा क्या?

महिम ने धीर भाव से कहा-शायद नाराज होकर चले जा रहे थे-यह इनको पसन्द नहीं!

अचला ने तीखे स्वर में कहा-तुम्हें पसन्द है क्या?

महिम ने कहा-मेरी बात तो हो नहीं रही।

सुरेश मन-ही-मन अत्यन्त उत्कण्ठित हो उठा; इस अप्रिय प्रसंग को किसी प्रकार दबा देने की नीयत से, खुशी का नाटक करता हुआ बोला-झूठ आरोप क्या लगाना। मैं नाराज क्यों होने लगा भला, गजब के आदमी हो तुम लोग तो!! खैर यही चाहते हो, तो दो-एक दिन और ठहर जाऊँगा। भाभी, कपड़े सहजने की जरूरत नहीं, निकाल दो! चलो महिम, तुम लोगों के पोखरे में ही आज नहाएँ-ऐसा ही होगा तो घर जाकर कुनैन की शरण लूँगा!!

चलो-कहकर महिम कपड़े बदलने के लिये कमरे से बाहर चला गया।

(18)

नये जूते की तीखी चिकोटी को चुपचाप बरदाश्त करके जो बेपरवा होने का दिखावा करता है-ठीक उसी आदमी जैसा सुरेश ने हँसी-खुशी में तमाम दिन काट दिया। लेकिन दूसरे से-जिसे और भी छिपे तौर पर उस चिकोटी की पीड़ा सहनी पड़ी-ऐसा करते न बना।

पति के अटूट गाम्भीर्य के आगे इस घिनौनी बनावट और बेहयाई के क्षोभ और अपमान से, उसे सिर पीटकर मरने को जी चाहने लगा। उसे वह मन की ओर से बेशक आज भी नहीं पहचान पाई थी, पर बुद्धि की ओर से पहचाना था। उसने साफ देखा कि इस तेजस्वी बुद्धि वाले स्वल्पभाषी व्यक्ति के सामने यह नाटक नितान्त विफल हो रहा है, और शर्म की सियाही हर पल मानो उसी के चेहरे पर गाढ़ी पुतती जा रही है। आज सुबह के बाद महिम कहीं बाहर नहीं गया, सो दिन से लेकर रात को भोजन तक प्रायः सारा समय इसी तरह बीत गया।

रात में बड़ी देर तक बिछावन पर छट-पट करते हुए अचला ने कहा-रात-भर बत्ती जलाकर पढ़ने से दूसरा कोई सो नहीं सकता-तुमसे इतनी भी दया की क्या मैं आशा नहीं कर सकती?

उसकी उस आवाज से चौंककर महिम ने बत्ती उतार दी। कहा-मुझसे गलती हो गयी, माफ करो! और उसने बत्ती बुझा दी। किताब रखकर बिस्तर पर लेट रहा। इस माँगी हुई कृपा को पाकर अचला ने एहसान नहीं जताया लेकिन इससे उसकी नींद में भी कोई सुविधा न हुई। बल्कि जितना ही समय बीतने लगा, यह मौन अँधेरा मानो पीड़ा से बोझिल होकर, हरपल

उसके लिये दुस्सह हो उठने लगा। जब सहा नहीं गया, तो उसने धीरे-धीरे पूछा-अच्छा, जानते हो, अजानते हो, दुनिया में गलती करने ही से सजा भोगनी पड़ती है। यह क्या सच है?

महिम ने सहज ही उत्तर दिया-पण्डित लोग ऐसा ही तो कहते हैं!

अचला फिर जरा देर चुप रही। उसके बाद बोली-तो फिर हम दोनों ने जो गलती की है-जिसका बुरा अंजाम आरम्भ से ही शुरू हो गया है, उसका अन्तिम परिणाम क्या होगा? अन्दाज कर सकते हो तुम?

महिम ने कहा-नहीं।

अचला बोली-मैं भी नहीं कर सकती! लेकिन सोच-सोचकर मैंने इतना-भर समझा है कि और बातें छोड़ भी दें, तो भी मर्द होने के नाते इस सजा का ज्यादा हिस्सा मर्द को उठाना चाहिए।

महिम बोला-थोड़ा और सोचो तो देखोगी-औरत का बोझ इससे एक तिल भी कम नहीं होता! मगर यह मर्द है कौन? मैं या सुरेश?

अचला सिहर उठी-महिम अँधेरे में भी जान गया। थोड़ी देर चुप रहकर अचला ने कहा-कभी मेरे मुँह पर ही तुम मेरा अपमान करना शुरू कर दोगे, यह मैंने नहीं सोचा था; और यह भी जानती हूँ कि एक बार यह शुरू हो जाये, तो कोई कह नहीं सकता कि कहाँ जाकर खत्म होगा! मगर झगड़ना मेरे बस का नहीं; और चूँकि ब्याह हो गया है, इसलिये लड़-झगड़कर तुम्हारी गिरस्ती करती रहूँ, यह भी न होने का!! कल हो चाहे परसों, मैं पिताजी के पास लौट जाऊँगी!!!

महिम ने कहा-तुम्हारे पिता चकित होंगे?

अचला बोली-नहीं! वे इसको जानते थे, इसलिये बार-बार मुझे सचेत करने की कोशिश की थी कि इसका नतीजा अच्छा न होगा। कलकत्ते में चल सकता है, लेकिन गँवई-गाँव में

समाज, सगे-सम्बन्धी, हित-मित्र सबको छोड़कर, सिर्फ स्त्री के साथ किसी का ज्यादा दिन नहीं चल सकता। लिहाजा, वे और चाहे जो हों, चकित नहीं होंगे!

महिम ने कहा-तो तुमने उनकी मनाही मानी क्यों नहीं?

जी-जान से एक उच्छ्वसित निःश्वास को दबाकर वह बोली-मैं समझती थी, बिना समझे-बूझे तुम कुछ भी नहीं करते!

-वह ख्याल जाता रहा?

-हाँ!

-इसीलिये साझेदारी के व्यापार में मुनाफा न हुआ, यह जानकर दुकान उठाकर लौट जाना चाहती हो?

-हाँ!

महिम कुछ क्षण चुप रहकर बोला-तो फिर चली जाना। लेकिन तुमने अगर इसे व्यापार समझना ही सीखा है, तो मुझसे तुम्हारे विचार का कभी मेल न होगा! मगर यह भी न भूलना कि व्यापार को समझने में भी समय लगता है। तुम्हारी यह धारणा कभी टूटे तो मुझे सूचित करना, मैं जाकर लिवा लाऊँगा!

अचला की आँख से आँसू की एक बूँद लुढ़क पड़ी; हाथ से उसे पोंछकर कुछ देर वह थिर रही, फिर कण्ठ-स्वर को संयत करके बोली-भूल किसी से बार-बार नहीं होती! मैं नहीं समझती कि तुम्हें यह कष्ट कभी उठाने की जरूरत पड़ेगी!!

महिम बोला-जिसे समझा नहीं जा सकता, उसे भविष्य कहते हैं। इसीलिये उस भविष्य की फिक्र भविष्य पर छोड़कर आज तो मुझे बख्शो, मुझसे अब बकबक नहीं किया जाता!

अचला को चोट लगी। बोली-मजाक कर रहे हो? मजाक करना भूल है लेकिन! सच ही मैं कल-परसों चली जाना चाहती हूँ!!

महिम ने कहा-मैं सचमुच तुम्हें जाने देना नहीं चाहता!

अचला अचानक तैश में आकर बोली-तुम क्या मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे, रोककर रक्खोगे? यह हर्गिज नहीं कर सकते, पता है?

महिम ने शान्त स्वर में सहज भाव से कहा-ठीक है, मगर वह भी आज रात की बात नहीं। कल-परसों जब जाओगी, सोचकर देखा जायेगा! कहकर उसने तकिये को उल्टा कर बात कतई बन्द कर दी, और थोड़ी ही देर में सो भी गया शायद।

सबेरे चाय के लिये बैठकर सुरेश ने पूछा-महिम तो शायद आज भी खेतों की निगरानी को निकल गया है?

अचला सिर हिलाकर बोली-दुनिया इधर से उधर हो जाये, उनका अपना नियम नहीं टूट सकता!

चाय का प्याला होंठों से अलग करते हुए सुरेश ने कहा-एक हिसाब से वह हम लोगों से बहुत अच्छा है! उसके काम की एक गति है, जो कल के पहिये-सी तब तक जरूर चलेगी, जब तक उसमें कुंजी भरी है!!

अचला ने कहा-आप क्या कल-से होने को ही ठीक कहते हैं?

सुरेश गर्दन पर बल देकर बोला-हाँ, कहता हूँ; क्योंकि ऐसा कर सकना अपनी क्षमता के बाहर है! दुर्बल होना भी कितना बड़ा गुनाह है, यह तो मैं जानता हूँ; इसीलिये जो स्थिर मिजाज का है, उसकी प्रशंसा किये बिना मैं नहीं रह सकता!! लेकिन आज मुझे छुट्टी दो, मैं चलूँ।

अचला तुरन्त राजी हो गयी। बोली-जाइए। मैं कल जाऊँगी!

सुरेश ने आश्चर्य से पूछा-तुम कहाँ जाओगी कल?

-कलकत्ते!

-अचानक? कहाँ, कल तो यह इरादा नहीं सुना था!

-पिताजी बीमार है। उन्हें देखने जाऊँगी।

सुरेश के चेहरे पर उद्वेग की छाया उग आयी। बोला-बीमार पिता को देखने की इच्छा दुनिया में अनहोनी नहीं; मगर डर लगता है, कहीं मेरे कारण नाराज-वाराज होकर...

अचला ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। सामने से जद्दू जा रहा था। सुरेश ने पुकारकर पूछा-क्यों रे जद्दू, तेरे बाबूजी खेत से लौट आये?

जद्दू ने कहा-जी, आज सवेरे तो वे कहीं गये ही नहीं। अपने पढ़ने के कमरे में सो रहे हैं।

अचला झटपट गयी। दरवाजे से झाँककर देखा-महिम एक कुर्सी पर ओठंग कर, सामने की मेज पर दोनों पाँव रखे सो रहा है। रात की अधूरी नींद कोई इस तरह पूरी कर रहा है, यह कोई अनोखी बात नहीं; लेकिन अचला के आश्चर्य का वास्तव में ही ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि उसके पति दिन का काम बन्द करके असमय में सो गये हैं। वह पैर दबाए अन्दर गयी और चुपचाप उसकी ओर ताकने लगी। सामने के झरोखे में से छनकर, सवेरे की हल्की आभा उस सोये हुए मुखड़े पर पड़ रही थी। आज अचानक ही एक ऐसी चीज पर नजर पड़ी, जिसे इसके पहले उसने कभी नहीं देखा था। आज उसने देखा-शान्त मुखड़े पर मानो अशान्ति का महीन जाल-सा पड़ा है; ललाट पर जो कुछ लकीरें झलक रही हैं, साल-भर पहले वे नहीं थीं। उसे लगा-सारा चेहरा किसी छिपी वेदना से श्रान्त और पीड़ित है। वह चुपचाप आयी थी, चुपचाप ही चली जा रही थी; लेकिन पीकदान को पैरों की ठोकर लग गयी, उसी आहट से महिम ने आँखें खोल दीं। अचला ने पूछा-इस समय सो रहे हो? तबीयत तो खराब नहीं है?

महिम ने आँखें मलते हुए कहा-क्या पता! तबीयत खराब नहीं, यही तो ताज्जुब है!!

अचला ने और कुछ न पूछा-कमरे से बाहर चली गयी।

खा-पी चुकने के बाद सुरेश जाने की तैयारी कर रहा था-महिम पास ही एक कुर्सी पर बैठकर उससे बात कर रहा था। अचला दरवाजे के पास आकर बिना किसी भूमिका के बोल उठी-मैं भी कल जा रही हूँ।

सुविधा हो तो आप जरा पिताजी से मिल लेंगे!

सुरेश ने अचरज से कहा-अच्छा! फिर महिम की तरफ निगाह करके पूछा-भाभी जी को तुम कल ही कलकत्ते भेज रहे हो क्या?

स्त्री की इस जबर्दस्ती खिलाफत से महिम जल-भुन उठा, परन्तु चेहरे के भाव को प्रसन्न रखकर ही वह बोला-दूसरी कोई अड़चन नहीं थी पर देहात के गृहस्थ घर में नाटक करने का रिवाज नहीं। कल क्या, आज ही तुम्हारे साथ भेज सकता था!

सुरेश का चेहरा शर्म के मारे तमतमा उठा। यह देखकर अचला तुरत जबरन हँसती हुई बोली-सुरेश बाबू, हम लोगों का घर शहर में है, इसके लिये शर्म महसूस करने की कोई वजह नहीं! बीमार पिता को देखने जाना अगर गाँव में जायज नहीं है, तो मेरे ख्याल में अपने शहर का नाटक कहीं बेहतर है!! न हो तो आज-भर आप रुक जायें न सुरेश बाबू, कल साथ ही चलेंगे!!!

उसकी इस बेहद ढिठाई से सुरेश का चेहरा फक् हो गया; वह सिर झुकाकर कहने लगा-नहीं-नहीं, मेरे रुकने की अब गुंजाइश नहीं भाभीजी! जाना हो तो कल जाइए आप, मैं तो आज ही चला!! कहते-कहते उत्तेजना में वह अचानक बैग लेकर खड़ा हो गया।

उसकी उत्तेजना के इस आवेग ने अचला को भी एक बार मानो भूल से झकझोर दिया। वह व्याकुल होकर बोल उठी-गाड़ी को अभी काफी देर है सुरेश बाबू, तुरन्त मत जाइए; रुक जाइए थोड़ी देर! कृपा करके मेरी दो बातें सुन जाइए। उसके आर्त्त-करुण अनुरोध से दोनों ही श्रोता चौंक उठे।

अचला बिना किसी तरफ देखे कहने लगी-मैं आपके किसी भी काम न आ सकी सुरेश बाबू, मगर आपके सिवा हमारा बुरे वक्त का मित्र कौन है? आप जाकर पिताजी से कह दें-इन

लोगों ने मुझे बन्द करके रक्खा है, कहीं जाने नहीं देंगे-मैं यहाँ मर जाऊँगी! आप लोग मुझे यहाँ से ले चलें, सुरेश बाबू। जिसे प्यार नहीं करती, उसकी गिरस्ती करने को आप लोग मुझे यहाँ न छोड़ें।

महिम विह्वल-सा चुपचाप ताकता रहा। सुरेश ने मुड़कर दोनों आँखें ढमका कर जोर से कहा-तुम्हें पता है महिम, ये ब्राह्म हैं! स्त्री हुईं तो क्या, इन पर पाशविक बल-प्रयोग का तुम्हें अधिकार नहीं!!

महिम जरा देर के लिये खो-सा गया था। अपने को जब्त करके उसने कहा-तुम किसलिये-क्या कर रही हो, जरा सोचकर देखो अचला! फिर वह सुरेश से बोला-पशु-बल या मनुष्य-बल-मैंने कभी किसी पर किसी भी बल का प्रयोग नहीं किया! खैर, अगर रुक सको तो तुम आज रुक ही जाओ सुरेश, कल इन्हें साथ लेकर ही जाना!! मैं खुद जाकर गाड़ी पर सवार करा आऊँगा, इससे गाँव वालों की आँखों को इतना बुरा भी न दीखेगा!!! कुछ क्षण रुककर बोला-मुझे जरा काम है, मैं जाता हूँ। आज अब जब जाना ही न हुआ, तो कपड़े बदल डालो सुरेश, मैं आधे घण्टे में लौट आता हूँ! और वह धीरे-धीरे बाहर हो गया।

अचला जैसी खड़ी थी, मूरत की नाईं चौखट थामे उसी तरह खड़ी रही। सुरेश एक मिनट तो सिर झुकाए खड़ा रहा, फिर ठहाका मारकर हँसते हुए बोला-वाह, मजे का अभिनय हो गया एक अंक का! तुमने भी कुछ बुरा नहीं किया, मगर मैंने तो कमाल का किया!! उसके घर में, उसी की स्त्री के लिये, उसी पर आँखें तरेर दीं मैंने!!! इससे ज्यादा क्या चाहिए? और मेरे दोस्त एक मीठी हँसी हँसकर, मानो वाहवाही देकर चल दिये। मैं शर्त बदकर यह कह सकता हूँ, अचला-वह सिर्फ जी-खोलकर हँसने के लिये, काम का बहाना बनाकर चला गया!! खैर, जरा आईना तो ला दो भाभी, एक बार देख लूँ-क्या शक्ल बनी है अपनी!! यह कहने के बाद सुरेश ने देखा, अचला का चेहरा बिल्कुल सफेद हो गया है। वह कुछ बोली नहीं-सिर्फ एक लम्बा निःश्वास छोड़कर वहाँ से चली गयी।

(19)

जिस सेज को छूने में भी अचला को आज नफरत होनी चाहिए थी, रोज की तरह शाम को वही सेज जब वह बिछाने के लिये कमरे में गयी, तो उसका मन कहाँ और किस दशा में था-जिनको भी मानव-मन की थोड़ी-बहुत जानकारी है, उनसे यह अजाना नहीं रह सकता।

मशीनी पुतले की नाईं नियमित काम करके जब वह लौट रही थी, कि सामने की मेज पर नजर पड़ गयी और एक साँस में वह पैड पर पड़ी एक छोटी-सी चिट्ठी को पढ़ गयी। महज दो-तीन पंक्ति। दिन नहीं, तारीख नहीं-मृणाल ने लिखा था-सँझले दादाजी, आखिर क्या कर रहे हो यह? परसों से तुम्हारी राह देखते-देखते तुम्हारी मृणाल की आँखें घिस गयीं।

बड़ी देर तक अचला की पलक नहीं हिली। ठीक पत्थर की बनी प्रतिमा-जैसी पलक-विहीन दृष्टि उसी एक पंक्ति पर गड़ाए वह स्थिर खड़ी रही। यह चिट्ठी कब की है, कब-कौन दे गया-यह सब उसे कुछ भी मालूम नहीं। मृणाल का घर किधर को है, किस मुँह को है, उसके घर का दरवाजा, किस रास्ते पर, क्यों वह इस उत्सुकता और आकुलता से राह में अपनी नजर बिछाए है-कुछ भी जानने की गुंजाइश नहीं। सामने स्याही की यह लकीर सिर्फ इतना ही बता रही थी, कि जाने किस परसों से कोई किसी की राह में नजर बिछाकर अपनी आँखें चौपट कर रही है, मगर दर्शन नहीं मिलते।

इधर उस झुटपुटे कमरे के अन्दर एकटक देखते-देखते उसकी अपनी आँखें दुःख से दुखा गयीं, और काले-काले हरूफ पहले तो धुँधले, फिर मानो छोटे-छोटे कीड़े-से कागज पर रेंगने लगे। पता नहीं कब तक वह इसी तरह देखती रह जाती; लेकिन अपने अजानते अब तक उसके अन्दर जो निःश्वास जमता आ रहा था, वही जब रुँधे स्रोत के बाँध तोड़ देने की तरह अचानक जोर से निकल पड़ा, तो उसी की आवाज से चौंककर वह आपे में आयी। नजर उठाकर बाहर देखा-आँगन में साँझ का अँधेरा उतर आया था, और जद्दू बाहर के कमरे में लालटेन देने के लिये चला जा रहा था। पूछा-जद्दू, बाबू लौट आये?

जद्दू ने कहा-नहीं माँजी, अभी तक तो नहीं लौटे!

अब अचला को याद आया-दोपहर के उस शर्मनाक अभिनय के एक अंक के बाद ही वे बाहर गये हैं, और तब से नहीं लौटे। पति के रोज-रोज के रवैये में आज उसे जरा भी सन्देह न

रहा। सुरेश के आने के बाद से घर में झगड़ा-लड़ाई का रोज-रोज एक ऐसा सिलसिला जारी हुआ-कि उसमें उलझकर अचला और सब कुछ भुला बैठी थी। वह अपने पति को प्यार नहीं करती, मगर गलती से उससे विवाह किया है-इसी भूल की जिन्दगी-भर गुलामी करने के खिलाफ उसका चंचल मन बगावत की घोषणा करके रात-दिन जूझ रहा था। मृणाल की बात वह एक तरह से भूल गयी थी, पर आज साँझ के धँुधलके में जब उसी मृणाल की एक पंक्ति-सारी जलन लिये पलटकर बह आयी, तो पल में यह प्रमाणित हो गया कि भूल से अपना पति बनाए हुए पुरुष का और किसी नारी से अनुरक्त होने का सन्देह, जी को जलाने के लिये दुनिया की और किसी चिन्ता से हर्गिज छोटा नहीं!

उसने फिर एक बार चिट्ठी पढ़ने के ख्याल से हाथ बढ़ाया, लेकिन शहरी घृणा से उसका हाथ आप ही लौट आया। चिट्ठी वहीं खुली पड़ी रही। अचला बाहर आयी और खम्भे के सहारे स्तब्ध खड़ी रही।

अचानक उसे लगा-सब झूठ है! यह घर-द्वार, पति-परिवार, खाना-पहनना, सोना-बैठना-कुछ भी सत्य नहीं। किसी भी चीज के लिये मनुष्य को हाथ बढ़ाने की जरूरत नहीं। आदमी केवल मन के भ्रम से ही छटपटाता रहता है, वरना क्या शहर, यह झोंपड़ा और राजमहल ही क्या, पति-पत्नी, माँ-बाप, भाई-बहन का रिश्ता ही कहाँ? आखिर किसलिये यह लड़ाई-झगड़ा, रोना-पीटना! दोपहर की उस उतनी बड़ी घटना के बाद भी, जो पति स्त्री को अकेली छोड़कर घण्टों बाहर रह सकता है, उसके मन की बात को जानने के लिये सिरदर्द ही क्यों? सब झूठ है, सब कुछ धोखा है-मरीचिका-सा ही भ्रम है! परन्तु दुनिया उसके लिये ऐसी सूनी नहीं हो जाती, यदि वह मृणाल की भाषा पर ही सारी चिन्ता न लगाकर, मृणाल को ही जरा समझने की कोशिश करती! दूसरी स्त्री से इस गँवई, सदा आनन्दमयी नारी के आचरण की तुलना करती, तो उसकी बातों की कालिमा ही उसके मन को इस कदर काला शायद नहीं कर पाती।

जद्दू उधर से लौटा। लौटकर उसने कहा-बाबूजी ने पूछा, चाय का पानी उबल रहा है?

अचला मानो नींद से जगी-किन बाबू ने?

जद्दू ने जोर देकर कहा-जी, अपने बाबूजी ने! वे लौट आये हैं। चाय का पानी तो कब का तैयार हो चुका है, माँ जी।

अच्छा, चलती हूँ!-अचला रसोई की ओर बढ़ी। थोड़ी देर में चाय और नाश्ता नौकर के हाथ देकर वह बाहर गयी। देखा-महिम अँधेरे बरामदे में पायचारी कर रहा है, और सुरेश कमरे में लालटेन के सामने ध्यान से अखबार पढ़ रहा है। गोया किसी को किसी की मौजूदगी का आज पता ही नहीं। इस अत्यन्त लज्जाकर संकोच ने जो इन दो आजीवन मित्रों के सहज शिष्टाचार की राह भी बन्द कर दी है, उसके उपलक्ष की याद से अचला के कदम आप-ही-आप रुक गये।

अचला को देखकर महिम ने खड़े होकर पूछा-सुरेश को चाय देने में इतनी देर हो गयी?

अचला के मुँह से बात ही न निकली। वह कुछ देर सिर झुकाए खड़ी रही, फिर धीरे-धीरे अन्दर आयी।

जद्दू चाय का सामान मेज पर रखकर बाहर चला गया। सुरेश ने अखबार से नजर हटायी; कहा-महिम कहाँ है, अभी लौटा नहीं है?

उसका कहना था और महिम अन्दर आया। एक कुर्सी खींचकर बैठा; किन्तु वह दसेक मिनट उसके कान के पास ही-बरामदे में चहल-कदमी कर रहा था-यह बताने का उसने प्रयोजन नहीं समझा। फिर सब चुपचाप। नजर झुकाए हुए ही अचला ने दो प्यालों में चाय बनाई। एक प्याला सुरेश को दे, दूसरा पति की ओर बढ़ाकर चुपचाप चली जा रही थी, कि महिम की पुकार पर खड़ी हो गयी।

महिम ने कहा-जरा रुक जाओ! और झट से उठकर किवाड़ की चटखनी चढ़ा दी। लमहे में सुरेश को उसकी छः नली पिस्तौल की याद आ गयी और हाथ का प्याला डगमगाया, छलककर कुछ चाय नीचे गिर पड़ी। मुर्दे की तरह अपना चेहरा फीका बनाकर उसने पूछा-दरवाजा क्यों बन्द कर दिया?

उसकी आवाज, उसकी सूरत और सवाल करने के ढंग से तुरन्त अचला को भी वही शंका हुई, और उसके सिर के बाल तक खड़े हो गये। उसने चीखने की भी शायद कोशिश की, मगर यह कोशिश कामयाब न हुई। अचला का यह हाल देखकर महिम समझ गया। सुरेश की ओर ताककर बोला-कहीं नौकर न आ जाये, इसीलिये-नहीं तो अपनी पिस्तौल जैसे सदा बक्स में बन्द रहती है, आज भी बन्द पड़ी है। तुम लोग इस कदर डर जाओगे, यह मालूम होता, तो दरवाजा नहीं बन्द करता!

सुरेश ने चाय का प्याला रख दिया, और मानो हँस रहा हो-ऐसा चेहरा बनाकर बोला-खूब, डरने क्यों लगा? तुम मुझ पर गोली चलाओगे?-खूब! जान का डर? मुझे? कब-कब देखा तुमने? खैर जो हो!

उसकी बेसिलसिलेवार कैफियत खत्म होने के पहले ही महिम ने कहा, तुम्हें डरते सच ही कभी नहीं देखा! जान की ममता तुम्हें नहीं है, यही मैं जानता था!! सुरेश, तुम्हारे अपने दुःख से तुम्हारे पतन की चोट मेरे कलेजे में आज ज्यादा लगी। जो तुम जैसे आदमी को भी इतना गिरा दे-न; सुरेश, कल तुम जरूर घर चले जाओ! किसी बहाने अब रुको मत!!

सुरेश फिर भी कुछ जवाब देना चाह रहा था; लेकिन अबकी उसके गले से आवाज भी न निकली, वह गर्दन भी न उठा सका-उसके अजानते ही मानो गर्दन झुक गयी।

तुम अन्दर जाओ, अचला-कहकर दरवाजा खोलकर महिम अँधेरे में बाहर निकल गया।

अब सुरेश ने सिर उठाया। जबरदस्ती हँसकर बोला-सुन लो जरा बात! जाने ऐसी कितनी बन्दूक-पिस्तौल से खेलकर बुड्ढा हो गया, अब उसकी टूटी-फूटी पिस्तौल के डर के मारे मर गया मैं? हँसी आती है-और सुरेश खींच-खींचकर हँसने लगा। उसकी हँसी में साथ देने लायक अचला के सिवा कमरे में कोई न था। अचला लेकिन जैसे सिर झुकाए खड़ी थी, वैसे ही कुछ देर खड़ी रही; फिर बगल के दरवाजे से चुपचाप अन्दर चली गयी।

घण्टे-भर बाद महिम अपने कमरे में आया। देखा-कोई नहीं है। बगल के कमरे में जाकर देखा-जमीन पर चटायी बिछाकर, हाथ पर मुँह रखे अचला लेटी है। पति को अन्दर आते

देख वह उठ बैठी। पास ही एक खाली चौकी पड़ी थी, उस पर बैठकर महिम ने कहा-तो कल तुम्हारा मैके जाना तै है न?

अचला नीचे देखती रही, कुछ बोली नहीं। महिम ने थोड़ा इन्तजार करके कहा-जिसे प्यार नहीं करतीं, उसी की गिरस्ती सम्हालो-पति होकर भी मैं तुम पर इतना बड़ा जुल्म नहीं ढा सकता।

मगर अचला फिर भी बुत बनी बैठी रही-यह देख महिम कहने लगा-लेकिन तुमसे मुझे दूसरी शिकायत है! मेरा स्वभाव तो जानती हो। ब्याह के बाद से ही तो नहीं, बहुत पहले से भी तो मुझे जानती थीं, कि सुख या दुःख जो भी हो, अपने हक के सिवा तिलभर भी ऊपरी पाने की उम्मीद मैं नहीं रखता, मिलने पर भी नहीं लेता! मुहब्बत पर जोर-जबरदस्ती नहीं चल सकती, अचला! मुहब्बत न कर सको-तो दुःख की चाहे हो, शर्म की बात नहीं!! फिर क्यों नाहक इतने दिनों से कष्ट झेल रही थीं? मुझे जताए बिना ही यह क्यों सोच लिया था कि मैं तुम्हें रोक रक्खूँगा? वे तुम्हें यहाँ से निकाल ले जायेंगे, तभी तुम्हारी जान बचेगी-और मुझे कहने से क्या कोई उपाय नहीं होता? तुम्हारी जान की कीमत क्या केवल वही समझते हैं?

आँसू से स्पष्ट हुई आवाज को भरसक और स्वाभाविक करती हुई अचला ने कहा-तुम भी तो प्यार नहीं करते!

महिम ने चकित होकर कहा-यह किसने कहा? मैंने तो कहा नहीं कभी!

अचला को गर्म होते देर न लगी; बोली-कहना ही क्या सब कुछ है? मुँह की बात ही केवल सच होती है, बाकी सब झूठ? गुस्से में, मन के कष्ट से जो बात मुँह से निकल पड़ती है, उसी को सत्य मानकर तुम जबर्दस्ती किया चाहते हो? तुम्हारी तरह तौल-तौल कर नहीं कह पाऊँ, तो क्या ढकेलकर डुबा देना चाहिए? कहते-कहते गला रुँध गया।

महिम कुछ भी न समझ सका। बोला-इसका मतलब?

उमड़ती हुई रुलाई को दबाकर अचला बोली-यह न सोचा कि तुम्हारे जैसे सावधान आदमी भी झूठ को सदा छिपा कर रख सकते हैं! तुमसे भी कितनी भूल हो सकती है, इसका सबूत अपनी मेज पर जाकर देखो!! सिर्फ हमसे ही...

महिम ने हतबुद्धि होकर पूछा-मेरी मेज पर क्या है?

मुँह पर आँचल रखकर अचला चटायी पर औंधी लेट गयी। उससे कोई जवाब न पाकर महिम धीरे-धीरे अपनी मेज पर देखने गया। पढ़ने के कमरे में मेज पर कुछ किताबें पड़ी थीं, दस मिनट तक उनको उलट-पुलट कर उनके नीचे, बगल में सब देख गया, पर पत्नी की शिकायत का कोई मतलब न निकाल पाया। विमूढ़ की नाईं लौट चला, कि सोने के कमरे में कदम रखते ही मृणाल की चिट्ठी पर नजर गयी। उसे उठाकर उसने पढ़ा। पढ़ते ही अँधेरे में जैसे बिजली कौंध जाती हो, महिम को पल-भर में रास्ता सूझ गया। अचला का इशारा समझने में जरा भी देर न लगी। चिट्ठी को हाथ में लेकर महिम बिस्तर पर बैठ गया, और सूनी निगाहों से बाहर अँधेरे की ओर ताकता रहा। मृणाल पहले दिन जैसे आयी थी, जैसे चली गयी थी, सौत कहकर उसने अचला से जो-जो हँसी-मजाक किया-एक-एक कर उसे सब याद आने लगा। गँवई-गाँव के ऐसे मजाकों की जो स्त्री आदी नहीं हो-उसे हर रोज यह कैसा चुभता रहा और वह खुद भी जब वैसी दिल्लगियों में खुले जी से साथ न दे सका, बल्कि स्त्री के सामने लज्जित होकर बार-बार रोकने की कोशिश की-उसकी वह लज्जा अगर इस शिक्षिता बुद्धिमती स्त्री के ख्याल में, अपराधी की सही शर्म के रूप में जमती गयी हो, तो आज उसकी बुनियाद को उखाड़ कर कैसे फेंका जा सकता है? बाहर के अँधेरे में से ही बहुत-से सत्य निकल कर उसे दिखाई देने लगे। दिन-दिन अचला का हृदय कैसे हटता गया है, स्वामी-संग कैसे दिन-दिन विषाक्त बनता गया है, स्वामी की पनाह उसके लिये कैद कैसे बनाती गयी है-सब कुछ मानो वह साफ देख पाने लगा। इस दम घोंटने वाली रुकावट से मुक्ति पाने की वह जो आकुल कामना, सुरेश के सामने उस समय उबल पड़ी थी-वह उसके अन्तरतम् की कौन-सी गहराई से निकली थी, यह भी आज महिम के मन की आँखों से अगोचर न रही। अचला को वास्तव में उसने हृदय से प्यार किया था। इतने दिन इतनी पास होते हुए भी, उसी अचला के मन की पीड़ा से लापरवाह रहने को उसने अपना बहुत बड़ा अपराध गिना। मगर ऐसे तो अब एक पल भी नहीं चलने का! स्त्री

के हृदय को फिर से पाने की सम्भावना भी है या नहीं, वह कितनी दूर हट गया है-आज इसका अन्दाज कर सकना भी गैर-मुमकिन है। लेकिन अनेक विरोधों से लड़कर भी एक दिन जिसको उसने पति कहकर अपनाया था, उसी से अपमान और फजीहत उठा कर आज उसे लौट जाना पड़ रहा है, इतनी बड़ी भूल से तो उसे आगाह कर ही देना है।

महिम उठा। धीरे-धीरे अचला के दरवाजे पर पहुँचा। किवाड़ बन्द मिला। ठेलकर देखा-अन्दर से बन्द था। धीरे-धीरे दो-एक बार आवाज दी, और जब कोई जवाब न मिला, तो नाहक ही उसकी शान्ति को भंग करने की इच्छा न हुई-इसीलिये नहीं, बल्कि एक मुश्किल इम्तहान से बहरहाल छुटकारा मिल गया, इसीलिये जैसे वह बच गया।

महिम जाकर बिस्तर पर लेट रहा; लेकिन जिसके लिये सेज सूनी पड़ी रही, वह दूसरे कमरे में जमीन पर भूखी पड़ी है-यह सोच-सोचकर उसकी आँखों में नींद नहीं आयी। उसे बुलाकर ले आना ठीक है या नहीं-यही आगा-पीछा करते-करते, बहुत रात बीत जाने पर शायद कुछ देर के लिये उसकी आँखें लग गयी थीं। एकाएक मुँदी पलकों पर तीखी रोशनी का अनुभव करके उसने आँखें खोल दीं। सिरहाने के पास की खिड़की तथा छप्पर की फाँकों से, बेहिसाब धुएँ और प्रकाश से कमरा भर गया था। और पास से ही एक ऐसी आवाज उठ रही थी, जो कानों में प्रवेश करते ही सर्वांग को बेबस किये देती है। आग कहाँ लगी है; यह तो वह ठीक जान गया, फिर भी कुछ देर के लिये हाथ-पाँव न हिला सका। लेकिन उसी क्षण के अन्दर उसके दिमाग में सारी दुनिया घूम गयी। उछलकर वह उठ खड़ा हुआ। दरवाजा खोलकर बाहर निकला। देखता क्या है कि रसोई-घर, और जिस कमरे में अचला सो रही थी-उसके बरामदे के एक कोने से आग की उठती लपटों ने ऊपर के जामुन गाछ को लाल कर दिया है। गाँव में फूस के घर में आग लग जाये, तो बुझाने की कल्पना भी पागलपन है। उसकी कोई कोशिश ही नहीं करता। मुहल्ले के लोग अपने असबाब और गाय-गोरू को हटाने में लग जाते हैं, और दूसरे टोले के लोग-औरत एक तरफ, मर्द एक तरफ खड़े होकर मौखिक हाय-हाय करते हैं। कितना सामान जल रहा है, कैसे यह आफत आयी?-इसी की चर्चा करते हुए, जब तक घर जलता रहता है, खड़े रहते हैं। उसके बाद अपने-अपने घर जाकर बाकी रात सो रहते हैं। और सवेरे लोटा लेकर मैदान जाते देखे जाते हैं और अगले दिन के लिये

उस चर्चा को वहीं खत्म करके नहाने-खाने चले जाते हैं। लेकिन किसी के घर की राख की ढेरी, दूसरे की रोजमर्रा की जिन्दगी में कोई अड़चन नहीं डालती।

महिम देहात का ही था, सब कुछ जानता था। सो नाहक ही शोर मचाकर उसने मुहल्ले के लोगों की नींद हराम नहीं की। जरूरत भी न थी। क्योंकि उसके आम-कटहल के बड़े बगीचे को लाँघ कर आग और किसी के घर को छूएगी-यह सम्भावना न थी। बाहर की कतार के जिन कमरों में सुरेश तथा नौकर-चाकर सोऐ थे, उन तक आग के फैलने में देर थी। देर न थी सिर्फ अचला वाले कमरे में। उसने उसी के दरवाजे पर जोर का धक्का मार कर पुकारा-अचला!

अचला जैसे जग ही रही हो, इस ढंग से बोली-क्या है?

महिम बोला-दरवाजा खोलकर निकल आओ!

अचला ने थकी-सी आवाज में कहा-क्यों? मैं तो मजे में हूँ!

महिम ने कहा-देर न करो, निकल आओ! घर में आग लग गयी है।

जवाब में अचला भीत कण्ठ से चीख उठी, उसके बाद चुप! महिम के फिर घबराकर पुकारने का जवाब भी न दिया। महिम को इसी का डर था, क्योंकि घर में आग लगना क्या होता है-इसकी कोई धारणा ही अचला को न थी। महिम ने समझ लिया-अब तक वह आँखें मूँदे ही बात कर रही थी। लेकिन आँख खोलते ही जिस नज्जारे ने उसको भी कुछ देर के लिये बेबस बना दिया था, उसी बेहिसाब प्रकाश से भरे घर को देखकर अचला का होश जाता रहा। इस दुर्घटना के लिये महिम तैयार ही था। उसने किवाड़ के एक पल्ले को उठाया, और साँकल खोलकर अन्दर हो गया। मूर्च्छित पड़ी स्त्री को गोदी में उठाकर वह तुरन्त बाहर निकल गया।

अब घर के और लोगों को जगा देने के लिये वह नाम ले-लेकर पुकारने लगा। सुरेश फक हुआ चेहरा लिये बाहर निकल आया। जद्दू आदि नौकर भी दौड़कर निकले। उसके बाद

जोरों की एक आवाज से चेत में आकर, अचला ने दोनों बाँहों से पति की गर्दन पकड़ ली और फफक कर रो पड़ी।

सबके लेकर महिम जब बाहर की खुली जगह में जा खड़ा हुआ, तो बड़े कमरे में आग सुलग गयी। उसे याद पड़ गया-अचला के गहने-पाते आदि जो भी कीमती सामान है, सब उसी में है; और अब थोड़ी भी देर हो, तो कुछ भी हाथ नहीं आने का।

अचला होश में आ गयी थी; वह जोर से पति का हाथ दबाकर बोली, नहीं, यह नहीं हो सकता! बदला चुकाने का यही मौका तुम्हें मिला? मैं तुम्हें उसके अन्दर हर्गिज नहीं जाने दे सकती! जलने दो, खाक हो जाये सब!!

-बिना गये काम न चलेगा अचला-कहते हुए जबर्दस्ती अपना हाथ छुड़ाकर, वह दौड़ा हुआ धुएँ के उस पहाड़ में जा धँसा। जद्दू चीखता हुआ पीछे-पीछे दौड़ा।

सुरेश अब तक हक्का-बक्का-सा करीब ही खड़ा था। अचानक वह आपे में आया। अचानक दौड़ने की कोशिश करते ही उसकी धोती का छोर थामकर अचला ने कठोर स्वर में कहा-आप कहाँ चले?

सुरेश ने खींच-तान करते हुए कहा-महिम जो गया...

अचला रूखे स्वर में बोली-वे तो अपनी चीज बचाने गये। आप कौन हैं? आपको मैं हर्गिज नहीं जाने दूँगी!

उसके स्वर में स्नेह का नाम भी न था-यह मानो अनधिकारी के उत्पात को फटकार से दबाया उसने।

दो-तीन मिनट के बाद ही महिम-दोनों हाथों में दो पेटियाँ, और जद्दू माथे पर एक बहुत बड़ा बक्स लेकर निकला। पेटी को अचला के पैरों के पास रखकर महिम ने कहा-गहने की पेटी को छोड़ना मत-हम लोग जरा कोशिश कर देखें, अगर बाहर के कमरे से कुछ निकाल सकें! अचला के मुँह से एक भी शब्द न निकला। उसकी मुट्ठी में तब भी सुरेश की धोती

का छोर था। वैसा ही रहा। महिम ने एक नजर उधर देखा, और जद्दू के साथ तुरन्त ओझल हो गया।

(20)

सुबह की पहली जोत में पति के चेहरे पर नजर पड़ते ही अचला का हृदय हा-हाकार करके रो उठा। किसी भी तरह से वह अपने आँसू रोक न सकी। यह क्या हो गया। धूल, बालू राख से सिर के बाल रूखे; सूखे-रूखे चेहरे को झुलसाकर आग की लपटों ने उसके पति को एक ही रात में बूढ़ा बना दिया था। चारों तरफ घूम-फिरकर बस्ती के लोग शोर कर रहे थे। काँसे-पीतल के बर्तन-बासन तो सब गये-दिखाई ही दे रहे थे। खैर, बर्तन जायें, मगर शाल-दुशाले, गहने-पाते ही एक बक्स में कितने बच रहे होंगे-इसी पर खासी समालोचना चल रही थी। थोड़ी ही दूर पर बुझते हुए अग्नि-स्तूप की तरफ सूनी निगाहों से देखता हुआ महिम चुप खड़ा था। सुन वह सब कुछ रहा था, पर लोगों का कौतूहल मेटने-जैसी मन की अवस्था नहीं थी। उस टोले के भीखू बनर्जी-जाने-माने आदमी, बात की तकलीफ के कारण अब तक पहुँच नहीं पाये थे। अब लाठी के सहारे लोगों के साथ उन्हें आते देखकर महिम उनकी ओर बढ़ा। बनर्जी बाबू तरह-तरह से विलाप करने के बाद बोले-महिम, तुम्हारे पिता को गुजरे थोड़े दिन हो गये, मगर हम दोनों दो नहीं थे। एक जान दो कालिब!

महिम गर्दन हिलाकर उत्सुक आँखों ताकता रहा। पास ही घेरे की आड़ में सामान के पास अचला बैठी थी। वह भी उद्विग्न हो उठी-इतनी ही भूमिका के बाद बनर्जी बाबू कहने लगे-ब्रहमा का क्रोध तो कुछ यों ही नहीं होता, बेटे! हम लोगों से पूछा तक नहीं, एक इतने बड़े ब्राहमण के लड़के होकर क्या कुकर्म कर बैठे?

महिम समझ नहीं सका। अपनी बात की विस्तार से व्याख्या करने के लिये अपने अनुचरों की ओर ताककर वे कहने लगे-हम सभी यही कहा करते थे कि कुछ-न-कुछ होगा ही! भला और किसी पर ब्रहमा का क्रोध क्यों नहीं उमड़ा? बेटे ब्राहम जो है, ईसाई भी वही है! साहब को कहते हैं ईसाई, और बंगाली हो, तो ब्राहम!! यह हमसे-जिन्हें शास्त्र का ज्ञान है-नहीं छिप सकता!!!

जो वहाँ मौजूद थे, सबने हामी भरी। उत्साहित होकर वे बोल उठे, करने को जो चाहे करो बेटे, पहले इसका प्रायश्चित करके और उसे त्याग कर...

महिम ने हाथ उठाकर कहा-रुकिये! आप लोगों का मैं अनादर नहीं करना चाहता, मगर ऐसी बात न कहिए, जो कि है नहीं!! मैं जिन्हें ले आया हूँ, उनके पुण्य से घर रहे तो ठीक, नहीं तो बार-बार जल जाये-मुझे यह भी कबूल है!! कहकर वह दूसरी तरफ चला गया।

बनर्जी बाबू जमात के साथ कुछ देर हा किये खड़े रहे, फिर लाठी ठक-ठकाते हुए घर लौट गये। मन-ही-मन जो कहते गये, उसे जबान पर न लाना ही बेहतर।

अचला ने सब सुना। उसकी आँखों से आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें टपकने लगीं।

जद्दू ने आकर कहा-माँ जी, बाबूजी ने कहा है-आपसे पूछ कर मैं पालकी-कहार बुला दूँ। बुला दूँ?

आँचल से आँखें पोंछकर अचला ने कहा-बाबू को एक बार बुलाओ तो जद्दू!

-और पालकी?

-रहने दो अभी!

महिम के नजदीक आकर खड़े होते ही उसकी आँखों में फिर आँसू आ गये। उसने झुककर अचानक उसके पैरों की धूल ली, कि महिम चकित और व्यग्र हो पड़ा। शायद हो कि वह पति के हाथ पकड़कर पास बैठाती, याकि और कोई बचपना कर बैठती-क्या करती यह उसके अन्तर्यामी ही जानें; लेकिन सवेरा हो चुका था, चारों तरफ उत्सुक लोग थे। अचला ने अपने को संयत करके कहा-पालकी किसलिये?

महिम ने कहा-नौ बजे वाली गाड़ी पकड़ना ही तो सब तरह से अच्छा रहेगा! एक बजे तक घर पहुँच कर नहा-खा सकोगी। रात भी तो तुमने नहीं खाया।

-और तुम?

-मैं?-महिम ने जरा सोचकर कहा-मेरा भी कोई-न-कोई उपाय हो ही जायेगा!

-तो फिर मेरा भी होगा। मैं नहीं जाऊँगी!!

-कौन-सा उपाय होगा, कहो!

अचला इस बात का जवाब न दे सकी। एक बार तो उसकी जुबान पर आया-जंगल में पेड़-तले! मगर वास्तव में तो यह सम्भव नहीं। और बस्ती में किसी के यहाँ घण्टे-भर के लिये भी पनाह लेना कितना अपमानजनक है-उसका आभास तो अभी-अभी अच्छी तरह से वह पा चुकी है। मृणाल की बात याद नहीं आयी, सो नहीं-बार-बार याद आयी; पर शर्म से वह बोल नहीं सकी। कुछ देर चुप रहकर बोली-तुम भी मेरे साथ चलो।

महिम ने आश्चर्य से कहा-मैं साथ चलूँ? लाभ?

अचला ने कहा-लाभ-हानि देखना अब मेरे जिम्मे रहा! तुम्हारे हितू यहाँ ज्यादा हैं नहीं-यह मैं खूब देख चुकी। फिर तुम्हारी सूरत रात ही भर में कैसी हो गयी है-तुम नहीं देख पा रहे हो, मैं देख रही हूँ। मेरा गला भी काट डालो, तो भी तुम्हें यहाँ अकेला छोड़कर मैं नहीं जाऊँगी!

महिम के मन में उथल-पुथल होने लगी-लेकिन वह स्थिर ही रहा।

अचला बोली-तुम इतना सोच क्यों रहे हो? मेरे गहने तो हैं। इनसे पश्चिम में जहाँ भी हो, कोई छोटा-सा मकान हम मजे में खरीद सकेंगे। जहाँ भी रहूँ, मुझे तुम भूखी न मारोगे! कोशिश तुम्हें करनी ही होगी, और कह तो दिया-वह भार अबके मुझ पर रहा!!

जद्दू ने आकर पूछा-पालकी ले आऊँ माँ जी?

जवाब के लिये अचला उत्सुक हो पति की ओर ताकने लगी। महिम ने जवाब दिया। जद्दू को पालकी लाने का हुक्म दिया और स्त्री से कहा-मगर मैं तो अभी नहीं जा सकता!

सुनकर अनिर्वचनीय शान्ति और तृप्ति से अचला का हृदय भर गया। मन के आवेग को दबाकर उसने कहा-मानती हूँ, तुरन्त चल सकना तुम्हारा नहीं हो सकता; मगर यह कहो कि साँझ की गाड़ी से जरूर जाओगे? नहीं तो मैं भोजन के लिये बैठी सोचती रहूँगी, और...

मगर उसका मंतव्य महिम के निःश्वास में मानो डूब गया। वह उदास होकर बोली-साँझ को नहीं जा सकोगे? तो फिर अँधेरी रात में किसके यहाँ-पर कहते-कहते वह रुक गयी। जिसके यहाँ पति के रात बिताने की सम्भावना थी-उसकी याद आते ही उसका चेहरा फीका हो गया। महिम ने शायद उसके मन की बात नहीं समझी। पूछा-कलकत्ते में मुझे कहाँ जाने को कहती हो?

अचला ने तुरन्त जवाब दिया-क्यों, पिताजी के यहाँ!

महिम ने सिर हिलाकर कहा-नहीं!

-नहीं क्यों? वह भी क्या तुम्हारा अपना घर नहीं?

महिम ने वैसे ही सिर हिलाकर कहा-नहीं!

अचला ने कहा-न हो तो वहाँ दो ही दिन रहकर हम पश्चिम चले जायेंगे।

-नहीं!

अचला जानती थी-उसे डिगाना मुमकिन नहीं। कुछ सोचकर बोली-तो चलो, यहीं से हम पश्चिम के किसी शहर को चलें! मैं खूब जानती हूँ, मैं साथ दूँगी तो हमें कहीं तकलीफ न होगी!! लेकिन गहने तो बेचने पड़ेंगे, यह काम कलकत्ते के सिवा कैसे होगा?

महिम दूसरी ओर देखता हुआ चुप हो रहा। अचला ने अकुलाकर पूछा-पश्चिम में तो बड़े शहर हैं, वहाँ भी तो बेचा जा सकता है? मेरे बक्स में लगभग दो सौ रुपये हैं। उनसे जाना तो हो ही जायेगा! चुप हो? जल्दी बोलो न!

महिम स्त्री की नजर की ओर न देख सका। मगर जवाब दिया-तुम्हारे जेवर मैं नहीं ले सकूँगा, अचला!

कोई भारी धक्का खाकर अचला जैसे पीछे हट गयी-क्यों नहीं ले सकोगे, जान सकती हूँ क्या?

महिम ने इसका कुछ जवाब न दिया। कुछ देर तक दोनों निस्तब्ध हो रहे। अचानक अचला ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी-संसार में पति क्या अकेले एक तुम ही हो? आड़े वक्त में आखिर वे कैसे लेते हैं? स्त्री का गहना रहता किसलिये है? इतने कष्ट से आखिर तुम इन्हें बचाने ही क्यों गये? यह कहकर टिन के छोटे-से बक्स को हाथ से ठेलकर कहा-मुसीबत की घड़ी में ये काम ही न आयें, तो यह बोझ ढोते-फिरने से क्या लाभ? आग तो अभी जल ही रही है-मैं इसे उसी में डालकर निश्चिन्त होकर चली जाती हूँ; तुम्हारे जी में जो हो, वही करना! उसने आँचल से आँखें दबा लीं।

दो-एक मिनट चुप रहकर महिम ने धीरे-धीरे कहा-मैंने सब सोच देखा है अचला! मगर तुम्हें तो मालूम है, मैं कोई काम झोंक में नहीं करता। और कोई करे, यह भी नहीं चाहता! तुम जो देना चाह रही हो, उसे अपना समझ कर मैं ले सकता तो आज मेरे सुख की सीमा नहीं रहती। लेकिन किसी भी प्रकार से ले नहीं सकता। मेरी तकलीफ देखकर और भी बहुतेरे लोगों ने बहुत-बहुत देना चाहा था, लेकिन वह जैसी दया थी, यह भी वैसी ही दया है। लेकिन इसमें न तुम लोगों का, न अपना, किसी का भला न होगा-ऐसा ही मेरा विश्वास है!

अचला और न सह सकी। रोना भूलकर, शायद प्रतिवाद करने के लिये ही, दोनों जलती आँखें ऊपर उठाकर स्वामी की नजर का अनुसरण करते ही देखा-थोड़ी दूर पर उन लोगों का जो पोखरा है, उसी के घाट के पास वेदी बँधे नीमगाछ के नीचे, हाथ पर सिर टिकाए सुरेश पड़ा-पड़ा आसमान की ओर ताक रहा है। अचला के मुँह की बात मुँह में रह गयी, और उसका उठा हुआ सिर आप-ही-आप झुक गया।

लेकिन महिम बहुत कुछ अपमानित-सा अपने-आप ही कहने लगा-यह नहीं कि मुझे कभी चैन नहीं मिलेगा; बल्कि बार-बार तुम्हें वंचित करूँ, हममें यही सम्बन्ध कभी नहीं हुआ!

थोड़ी देर रुककर बोला-अचला, अपने को उजाड़कर दान करने का दुःख बहुत बड़ा है! सनक में कभी पलभर में वह किया तो जा सकता है, पर उसका नतीजा भोगना पड़ता है जिन्दगी भर! मैं जानता हूँ, एक भूल के चलते तुम लोगों के अफसोस का हद्दोहिसाब नहीं। एक भूल और बन जाये-तो न तो कभी तुम खुद को माफ कर सकोगी, न मुझको! इस नुकसान को सहने का तुम्हारे पास कोई सम्बल नहीं, इस बात का पता मुझको आज चाहे न चले, दो दिन बाद चलेगा!! इसीलिये तुमसे मैं कुछ भी नहीं ले सकता!!!

ये बातें अचला के कलेजे में चुभीं। पति की नजरों में वह कितनी परायी है-इस बात का अनुभव उसने आज जितना किया, और कभी नहीं किया था; तथा साथ-ही-साथ मृणाल की याद आते ही वह गुस्से से भर उठी। वह भी सख्त होकर बोल उठी-इतनी देर से तुम मुझे जो समझा रहे हो, वह मैंने समझा! शायद हो कि तुम्हारा कहना सही है, या तुम्हारा मुँह देखकर दया से ही मैंने अपना सर्वस्व देना चाहा था। शायद दो दिन के बाद वास्तव में ही मुझे इसके लिये पछताना पड़ता-सब सही है; लेकिन देखो, दूसरों के मन की भावना को समझ लेने की जितनी भी शक्ति तुम्हें हो, लेकिन तुम्हें समझा देने वाली बात भी है। स्त्री की चीजों को जबर्दस्ती लेने की बात तो जाने दो, हाथ फैलाकर ही लेने का तुम्हें कौन-सा सहारा है? तुमसे अब तर्क नहीं करूँगी। आज से मेरी यही सान्त्वना रही कि इतनी-सी विवेक-बुद्धि तुममें है। लेकिन मैं जहाँ-कहीं भी रहूँ, कभी-न-कभी सारा कुछ तुम्हें समझना ही पड़ेगा! और हथेलियों से मुँह छिपाकर उसने अपनी रुलाई रोकी।

नौ बजे की गाड़ी से सुरेश भी घर लौट रहा था। रात की अगलग्गी ने उसे कैसा तो कर दिया। उसे मानो किसी से बात करने की शक्ति ही न थी। गाड़ी को कुछ देर थी। महिम को स्टेशन के एक किनारे ले जाकर सुरेश ने कहा-महिम, इस अगलग्गी के लिये तुम्हें मुझ पर तो सन्देह नहीं है?

उसके दोनों हाथों को कसकर, दबाकर महिम ने कहा-छिः!

सुरेश की आँखें डबडबा गयीं। रुँधे स्वर से बोला-कल से इसी के लिये मुझे चैन नहीं है, महिम!

महिम ने चुपचाप उसके हाथ को सिर्फ दबा दिया। उसके बाद बोला-एक सच्चा गुनाह, बहुतेरे झूठे गुनाहों को ढो लाता है, सुरेश! लेकिन बेहद दुःख पाकर तुम और चाहे जो करो-जिसे 'क्राइम' कहते हैं, वह नहीं कर सकते-ऐसा आज भी मेरा विश्वास है!! जरा रुककर बोला-तुम भगवान को नहीं मानते सुरेश, लेकिन जो मानते हैं, वे सदा यही प्रार्थना करते हैं कि भगवान जिनमें हैं, उनके इस विश्वास को न तोड़ दें।

गाड़ी आ लगी। औरतों के डिब्बे में अचला और उसकी नौकरानी को चढ़ाकर सुरेश के पास आते ही, उसने खिड़की से हाथ निकालकर महिम का हाथ पकड़ कर कहा-तुमने मेरी कल की क्षति-पूर्ति करने की प्रार्थना न मानी, पर ईश्वर तुम्हारी प्रार्थना को मंजूर करें भाई। मुझको वे और छोटा न करें-कहकर उसने हाथ छुड़ाकर मुँह फेर लिया।

उधर खिड़की पर मुँह रखकर अचला अब तक जद्दू से चुप-चुप में जाने क्या कह रही थी। महिम के करीब आते ही उसने पूछा-मृणाल दीदी के पति क्या आज गुजर गये?

महिम ने सिर हिलाकर कहा-हाँ, सुना, थोड़ी देर पहले चल बसे!

अचला ने पूछा-दस-बारह दिन से न्यूमोनिया के शिकार थे। मुझे यह बताना भी तुमने आवश्यक नहीं समझा?

महिम ने इसका जवाब देना चाहा-पर कैसे क्रम बिठाकर कहे, यही सोचते-सोचते सीटी बजाकर गाड़ी खुल गयी।

(21)

केदार बाबू की सेहत अभी पहले जैसी नहीं हो पायी थी। खा-पीकर बरामदे मे एक ईजी-चेयर पर पड़े-पड़े अखबार पढ़ते हुए, शायद जरा आँखें लग गयी थीं। दरवाजे पर खटका और गाड़ी की रूखी आवाज से उन्होंने आँख खोलकर देखा-सुरेश और उसके साथ-ही-साथ उसकी बेटी और दाई गाड़ी से उतरी। नींद उनकी काफूर हो गयी। जाने कैसी एक शंका से, उन्होंने जोर से कहा-अचला? तुम कहाँ से सुरेश? मामला क्या है? मैं तो कुछ समझ नहीं पर रहा हूँ।

अचला ने आकर पिता के चरणों की धूल ली। सुरेश ने नमस्ते करके कहा-महिम का तार नहीं मिला?

केदार बाबू ने घबराकर कहा-कहाँ, नहीं तो!.

एक कुर्सी खींचकर बैठते हुए सुरेश बोला-तो या तो वह तार लगाना भूल गया, या अभी पहुँचा नहीं है।

केदार बाबू बोले-भाड़ में जाये तार; माजरा क्या है, यह बताओ न! इन्हें तुम ले कहाँ से आये?

सुरेश बोला-कल रात महिम का घर जल गया।

घर जल गया? सर्वनाश! कहते क्या हो-घर जल गया? कैसे जला? महिम कहाँ है? तुम्हें ये कहाँ मिली?-एक साँस में इतने सवाल पूछकर, केदार बाबू धप्प से अपनी आराम कुर्सी पर बैठ गये।

सुरेश ने कहा-मैं इन्हें वहीं से लेकर आ रहा हूँ। मैं वहीं था न!

केदार बाबू का मुखड़ा बड़ा अप्रसन्न और गम्भीर हो उठा। बोले-तुम वहीं थे? कब गये वहाँ? मुझे तो नहीं मालूम! मगर वह कहाँ है?

सुरेश बोला-महिम तो आ नहीं सकता, इसीलिये...

उनका गम्भीर मुखड़ा स्याह पड़ गया। सिर हिलाकर बोले-नहीं-नहीं, यह सब अच्छी बात नहीं! बड़ी बुरी बात! घोर अन्याय यह मैं हर्गिज... कहते-कहते नजर उठाकर उन्होंने बेटी की ओर देखा।

अचला अब तक एक कुर्सी का हाथ थामे खड़ी थी। पिता का यह सन्देह उसके हृदय में गड़ा। उसके यों अचानक आ जाने के हेतु वे जरा भी यकीन नहीं कर सके-यह साफ समझकर लज्जा और घृणा से उसके चेहरे पर लहू का चिद्द तक न रहा।

केदार बाबू से यहाँ भूल हो गयी। बेटी की सूरत से उनका सन्देह और मजबूत हो गया। आराम-कुर्सी पर लेटकर अखबार को चेहरे पर रखते हुए, एक निःश्वास छोड़ बोल उठे-तुम लोग जो ठीक समझो, करो! मैं कल ही घर छोड़कर और कहीं चला जाऊँगा!!

सुरेश ने अचरज-भरी नाराजगी से कहा-आप यह सब कह क्या रहे हैं केदार बाबू? आप घर छोड़कर ही क्यों जायेंगे और हुआ ही क्या है? कहकर वह कभी अचला और कभी उसके पिता की ओर ताकने लगा। लेकिन उसे किसी का मुँह दिखाई नहीं पड़ा।

केदार बाबू का कोई जवाब न पाकर सुरेश उठ खड़ा हुआ। बोला-खैर, महिम ने मुझे जो भार सौंपा था, हो गया! अब आप लोग जो अच्छा समझें, करें। मैं नहा-खा नहीं सका हूँ, घर जा रहा हूँ। कहकर वह द्वार की तरफ दो-एक कदम बढ़ा ही था, कि केदार बाबू उठकर थकी-सी आवाज में बोल पड़े-आह, जा क्यों रहे हो? बात क्या है, यह तो बताओ! आग लगी कैसे?

सुरेश ने जैसे रूठे हुए-से कहा-सो नहीं जानता।

-तुम वहाँ गये कब?

पाँच छः दिन पहले। मैंने अभी भोजन नहीं किया। अब देर नहीं कर सकता।-कहकर फिर जाने का उपक्रम करते ही केदार बाबू उठे-अहा-हा, नहाना-खाना तो देख रहा हूँ, किसी का नहीं हुआ है-मगर जंगल में तो नहीं आ-निकले; यह भी घर ही है, यहाँ भी नौकर-चाकर हैं! अचला, बैरे को आवाज दो न जरा, खड़ी क्या हो? बैठो-बैठो सुरेश, माजरा क्या है, खोलकर ही बताओ!

सुरेश पलटकर बैठ गया। जरा चुप रहा, फिर बोला-रात सो रहा था। महिम की चीख-पुकार से निकला। देखता हूँ कि सब धू-धू जल रहा है। फूस की छौनी, बुझाने का उपाय न था। वह बेकार कोशिश किसी ने की भी नहीं-सब राख हो गया!

केदार बाबू उछलकर बोल उठे-ऐं, सब जल गया? कुछ भी निकाला न जा सका? अचला के गहने?

-वे बच गये!

गनीमत!-कहकर एक लम्बा निश्वास छोड़कर वे बैठ गये। कुछ देर चुप रहकर बोले-फिर भी, आग लगी कैसे?

सुरेश ने कहा-कहा तो आपसे, इस बात का पता अभी नहीं चला है। लेकिन इतना मैं देख आया कि गाँव में उसका खास कोई हितू नहीं है!

-नहीं है?

-नहीं!

केदार बाबू और कुछ नहीं बोले। बड़ी देर तक चुप बैठे रहे। आखिर एक गहरा निश्वास छोड़ते हुए उठकर बोले-जाओ, नहा लो सुरेश, अब देर न करो! देखूँ चलकर, क्या कुछ बन-बना रहा है-और उसे साथ लेकर कमरे से बाहर चले गये।

खान-पान के बाद भी उन्होंने सुरेश को जाने नहीं दिया। एक आराम-कुर्सी पर वह अधनिंदाया पड़ा था। अचला वही जो नहाकर अपने कमरे में दाखिल हो दरवाजे को बन्द किये रही, सो उसका पता नहीं। चैन न थी सिर्फ केदार बाबू को। अब तार आने-न-आने का कोई मतलब न था, लेकिन उसी के लिये बेताबी से इधर-उधर करते हुए-शाम के समय सोना ठीक नहीं है-कहते हुए उन्होंने बेटी को बुलवाया और बोले-तुम लोगों ने तो बताया, उसने तार भेजा है, तार भेजा है। कहाँ, कुछ पता तो नहीं उसका! तुम लोग ट्रेन से चलकर आ पहुँचे, और तार की खबर अभी तक नहीं पहुँची? अच्छा ठहरो, देखता हूँ-बेटी के उत्तर का इन्तजार किये बिना ही वे चप्पल फट-फटाते हुए तेजी से नीचे उतर गये; और थोड़ी ही देर में नीचे से उनकी तेज आवाज सुनाई देने लगी। अचला की दाई से वह तरह-तरह की जिरह करने लगे, और वह बेचारी अचरज से बार-बार प्रतिवाद करने लगी-जी, अपनी आँखों देख आयी, आग लगी, घर-द्वार राख हो गया-आप क्या कह रहे हैं, नहीं जला है! सोच देखें, आग ही नहीं लगी तो घर-दरवाजा जल कर राख कैसे हो गया?

सुरेश सब सुन रहा था। नजर उठाकर उसने देखा-चौखट पकड़े खड़ी-खड़ी, उड़े हुए चेहरे से अचला एक-एक बात को पी रही है। सूखे उपहास के ढंग से कहा-तुम्हारे बाबूजी को हो क्या गया, बता सकती हो?

अचला ने चौंककर देखा। कहा-नहीं।

सुरेश बोला-मैं बेखटके कह सकता हूँ, उन्हें यकीन नहीं आया! उनका ख्याल है, आग लगने का किस्सा हमने गढ़ लिया है। जरा देर थमकर बोला-असली बात का पता आखिर एक-न-एक दिन चल ही जायेगा, लेकिन उनका सन्देह कुछ ऐसा है कि मेरा यहाँ आना असम्भव हो उठा।

अचला ने उदास होकर पूछा-आप क्या अब नहीं आयेंगे?

खड़े होकर सुरेश ने कहा-मुमकिन नहीं लगता है! आखिर मेरा भी तो कुछ आत्म-सम्मान है। किसी आदमी से मेरा बैग मेरे यहाँ भेजवा देना।

अचला ने सिर हिलाकर कहा-अच्छा! लेकिन उसके यहाँ आने-न-आने के बारे में एक शब्द न बोली।

कल सवेरे ही भेजवा देना! बहुत-सी जरूरी चीजें हैं इसमें और केदार बाबू की राह देखे बिना ही चला गया।

लौटने पर केदार बाबू कुछ चकित जरूर हुए, लेकिन मन में नाखुश हुए हैं-ऐसा न लगा।

रात काफी देर तक बिस्तर पर करवट बदलते रहने के बाद अचला उठ बैठी। जी में आया-बरामदे पर टहलती हुई वह, बाहर के लोगों को सड़क पर आते-जाते देखकर थोड़ी अनमनी हो जाये।

कमरे के उस ओर वाले दरवाजे को खोलकर वह बरामदे पर पहुँची। देखा बैठके की रोशनी अभी जल रही थी। पहले यह जी में आया कि नौकर शायद गैस बन्द करना भूल गये;

लेकिन कुछ ही दूर बढ़ने पर पिता की आवाज कानों में पड़ने से, उसके आश्चर्य की सीमा न रही। वे सदा दस बजते-बजते सो जाते, मगर आज साढ़े दस बज गये। तुरन्त दाई की आवाज सुनाई पड़ी। वह कह रही थी-पति चल बसे; मृणाल दीदी अब पति का घर सम्भालेगी-मुझे तो ऐसा नहीं लगता, बाबू! मेहमान से दादा-पोती का कैसा रिश्ता है, वही जानें!

केदार बाबू-हूँ, करके रह गये।

अचला समझ गयी, इसके पहले काफी बातें हो चुकी हैं। मृणाल के बारे में, महिम के बारे में, उसके बारे में-बाकी कुछ नहीं छूटा है। लेकिन कहीं अपने बारे में अपने ही कानों निहायत कटु बातें सुननी पड़ें-इस डर से वह जैसे चुपचाप आयी थी, वैसे ही चुपचाप चल देना चाहने लगी; लेकिन जाने किस बात ने लोहे की जंजीरों से उसके पाँवों को बाँध दिया।

कुछ देर चुप रहकर केदार बाबू ने पूछा-गर्ज कि दोनों में पटी नहीं; यह कहो!

दाई बोली-रत्ती-भर नहीं, तिल-भर नहीं बाबू! एक दिन भी नहीं!! इस दाई को अचला आज तक नादान ही समझती थी-आज पता चला, अक्ल उसे किसी से भी कम नहीं।

केदार बाबू मिनट-भर चुप रहकर फिर बोले-तो कल रात किसी को खाना नसीब नहीं हुआ, क्यों? सुरेश के जाने के बाद से लगभग लड़ते-झगड़ते ही बीता?

दाई का जवाब सुना न जा सका, लेकिन पिता की बात से ही समझ में आ गया कि गर्दन हिलाकर उसने क्या राय जाहिर की क्योंकि दूसरे ही क्षण केदार बाबू एक गहरा निश्वास छोड़ कर बोले-मैं पहले ही जानता था कि एक दिन यह नौबत आयेगी! आजकल के लड़के-लड़कियाँ माँ-बाप की बातों की तो परवा करते नहीं। नहीं तो, मैं तो करीब-करीब सब राह पर ले आया था। आज उसे चिन्ता किस बात की होती? कहकर उन्होंने फिर एक निश्वास फेंका, वह भी साफ सुनाई पड़ा।

दाई ने पूरी हमदर्दी के साथ, छूटते ही कहा-आप ही कहें बाबू, नहीं तो आज चिन्ता किस बात की थी? कैसे तो एक गँवई-गाँव में माटी का घर-वह भी न रहा! और मेहमान भी तो-कहकर उसने बात को अधूरा ही रख कर, एक लम्बे निश्वास से काफी दूर तक ठेल दिया।

नसीब! कहकर केदार बाबू कुछ देर चुप रहे, फिर खड़े होकर बोले-खैर, तू जा! उसे रुखसत करके, बत्ती गुल करने के लिये वे बैरे को पुकारने लगे।

अचला पाँव दबाए धीरे-धीरे अपने कमरे में जाकर पड़ रही। पिता की उदारता, उनके सज्जनता बोध की धारणा कभी भी उसके मन की ऊँची नहीं रही थी; लेकिन वह इस हद तक नीचे हैं कि वे घर की दाई से भी अकेले में ऐसी चर्चा कर सकते हैं-अचला यह नहीं सोच सकती थी। आज उसका मन छोटा होकर जमीन पर लोट रहा था; पर उसका पति, उसका पिता, उसकी दासी, उसका मित्र-सभी जब उसकी तरह धूल में लुटे पड़े हैं, तो किसी का सहारा लेकर जो वह कभी इस गिरावट से ऊपर भी उठ सकेगी-इस भरोसे की वह कल्पना तक नहीं कर सकी।

(22)

दुनिया के और-और लोगों की तरह केदार बाबू भी दोष-गुण वाले ही आदमी थे। लड़की के ब्याह के लिये पढ़े-लिखे दामाद, सम्पन्न घर की ही उन्होंने कामना की थी। महिम लड़का भला है। एम. ए. पास है, गाँव में रहने-खाने का ठौर-ठिकाना है। लिहाजा उसके हाथों बेटी को सौंपना उन्होंने सौभाग्य ही समझा था। लेकिन एकाएक एक दिन उसका धनी दोस्त सुरेश अपनी गाड़ी पर आकर, उल्टा बताकर जब खुद ही ब्याह का उम्मीदवार बन बैठा, तो दोनों की माली हालत का लेखा लगाकर, महिम को जवाब देकर सुरेश को अपनाने में केदार बाबू को जरा भी एतराज न हुआ। प्यार के बारीक तत्वों से उन्हें कोई वास्ता न था; उनकी धारणा थी कि लड़कियाँ पति के रूप में उसी को अच्छी समझती हैं, जिसके पास गाड़ी-पालकी चढ़कर, गहना-कपड़ा पहनकर आराम से रह सकें। लिहाजा बेटी को सुखी बनाना ही अगर पिता का फर्ज है, तो ऐसे एक अपने-आप आये हुए मौके को हाथ से निकलने देना ठीक नहीं-यह तै कर लेने में उन्हें खास कुछ मगजपच्ची नहीं करनी पड़ी।

यहाँ तक कि विवाह के पहले ही, दामाद से पाँच हजार रुपया कर्ज लेना भी उन्हें अनुचित न लगा। उसे चुकाने की चिन्ता ने भी उन्हें परेशान नहीं किया, इसीलिये कि वह घर तो उसी का रहेगा!

मगर इस दईमारी लड़की ने सब कुछ गोबर कर दिया, हर्गिज राजी न हुई। लाचार, अन्त तक उन्हें महिम के हाथों ही बेटी को सौंपना पड़ा जरूर; लेकिन इस दुर्घटना से उनके क्षोभ की सीमा न रही। उसके सिवा जो बात उन्हें अपने-आप कबूल करनी पड़ी, वह यह कि रुपया अब लौटा देना चाहिए। लेकिन चूँकि कर्ज की लिखा-पढ़ी न थी और वसूल करने का उपाय भी उतना साफ-सहज न था, इसलिये उस चिन्ता को भी वे मन में उतना महत्व नहीं दे सके। सो गर्चे यह सवाल मन में उठा, लेकिन जवाब वैसा ही धुँधला रहा।

अचला ससुराल चली गयी। इसके बाद सुरेश का आना-जाना, घनिष्ठता, केदार बाबू को पसन्द न थी। घर में नहीं हैं-यह कहलाकर ज्यादातर भेंट भी नहीं करते थे। लेकिन उसे चाहते थे, इसलिये बेटी के दुर्व्यवहार से वे मन-ही-मन लज्जित हो दुःखी ही रहते थे।

ऐसे ही दिन बीत रहे थे। अचानक एक दिन वे खासे बीमार पड़ गये। सुरेश ने आकर इलाज किया; बेटे से भी ज्यादा सेवा-जतन करके उन्हें चंगा किया। कर्ज की बात उन्होंने खुद उठायी तो यह कहकर टाल गया, कि वो मैंने दोस्त को दहेज में दिया। उसी दिन से इस युवक के प्रति उनका स्नेह प्रतिदिन गाढ़ा और अकृत्रिम हो उठने लगा। यहाँ तक कि कभी-कभी बेटी के लिये मन में अभिशाप आता-हतभागिन लड़की, ऐसे रतन को न पहचान सकी, उपेक्षा से छोड़ कर चली गयी; इसका फल कभी उसे मिलेगा जरूर।

इस मामले में महिम उन्हें फूटी-आँखों नहीं सुहाता था, यह सही है; लेकिन उनकी बेटी नारी-धर्म को गँवाकर, पति को त्यागने की कलंक-कालिमा सारे बदन में पोतकर उन्हीं के यहाँ आयेगी-यह उन्होंने स्वप्न में भी न सोचा था। और इस महापाप में जिस आदमी ने उसे मदद दी है, वह कितना ही बड़ा क्यों न हो-पिता के मन का भाव क्या होगा, यह समझना भी कठिन नहीं।

दूसरी ओर पिता के लिये बेटी का मनोभाव चाहे जो रहा हो, जिस दिन वे सिर्फ रुपये के नाते महिम के बदले सुरेश के हाथों उसे सौंपने को तैयार हो गये थे, और कर्ज चुकाने का कोई उपाय न रहने के बावजूद उससे कर्ज लिया था, उसी दिन से आदमी के रूप में केदार बाबू अचला की निगाहों में काफी नीचे उतर गये थे। वह अश्रद्धा कल रात सौगुनी ज्यादा बढ़ गयी, जब उसने अपने कानों सुना कि बेटी के चरित्र के बारे में छिपकर नौकरानी की राय लेने में भी उन्हें हिचक नहीं हुई।

लेकिन उसके साथ-साथ अचला आज अपने को भी देख पाई। उसके रोंगटे खड़े हो गये। उसकी नजर में आया कि जभी उसने अपने मुँह से पति को यह कहा कि वह उसे प्यार नहीं करती, तभी नारी की सर्वोत्तम मर्यादा भी उसके लिये संसार से समाप्त हो गयी। इसीलिये आज वह पति के आगे छोटी हो गयी है, पिता के आगे छोटी है, दाई के आगे छोटी है, यहाँ तक कि सुरेश जैसे आदमी की नजर में भी इतनी छोटी है-कि उसे लालसा-संगिनी बनाने की कल्पना भी उसकी दुराशा नहीं। लेकिन वास्तव में क्या सही है? इतनी छोटी है वह? अभी-अभी उस दिन वह जिसके प्यार को सब पर विजयी बनाने के लिये सभी विरोधों, सभी प्रलोभनों को पार कर गयी थी-इस बीच क्या यह बात सब कोई भूल गये? उसे सुरेश के साथ भेज देने के बावजूद, पति ने उसकी कोई खोज नहीं ली! उदासीनता का गहरा अपमान और लांछना, रात-भर मानो उसे आग में झुलसाती रही।

सुबह देर से नींद टूटी। सूरज की तरुण किरणें झरोखे से आकर कमरे के फर्श पर पड़ रही थीं।

वह बिस्तर पर उठ बैठी, और सिरहाने की खिड़की खोलकर चुपचाप रास्ते की तरफ देखती रही।

कलकत्ते की सड़क पर लोगों का ताँता टूटने वाला नहीं। कोई काम से निकला था, कोई घर लौट रहा था, और कोई सुबह की धूप-हवा में यों ही घूम रहा था-यह देखते हुए अचानक याद आया-ऐसे समय अपने घर में तो कोई नहीं बैठा है। मैंने ही ऐसा कौन-सा गुनाह किया है कि मुँह नहीं दिखा सकती-खुद को कैद करके रक्खा है! गुनाह कुछ किया भी हो, तो

उनसे किया है। उसकी सजा वही देंगे, किन्तु नाहक ही जो कोई दण्ड देने आये, उसे ही सिर झुकाकर क्यों उठा लूँ?

अचला तुरन्त उठ बैठी, और सारी ग्लानि को मानो बलपूर्वक झाड़-फेंककर हाथ-मुँह धोया, कपड़े बदले और बैठके में गयी।

केदार बाबू आराम-कुर्सी पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे। उन्होंने एक बार नजर उठाकर देखा, और फिर अखबार पढ़ने लगे।

थोड़ी ही देर के बाद बैरा केतली में चाय का पानी और दूसरे सामान रख गया; केदार बाबू उठकर आये। अपने लिये एक प्याला चाय तैयार करके ले गये, और अखबार लेकर आराम-कुर्सी पर बैठ गये।

अचला नजर झुकाए, पिता का सारा आचरण देखती रही; परन्तु खुद जाकर चाय तैयार कर देने या कुछ पूछने की उसे हिम्मत भी न हुई, इच्छा भी नहीं। लेकिन घर में मूरत-सा इस तरह मुँह-सिए रखना भी मुश्किल! यहाँ तक कि इस तरह ज्यादा दिनों तक एक घर में उनके साथ रहना सम्भव और उचित है या नहीं, और न हो तो वह क्या करेगी-इस पेचीदे मसले पर कहीं अकेले बैठकर जरा सोचने के लिये वह उठना ही चाहती थी, कि असह्य विस्मय से उसने देखा-सुरेश आ रहा है।

उसने हाथ उठाकर केदार बाबू को नमस्ते किया। केदार बाबू ने सिर उठाकर जरा गर्दन हिलाई और फिर अखबार पढ़ने लगे।

सुरेश कुर्सी खींचकर बैठ गया। चाय का सामान ले जाने के लिये जैसे ही बैरा कमरे में आया, वह बोला-मेरा बैग कहाँ है, उसे मेरी गाड़ी पर रख आओ तो! हजामत बनाने तक का सामान उसी में है। देर मत करो, मुझे तुरन्त जाना है।

जी-कहकर उसके चले जाने के बाद सारे कमरे में सन्नाटा छा गया। थोड़ी देर में हठात् सुरेश पूछ बैठा-महिम की कोई खबर मिली?

केदार बाबू बोले-नहीं।

सुरेश बोला-ताज्जुब है!

उसके बाद फिर सब चुपचाप। बैरे ने आकर बताया-बैग गाड़ी पर रख दिया है।

तो मैं जा रहा हूँ। महिम की चिट्ठी आये तो मुझे जरा खबर भेज देंगे। सुरेश उठने लगा। एकाएक हाथ का अखबार नीचे फेंककर केदार बाबू बोल उठे-तुम जरा ठहर जाओ सुरेश, मैं अभी आया! और उसकी ओर ताका तक नहीं, चप्पल चट-चटाते हुए जरा तेजी से ही चले गये।

अब तक अचला नजर झुकाए ही थी। केदार बाबू के चले जाने पर सुरेश ने जैसे ही नजर उठाकर देखा-अचला की डरी, दुःखी और मालिन आँखें दिखाई दीं। पूछा-बात क्या है?

मुँह नीचे किये अचला ने सिर्फ गर्दन हिलाई।

सुरेश ने कहा-मैं कितना दुःखी हुआ हूँ, कितना लज्जित-यह कह नहीं सकता!

अचला वैसी ही चुप बैठी रही।

वह फिर बोला-तुम्हारे पिताजी मुझे इतना नीच, ऐसा मक्कार सोच सकते हैं, यह मैंने स्वप्न में भी न सोचा था!

इस शिकायत का भी अचला ने कोई जवाब नहीं दिया। वैसी ही स्थिर बैठी रही।

सुरेश ने कहा-मुझे तो ऐसा लग रहा है कि इसी वक्त महिम के पास जाकर उसे... बात पूरी न कर सका। केदार बाबू लौट आये।

उनके हाथ में छोटा-सा कागज। सुरेश के सामने मेज पर उस कागज को रखते हुए बोले-तुम्हारे उस रुपये की रसीद, आज-कल करते नहीं दी जा सकी थी। पाँच हजार का हैंडनोट ही लिख दिया, सूद शायद न दे सकूँ। लेकिन मकान तो रहा ही, इससे मूलभर तो वसूल हो ही जायेगा!

सुरेश कुछ देर हक्का-बक्का-सा खड़ा रहा, बोला-मैंने तो आपसे हैंडनोट माँगा नहीं, केदार बाबू!

केदार बाबू बोले-तुमने माँगा बेशक नहीं, मगर मुझे तो देना चाहिए! अब तक नहीं दे पाया, यही बहुत बड़ा अन्याय हो गया है सुरेश, इसे जेब में रख लो! पका आम हो रहा हूँ, अचानक कहीं चल-बसूँ तो तुम्हारे रुपये का गोलमाल हो सकता है!!

सुरेश ने आवेग के साथ जवाब दिया-महिम और चाहे जो करे केदार बाबू, रुपये का कभी गोलमाल नहीं कर सकता! तिस पर आप खुद भी जानते हैं कि मुझे ये रुपये नहीं चाहिए-यह मैंने मित्र को दहेज दिया है!!

केदार बाबू ने कहा-तो वह अपने मित्र को ही देना-मुझे नहीं! जो मैंने लिया है, वह ऋण मेरा ही है!!

सुरेश बोला-खैर, दोस्त को ही दूँगा-कहकर सुरेश ने कागज मेज पर से उठाया, और दो कदम पीछे हटकर अचला के पास जाकर खड़ा हुआ, कि केदार बाबू आग की नाईं भभककर

चीख उठे-खबरदार सुरेश, कल से मैंने बहुत अपमान चुपचाप बर्दाश्त किया। लेकिन मेरी आँखों के सामने मेरी बेटी को तुम रुपये दे जाओ, यह मैं हर्गिज न करूँगा-कहे देता हूँ! कहकर काँपते-काँपते आराम-कुर्सी पर बैठ गये।

सुरेश पहले तो चौंककर केदार बाबू की तरफ एकटक ताकता रह गया। उनके उस तरह से बैठ जाने पर उसने उदास होकर अचला की ओर मुड़कर देखा-अचला पल-भर में मानो पत्थर हो गयी है। बड़ी कोशिश करके सुरेश ने क्या तो कहना चाहा; लेकिन उसके सूखे गले से एक बेमानी आवाज के सिवा और कुछ नहीं निकला। फिर मुड़कर देखा-केदार बाबू दोनों हथेलियों से मुँह छिपाए पड़े थे। उसने और कुछ कहने की कोशिश भी न की, कुछ क्षण काठ मारा-सा खड़ा रहकर आखिर धीरे-धीरे चला गया।

वह चला गया, लेकिन बाप-बेटी दोनों ठीक वैसे ही बैठे रहे। और दीवारघड़ी की टिक्-टिक् के सिवा, कमरे में एक बेरहम चुप्पी छा रही थी।

सुरेश की रबर टायर वाली गाड़ी फाटक पार हो गयी, यह घोड़े की टापों से ही समझ में आ गया। दूसरे ही क्षण बैरे ने अन्दर आकर आवाज दी-बाबू!

केदार बाबू ने नजर उठाकर देखा, उसके हाथ में कागज का एक टुकड़ा था। और कुछ कहना न पड़ा। वे उछल पड़े और अपना दायाँ हाथ बढ़ाकर चीत्कार कर उठे-ले हरामजादा, ले जा सामने से! निकल जा, कहता हूँ-बैरा मालिक का रवैया देखकर अवाक् रह गया और भाग खड़ा हुआ। उसके जाते ही, जलती आँखों बेटी को देखते हुए, गले की आवाज पर एक पर्दा और चढ़ाकर वे बोले-हरामजादा, हरामजादा, कमीना! फिर कभी किसी बहाने मेरे यहाँ आया, कि मैं उसे पुलिस के हवाले करूँगा-यह मैं तुमसे कहे देता हूँ अचला!

अपना नाम सुनकर, अपना निहायत पीला पड़ा चेहरा उठाकर अचला चुपचाप पीड़ित आँखों से पिता की ओर देखती रही।

वे बोले-रुपये बिखेर कर बाप की आँखों को अन्धा नहीं किया जा सकता। यह बात वह याद रक्खे!

बेटी इस पर भी चुप रही, लेकिन उसकी मलिन आँखें धीरे-धीरे तेज हो उठने लगीं। यह पिता की नजर में न आया। उन्होंने तर्जनी तानकर कहना शुरू किया-हैण्डनोट फाड़कर बाप को घूस नहीं दिया जा सकता-यह बात उसे समझा कर तब छोड़ूँगा मैं! मैं यह घर बेचकर कर्ज अदा करके, जी चाहे जहाँ चला जाऊँगा!! मुझे कोई रोक नहीं सकता, कान खोलकर सुन लो!!!

अब अचला ने बात कही। शुरू में रुकावट पड़ी, पर बाद में स्थिर अविचलित स्वर में कहा-कर्ज बिना दिये घर मेरे लिये छोड़ जायेंगे, मैं क्या यही आशा रखती हूँ? तुम न करते, तो यह काम तो मुझे ही करना होता!

केदार बाबू और भी गर्म होकर बोले-तुम लोग जो कर आये हो-मालूम है! उसी के मारे तो मैं भले समाज में मुँह दिखाने लायक नहीं रहा!!

अचला ने वैसे ही शान्त और दृढ़ स्वर में कहा-नहीं, नहीं मालूम है! मैंने ऐसा कुछ अगर किया होता, जिससे समाज में तुम मुँह नहीं दिखा पाते, तो उससे पहले तो मेरा ही मुँह तुम लोग कोई नहीं देख पाते!! वहाँ और किसी चीज का अभाव चाहे हो, डूब-मरने लायक पानी का अभाव नहीं!!! कहते-कहते रुलाई से उसक गला रुँध आया। बोली-कल से तुम मेरा जो अपमान कर रहे हो, चूँकि झूठ है इसलिये सह पा रही हूँ नहीं तो...

यहाँ पहुँचकर उसका गला बिल्कुल बन्द हो गया। मुँह पर आँचल रखकर किसी तरह रुलाई रोकती वह कमरे से बाहर भाग गयी।

केदार बाबू एकबारगी हक्का-बक्का हो गये। रंज होने, आघात करने, शोक करने, यानी कन्या के दूषित आचरण से हर तरह का गहरा दुःख उठाने की स्थिति महज उन्हीं की हुई है, यही उनकी धारणा थी; लेकिन दूसरा पक्ष भी अचानक उन्हीं के आचरण को नितान्त निन्दनीय कहते हुए, मुँह पर झिड़क कर, तीखे अभिमान से रोकर चल सकता है-इसकी सम्भावना उन्हें ख्वाब में भी न सूझी थी। सो कुछ क्षण हक्के-बक्के से खड़े, वे धीरे-धीरे बैठ गये। और सिर पर हाथ फेरते हुए बार-बार कहने लगे-यह लो, फिर दूसरा प्रसाद!

इसके बाद बाप-बेटी के आठ-दस दिन कैसे निकले, यह सिर्फ अन्तर्यामी ने ही देखा। अचला अपने कमरे से निकली ही नहीं, घर के नौकर-चाकरों के सामने भी मुँह दिखाना उसे मुहाल था। पिछले दिनों की तरह सड़क देखकर ही समय काटने के ख्याल से वह खुली खिड़की के सामने बैठी थी।

जाड़े के दिन, दोपहर के साथ-साथ धुँधली छाया मानो आसमान से धीरे-धीरे धरती पर उतर रही थी। और उस धुँधलेपन से अपने सारे जीवन का क्या तो एक अज्ञात सम्बन्ध

हृदय की गहराई से अनुभव करके, उसका मन उस अल्पायु बेला की ही तरह चुपचाप अवसन्न होता जा रहा था। यह नहीं कि उसकी आँखें ठीक कुछ देख रहीं थीं; पर जैसी आदत थी-ऊपर-नीचे, अगल-बगल कुछ भी उसकी निगाह से बच नहीं पा रहा था। एकजैसी बैठी-बैठी जब बेला बीत चली, तो अचानक उसने देखा-सुरेश की गाड़ी उसके फाटक में घुस रही है। बात-की-बात में उसका चेहरा फक् हो गया, और पुलिस को देखकर चोर जैसे बेतहाशा भागता है-ठीक उसी तरह खिड़की के सामने से भागकर वह आकर बिस्तर पर सो रही।

कोई बीसेक मिनट के बाद उसके दरवाजे पर खट-खटाहट हुई, और बाहर से पिता ने स्निग्ध स्वर में पूछा-जाग रही हो बेटी?

मगर फिर भी जब जवाब न मिला; तो और भी कोमल स्वर में बोले, बेला जाती रही बेटी, उठो! सुरेश की फूफी तुम्हें लेने आयी हैं। क्या तो, महिम बहुत बीमार है! अचला ने उठकर चुपचाप दरवाजा खोल दिया, और सुरेश की फूफी अन्दर आयीं।

झुककर अचला ने उनके पैरों की धूल ली।

केदार बाबू सबसे पीछे कमरे के भीतर गये, और बिस्तर के एक किनारे बैठ कर बेटी से बोले-तुम लोगों के चले आने के बाद से ही महिम को जोरों का बुखार आ गया। मेरा ख्याल है, ठण्ड लगने से, फिक्र से यह बुखार आया है! उसके बाद सुरेश की फूफी से बोले-मैं तो सोच के मारे परेशान था। आखिर इन लोगों को भेज देने के बाद से कोई खबर क्यों नहीं भेजी उसने? सुरेश दीर्घजीवी हो, वह सोच-समझकर इन्हें न ले आया होता, तो क्या होता-भगवान ही जानें! स्नेह-भरे अनुताप से बूढ़े का गला भर आया।

अचला चुपचाप सब सुनती रही। उसने कोई सवाल नहीं किया, कोई घबराहट नहीं जाहिर की।

सुरेश की फूफी ने अचला की बाँह पर अपना दायाँ हाथ रखकर शान्त स्वर में कहा-डरने की बात नहीं बिटिया, दो ही दिन में वह ठीक हो जायेगा!

अचला ने कुछ कहा नहीं-फिर से एक बार उनको झुककर प्रणाम करके, अलगनी पर से चादर उतारकर वह जाने के लिये तैयार हो गयी।

सर्दियों की साँझ-इस ठण्ड में बिना कोई गर्म कपड़ा पहने, उसी रूप में बाहर जाने को तैयार होते देख बूढ़े पिता के जी को चोट लगी। लेकिन सुरेश की विधवा फूफी के पहनावे को देखकर उसे टोकने की उन्हें इच्छा न हुई। वे सिर्फ इतना ही बोले-चलो बिटिया, मैं भी चलता हूँ! और चप्पल पहने सबसे आगे सीढ़ियों से नीचे उतर गये।

(23)

अचला को महिम से सबसे बड़ी शिकायत यही थी-कि स्त्री होने के बावजूद उसे कभी पति के सुख-दुःख में हाथ बँटाने का मौका नहीं मिला। इसके लिये सुरेश भी अपने दोस्त से छुटपन से ही काफी झगड़ता आया, पर कोई नतीजा नहीं निकला। कंजूस के धन की तरह उस चीज को सदा सारी दुनिया से बचाकर महिम कुछ इस तरह से अगोरता रहा है, कि

दुःख-दुर्दिन में किसी की मदद की बात तो दूर रहे-उसे अभाव क्या है, कहाँ उसे पीड़ा है, यही कभी कोई समझ नहीं पाता।

लिहाजा घर जब जलकर राख हो गया, तो बाप-दादों के उस राख की ढेरी में बदले हुए मकान की ओर देखकर महिम के मन में क्या चोट लगी, इसे उसके मुँह को देखकर अचला समझ नहीं सकी। मृणाल विधवा हो गयी, इससे भी उसके स्वामी के दुःख का अन्दाज करना वैसा ही असम्भव था। जिस दिन अचला ने मुँह पर कह दिया था कि वह उसे प्यार नहीं करती, महिम के लिये वह आघात कितना बड़ा था-उसके बारे में भी अचला अँधेरे में ही रही। मगर इतनी नासमझ भी वह नहीं थी, कि हर बदनसीब घड़ी में पति की निर्निवार उदासीनता को सत्य ही कबूल कर लेने में, उसके जी में कोई खटका होता ही न हो। इसलिये, उस दिन स्टेशन पर पति के दृढ़-शान्त मुखड़े को बार-बार देखकर, तमाम रास्ता सिर्फ यही सोचती आयी थी-कि सहिष्णुता के उस झूठे नकाब की ओट में उसके वास्तविक मुख का स्वरूप जाने कैसा है!

आज जब उसकी बीमारी को मामूली और स्वभाविक घटना का रूप देने के लिये केदार बाबू ने कहा कि उन्हें ताज्जुब नहीं हुआ, बल्कि इतनी बड़ी दुर्घटना के बाद ऐसे ही कुछ की आशंका मुझे थी-तो अचला के जी में जो भाव पल के लिये उदय हुआ था, उसे उत्कण्ठा भी नहीं कहा जा सकता।

सुरेश की रबर-टायर वाली गाड़ी तेजी से दौड़ रही थी। फूफी एक ओर का दरवाजा खींचकर चुप बैठी थीं, और उनके बगल में अचला पत्थर की मूर्ति-जैसी स्थिर थी। अकेले केदार बाबू किसी तरफ से कोई उत्साह न पाकर, रास्ते की ओर देखते हुए बकते चले जा रहे थे। सुरेश जैसा दयावान, बुद्धिमान, गुणवान तरुण देश में दूसरा कोई नही; महिम के एक-बग्गापन से मैं तो ऊब गया हूँ; जहाँ आदमी ढूँढ़े न मिले, डाक्टर-वैद्य का नाम नहीं, सिर्फ

चोर-डकैत और गीदड़ रहते हैं-ऐसे गाँव में जा-बसने की सजा एक-न-एक दिन उसे भोगनी ही पड़ेगी;-ऐसी ही बे सिर-पैर की बातें, बिना सोचे-समझे, वे उस चुप बैठी नारी के कानों में डालते चले जा रहे थे।

इसका भी कारण था। केदार बाबू वास्तव में ऐसी हल्की प्रवृत्ति के आदमी थे, ऐसी बात नहीं। लेकिन आज उनके हृदय का गहरा आनन्द, संयम के किसी बाँध को मान ही नहीं रहा था। अपने परम मित्र सुरेश से खुलकर विवाद-इकलौती लड़की का मौन विद्रोह, और सबसे बढ़कर निहायत घिनौनी और भौड़ी आशंका का दबाव, पिछले कई दिनों से उनकी छाती पर चक्की-सा सवार था। आज फूफी के आ जाने से, वह बोझा अचानक गायब हो गया था। महिम की बीमारी को मन में उन्होंने वैसा महत्व ही नहीं दिया। उस रात की दैवी दुर्घटना में सर्दी खाकर थोड़ा बुखार ही आ गया हो, तो वैसी कोई बात नहीं। फूफी ने दो-तीन दिन में चंगा होने का दिलासा दिया है, शायद इतना भी समय न लगे, शायद हो कि कल ही ठीक हो जाये। बीमारी के बारे में उन्होंने यह सोच रक्खा था। लेकिन असली बात यह कि सुरेश खुद जाकर उसे अपने यहाँ लिवा लाया है, और किसी बहाने उसकी स्त्री को उसके पास पहुँचाने के लिये अपनी फूफी तक को भेज दिया है। बेटी-दामाद में कुछ दिनों से मन-मुटाव चल रहा था, दाई की जबानी सुनी इस बात को वे भूले न थे; इसलिये यह सारा कुछ उसी दाम्पत्य-कलह का नतीजा है-इस सत्य के जाहिर हो जाने से, इस बक-झक में भी उन्हें बड़ी आत्म-ग्लानि के साथ यह लगने लगा-कि वहाँ पहुँचकर उस निर्दोष और भले युवक की तरफ वे नजर उठाकर देखेंगे कैसे? लेकिन उनकी बेटी के सर्वांग में एक कठोर नीरवता बिराज रही थी। बीमारी खास कुछ नहीं, यह उसने भी समझा था; पर वह यह नहीं समझ पा रही थी कि आखिर सुरेश उसे पकड़ कैसे लाया! इतना तो उसने स्वामी को पहचाना था!

साँझ हो गयी थी। रास्ते की गैस-बत्तियाँ जल चुकी थीं। गाड़ी सुरेश के फाटक में घुसी और बरामदे के पास जाकर लगी। उझककर केदार बाबू ने देखा और घबराकर बोले-दो-दो गाड़ियाँ क्यों खड़ी हैं?

अचला की चकित दृष्टि तुरन्त उधर को गयी और उसने देखा-एक प्रवीण अंग्रेज को सुरेश अदब के साथ गाड़ी पर सवार करा रहा है, और साहबी पोशाक में एक बंगाली सज्जन बगल में खड़े हैं। पलक मारते ही वह समझ गयी-ये दोनों डाक्टर हैं।

वे चले गये तो यह गाड़ी, गाड़ी-बरामदे में जाकर लगी। सुरेश खड़ा था। केदार बाबू ने चिल्लाकर पूछा-महिम कैसा है सुरेश? बीमारी क्या है?

सुरेश ने कहा-ठीक है। आइए!

केदार बाबू और परेशान होकर बोले-बीमारी क्या है, सो तो कहो!

सुरेश बोला-बीमारी का नाम बताऊँ, तो आप समझ नहीं सकेंगे केदार बाबू! बुखार है। छाती में थोड़ी सर्दी जमी है। लेकिन आप उतरें तो सही, उन्हें उतर आने दें!

केदार बाबू ने उतरने की जरा कोशिश न की। बोले-थोड़ी-सी सर्दी जम गयी है, तो इसका इलाज तो तुम खुद कर सकते हो! आखिर मैं कोई नन्हा-मुन्ना नहीं हूँ सुरेश, दो-दो डॉक्टर क्यों? और फिर अँग्रेज डॉक्टर? कहते-कहते उनकी आवाज काँपने लगी।

सुरेश करीब आ गया। हाथ पकड़कर उन्हें उतारते हुए बोला-फूफी अचला को अन्दर ले जाओ। मैं आता हूँ।

अचला ने किसी से कुछ पूछा-ताछा नहीं, अँधेरे में उसकी शक्ल भी नहीं दिखाई पड़ी। उतरते समय पायदान पर उसका पाँव लड़खड़ाने लगा, यह भी किसी ने नहीं देखा-यह भी किसी को नजर न आया कि वह जैसी चुपचाप आयी थी, वैसी ही चुपचाप फूफी के पीछे-पीछे भीतर चली गयी।

दो-एक मिनट बाद जब परदे को हटाकर वह कमरे में दाखिल हुई, तो महिम शायद अपने घर के बारे में न जाने क्या कह रहा था। उस लड़खड़ाती आवाज के दो-एक शब्द कानों में पहुँचते ही यह समझना बाकी न रहा कि वह अल्ल-बल्ल बक रहा है, और रोग कितना ज्यादा बढ़ गया है; जरा देर दीवार का सहारा लेकर उसने अपने को सम्हाला।

सिरहाने बैठकर जो स्त्री माथे पर बर्फ-पट्टी रख रही थी, उसने उलटकर देखा और धीरे-से उठकर आयी, झुककर उसे प्रणाम करके सीधी खड़ी हो गयी। विधवा का वेश, बाल गर्दन तक छोटे-छोटे छँटे, चेहरे पर युग-युग की सभी विधवाओं का वैराग्य मानो गहरा होकर विराज रहा था। मद्धिम रोशनी में अचला पहले यह न पहचान सकी कि वह मृणाल है; अब जब दोनों आमने-सामने खड़ी थीं, तो दोनों ही जरा देर के लिये ठक्-सी रह गयीं। अचला का सारा शरीर जैसे हिल उठा, क्या तो कहने के लिये उसके होंठ भी काँप उठे; पर

एक भी शब्द न फूटा, और दूसरे ही क्षण उसका बेहोश शरीर टूटी लता की नाईं मृणाल के कदमों पर लुढ़क पड़ा।

होश में आयी तो पाया-पिता की गोद में सिर रक्खे वह एक कोच पर पड़ी है। एक नौकरानी आँख-मुँह में गुलाबजल के छींटे दे रही है। पास खड़ा सुरेश धीमे-धीमे पंखा झल रहा है।

हो क्या गया-यह सोचने में उसे देर लगी। लेकिन याद आते ही लाज से घबराकर उसने उठने की कोशिश की। बाधा देते हुए केदार बाबू बोले-जरा आराम कर लो बिटिया, अभी उठो मत!

अचला ने धीमे से कहा-मैं अब ठीक हूँ बाबूजी। और उसने फिर उठने की कोशिश की। पिता ने जबर्दस्ती उसे रोककर कहा-उठने की अभी जरूरत नहीं, बल्कि थोड़ा सो जाने की चेष्टा करो।

अस्फुट स्वर में सुरेश ने भी शायद इसी बात का समर्थन किया। अचला ने चुपचाप एक बार उसकी ओर ताका, और उत्तर में पिता का हाथ ठेलकर सीधी खड़ी होकर बोली-सोने के लिये यहाँ नहीं आयी हूँ! मुझे कुछ नहीं हुआ है-मैं उस कमरे में जा रही हूँ। और वह बाहर चली गयी।

इस मकान के कमरों को वह भूली नहीं थी। बीमार का कमरा ढूँढ़ने में देर न लगी। अन्दर जाते ही मृणाल ने उसे देखा। बोली-सँझली दी, जरा देर तुम यहाँ बैठो, मैं नित्यकर्म कर लूँ!

जरा ख्याल रखना, बर्फ की टोपी लुढ़क न जाये। मृणाल अपनी जगह पर अचला को बैठाकर चली गयी।

(24)

सख्त न्यूमोनिया; चंगा होने में देर लगेगी। लेकिन महिम धीरे-धीरे चंगा होने की तरफ ही जा रहा था, डर की कोई बात न थी-यह सभी देख रहे थे। उसका यह प्रलाप, आँखों की खोई-खोई निगाह शान्त और स्वाभाविक होती आ रही थी।

दसेक दिन बाद एक दिन, तीसरे पहर महिम शान्त-सा लेटा हुआ था। इस तमाम साल सर्दी ज्यादा पड़ी थी। तिस पर अभी-अभी बाहर एक बौछार बारिश हो गयी। रोगी की खाट से सटाकर ही एक बड़ी-सी चौकी डालकर उस पर बिस्तर बिछाया गया था; सब लोग उसी पर अच्छा तरह से कपड़े ओढ़कर बैठे थे। सबकी आँखों में चिन्तारहित तृप्ति की झलक। केवल फूफी घर के धन्धों में कहीं जुटी थी, और केदार बाबू घर से अभी तक यहाँ पहुँच नहीं पाये थे।

सुरेश की ओर ताककर हाथ जोड़ते हुए मृणाल ने कहा-अब मुझे छुटकारे का हुक्म मिले सुरेश बाबू, मैं अपने घर जाऊँ। इस कड़ाके की सर्दी में बुढ़िया सास मेरी चल न बसी हो!

सुरेश बोला-अब भी क्या उनके जीने की जरूरत रह गयी है? उँहूँ, उनके लिये आपका जाना नहीं हो सकता!

मृणाल ने जरा देर के लिये गर्दन घुमाकर शायद एक लम्बे निश्वास को ही रोका। फिर सुरेश की तरफ देखकर मुस्कराती हुई बोली-आप ही क्यों, मैंने भी यह सवाल पहले बहुत बार पूछा है? लगता भी है कि अब उनके जाने से ही कल्याण है! लेकिन जो मरने-जीने के मालिक हैं, उनको तो ऐसा ख्याल नहीं। होता तो संसार में आदमी बहुतेरे दुःख-कष्टों से बच जाता!

अचला अब तक चुप रही थी। मृणाल की बातों पर शायद उसके पति की मौत की बात याद करके बोली-इसके मानी जो अन्तर्यामी हैं, वे जानते हैं कि हजारों तकलीफ के बावजूद आदमी मरना नहीं चाहता!

मृणाल के चेहरे पर एक छिपी वेदना की झलक झाँक गयी। सिर हिलाकर बोली-नहीं सँझली दी, ऐसी बात नहीं! ऐसा समय सचमुच में आता है, जब मनुष्य सचमुच ही मौत चाहता है!! उस दिन रात को अचानक नींद जो छूटी, तो अपनी सास को बिस्तर पर नहीं पाया। जल्दी से बाहर निकली। देखा, पूजा-घर का दरवाजा जरा-सा खुला है। चुपचाप करीब जाकर मैं खड़ी हुई। देखा-गले में आँचल डाले, हाथ जोड़कर वे देवता से मौत की भीख माँग रही हैं। कह रही हैं-हे देवता, अगर एक दिन को भी तन-मन से मैंने तुम्हारी सेवा की हो, तो आज मेरी लाज रख लो! मैं मुक्ति नहीं माँगती, स्वर्ग नहीं चाहती, सिर्फ इतना ही चाहती हूँ कि मुझे और शर्मिन्दा न करो ठाकुर-मैं अपना यह मुँह अब बहू को दिखा नही सकती हूँ। कहते-कहते मृणाल रो पड़ी।

इस प्रार्थना में माँ के हृदय की कितनी गहरी वेदना थी, यह समझने में किसी को कठिनाई न हुई। सुरेश की दोनों आँखें भर आयीं। किसी के भी मामूली दुःख पर वह डोल उठता था-आज उस पुत्रहीना जननी के मार्मिक दुःख की कथा सुनकर उसके हृदय में आँधी-सी बहने लगी। वह जरा देर स्तब्ध होकर जमीन की ओर ताकता रहा, और सिर उठाकर

आवेगमय स्वर में बोल उठा-अच्छा जाओ दीदी, अपनी बूढ़ी सास की सेवा करके अपना फर्ज अदा करो, मैं तुम्हें नहीं रोकूँगा! इस अभागे देश के पास आज भी अगर गर्व करने को कुछ है, तो वह है तुम जैसी नारियाँ; ऐसी चीज और कोई भी देश नहीं दिखा सकता! कहकर उसने जिज्ञासु दृष्टि से एक बार अचला की ओर देखा। लेकिन वह खिड़की से बाहर, धुमैले मेघ के एक टुकड़े पर नजर टिकाए बैठी थी, इसलिये उसकी तरफ से कोई उत्तर न आया।

लेकिन शर्माकर मृणाल ने, आलोचना को अपने पर से हटाकर दूसरी ओर मोड़ने के ख्याल से झटपट कहा-नहीं, नहीं क्यों हैं? आप सभी देश की बात जानते हैं न! अच्छा, सँभले दादा से आप बड़े हैं या छोटे?

इस अजीब सवाल पर सुरेश हँसकर बोला-क्यों भला? कहिए तो?

मृणाल ने बाधा दी-मुझे अब आप सम्बोधन न करें। मैं दीदी हूँ, पर उम्र में जब छोटी हूँ तो सँझले दादा, या छोटे दादा-कहिए जल्दी कहिए, क्या?

अबकी अचला ने आसमान की ओर से नजर हटाकर उसकी तरफ देखा। बहुत दिन पहले एक दिन उसने, इसी जल्दी और सहजता से उससे सँझली दीदी का नाता जोड़ लिया था, वह बात याद आ गयी। लेकिन चूँकि सुरेश को मृणाल के चरित्र की यह खासियत मालूम न थी, इसलिये वह उस अजीब औरत की ओर ताकते हुए कौतूहलभरी हँसी के साथ बोला-छोटे दादा! तुम्हारे सँझले दादा से मैं कोई डेढ़ साल छोटा हूँ।

मृणाल बोली-तो कृपा करके-छोटे दादा जी, एक आदमी ठीक कर दीजिए कि सुबह की गाड़ी से मुझे पहुँचा आये!

सुरेश ने यह नहीं सोचा था कि जाने की अनुमति मिल जाने से, वह कल ही जाने को तैयार हो जायेगी।

इसलिये वह जरा देर चुप रहा, और गम्भीर होकर बोला-और दो दिन भी क्या नहीं रुक सकोगी दीदी? तुम्हारे जिम्मे छोड़कर महिम की ओर से हम लोग निश्चिन्त थे। मुझे ऐसा ख्याल नहीं आता कि इस सावधानी और सहेज कर सेवा करते मैंने अस्पताल में भी किसी को देखा है! क्यों अचला?

जवाब में अचला ने सिर्फ सिर हिलाया।

सुरेश को चिन्तित-सा देखकर मृणाल बोली-आप इसके लिये तनिक भी न सोचें। जिसकी चीज है, उसी के हाथों सौंप कर जा रही हूँ; नहीं तो शायद मैं जा भी नहीं सकती। आपको तो याद है, हमें किस जल्दी में चला आना पड़ा था। कोई इन्तजाम ही करके न आ पाई। कल आप मुझे छुट्टी दें; फिर जब हुक्म होगा, चली आऊँगी!

सुरेश फिर कुछ देर चुप रहा। सहसा बोल उठा-अच्छा मृणाल, उस घोर देहात में एक बूढ़ी सास की सेवा और पूजा-आद्दिक करके तुम्हारा समय कैसे कटेगा, मैं केवल यही सोच रहा हूँ।

मृणाल के चेहरे पर फिर पीड़ा झलकी। मगर वह हँसकर बोली≤ काटने का भार मुझी पर तो नहीं है छोटे दादा, जिन्होंने समय को बनाया है, वे ही उपाय करेंगे!

सुरेश ने कहा-अच्छा, यह तो हुआ! लेकिन तुम्हारी सास तो ज्यादा दिन जिन्दा न रहेंगी, और डॉक्टर की सलाह के मुताबिक, महिम को भी कुछ दिनों के लिये पश्चिम के किसी स्वास्थ्यकर स्थान में रहना होगा फिर तुम वहाँ अकेली कैसी रहोगी?

मृणाल ऊपर की ओर देखकर सिर्फ जरा हँसी। बोली-यह वही जानें!

अनजानते ही सुरेश के एक दीर्घ श्वास छूट गया। मृणाल ने कहाँ-छोटे दादा, शायद यह सब नहीं मानते?

-क्या सब?

-वही, जैसे भगवान्...

-नहीं!

-फिर हम लोगों के लिये ही शायद आपके मुँह से उपेक्षा का श्वास छूटा?

सुरेश ने अचानक इसका कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर अनमना-सा उसकी ओर देखते रहकर, हठात् गर्दन हिलाकर बोला-नहीं मृणाल, वह बात नहीं। किसी अजाने भविष्य का भार, एक अजाने ईश्वर पर छोड़कर, वैसे लोग बल्कि हम लोगों से जीत के ही रास्ते पर चलते हैं, यह मैंने खूब देखा है! मगर इस तर्क को छोड़ो भी दीदी, शायद हो कि मुझसे तुम्हें नफरत हो जाये।

मृणाल ने झट झुककर सुरेश के पैरों की धूल ली। कहा-अच्छा रहे! सुरेश ने अवाक् होकर पूछा-यह फिर क्या हुआ मृणाल!

-क्या?

-कोई बात नहीं, और यों पैरों की धूल ले ली?

मृणाल बोली-बडे भाई के पैरों की धूल लेने के लिये दिन-तिथि देखनी पड़ती है क्या! और वह हँस पड़ी।

अजीब लड़की है!-कहकर स्नेह से हँसते हुए उसकी ओर देखकर, सुरेश अचरज से अवाक् रह गया। उसे ऐसा लगा-उसकी सारी शक्ल सावन की काली घटा वाले आसमान-सी घिर

गयी है। लेकिन अचरज के इस धक्के को सम्भाल कर, इस सम्बन्ध में कुछ भी पूछने-ताछने की चेष्टा करने के पहले ही अचला, हक्का-बक्का हुए सुरेश को आकाश-पाताल की सोचने का काफी मौका दे, तेजी से मृणाल के प्रायः साथ-ही-साथ कमरे से बाहर हो गयी।

वही आहत-सा बैठा सुरेश बार-बार अपने ही आपको पूछने लगा-

फिर क्या से क्या हो गया? मृणाल के यों प्रणाम करने के साथ इसका कैसे तो कोई गहरा सम्बन्ध है, इसका वह आप ही अनुमान करने लगा-लेकिन वह सम्बन्ध है कहाँ! अचानक उसकी पद-धूलि लेकर मृणाल चली क्यों गयी, और साथ-ही-साथ यों उड़ा हुआ चेहरा लिये अचला ही क्यों बाहर हो गयी? शुरू से आखिर तक अपनी एक-एक बात को दुहराकर वह देख गया, पर खाक समझ में नहीं आया; क्योंकि उसने खूब समझा कि आस-पास ही दो-दो इतनी बड़ी घटनाएँ कुछ यों ही नहीं घटीं। हो-न-हो उसी का कोई बुरा आचरण इसकी जड़ है, यह सन्देह उसके मन में काँटे-सा चुभने लगा।

मगर मृणाल से भी इसके बारे में कुछ पूछना असम्भव था। रात तो उसने कतरा-कतराकर काटी, लेकिन सवेरे एक समय अचला को अकेली पाकर कहा-तुम्हें मेरी एक बात का जवाब देना होगा।

अचला का मुँह शर्म से लाल हो उठा-बात क्या थी, यह उसकी अजानी न थी। पिछली रात की हरकत की कैफियत देनी होगी, यह ताड़कर उसने मृदु स्वर में पूछा-कौन-सी बात का?

सुरेश ने धीमे-धीमे कहा-कल मृणाल एकाएक मेरे पैरों की धूल लेकर चली गयी, और तुम भी रंज होकर मुँह लटकाये चली गयीं, क्या इसलिये कि मैंने उसकी सास के मरने की बात कही थी!

इस अप्रत्याशित प्रश्न से एक राह मिल गयी, इससे अचला मन-ही-मन खुश हुई। बोली-यह प्रसंग छेड़ना क्या उचित था? बेचारी के पति नहीं, सास के मरने से उसके अकेलेपन की तो सोच देखो जरा!

सुरेश बहुत ही खीझकर बोला-मुझसे बड़ी गलती हो गयी! लेकिन यह तो मृणाल भी समझती है कि अब चन्द दिनों की मेहमान हैं। फिर वह असहाय ही क्यों होने लगी?

अचला ने कहा-हम लोगों ने तो यह बात उससे एक बार भी नहीं कही। तुमने ही बल्कि उसे तरह-तरह से डराया, कि गाँव में वह अकेली रहेगी कैसे?

सुरेश ने पछताकर पूछा-तो उसके जाने के पहले क्या हमें भरोसा नहीं देना चाहिए? यह कि उसे कोई डर नहीं। यह बात....

कहते-कहते करुणा से उसका गला भर आया।

अचला उसकी शक्ल देखकर हँसी। पराए दुःख से दुःखी इस युवक की दया की हजारों कहानियाँ उसे पल-भर में याद आ गयीं। बोली-नहीं, नहीं, भरोसा नहीं देना होगा, और डर दिखाने की भी जरूरत नहीं!

सुरेश ने आवेग से आत्मविस्मृत हो, अकस्मात् उसके हाथ को कसकर पकड़कर जोरों से झकझोर दिया। कहा-यह तुम्हारे लायक बात हुई! तुमसे यही तो मैं चाहता हूँ, अचला! कहते ही लेकिन अशेष लज्जा से उसका हाथ छोड़कर वह भाग गया।

उसका जो आवेग क्षणभर पहले, दूसरे की भलाई के स्वच्छ आनन्द में विजयी हुआ था, इस शर्मनाक भाग खड़े होने से पल में ही वह घिनौना और कलुषित-सा हो उठा। अचला की नसों का खून बिजली की रफ्तार से दौड़ा, और पसीने की बूँदों से कपाल भर गया; बदन बार-बार सिहर उठा। वह एक कुर्सी खींचकर निर्जीव की तरह बैठ गयी। थोड़ी देर में वह भाव तो जाता रहा, पर बीमार पति की खाट पर बैठने में, सुबह का सारा समय कैसे तो एक भय में बीतने लगा।

जाते-जाते भी मृणाल को दो-एक दिन की देर हो गयी। महिम से विदा माँगने गयी तो देखा-आज वह करवट बदलकर असमय सो गया है। जो विदा माँगने गयी थी, इस झूठी नींद का निश्चित कारण समझते हुए भी बोली-उन्हें अब जगाने की जरूरत नहीं, सँझली दीदी! है न?

जवाब में अचला के होंठ पर एक बाँकी मुस्कान खेल गयी। मृणाल मन में समझ गयी, उसके इस बहाने को एक और भी स्त्री समझ गयी है। मन-ही-मन अचला उससे ईर्ष्या करती है, महिम से इसका कोई आभास न पाने के बावजूद मृणाल जानती थी। यह निरा

निरर्थक द्‌वेष उसे काँटा-सा गड़ा करता। फिर भी अचला अपनी हीनता से उस बीमार आदमी की पाक कमजोरी का उल्टा मतलब लगाएगी, यह वह नहीं सोच पाई थी, एक क्षण के लिये उसका जी जल उठा। लेकिन अपने को जब्त करके उसने उसके कान में कहा-तुम तो सब कुछ जानती हो सँझली दीदी, मेरी ओर से उनसे क्षमा माँग लेना। कहना, चंगे होकर जब गाँव लौटेंगे, तो जिन्दा रही मैं तो भेंट होगी!

नीचे केदार बाबू बैठे थे। मृणाल ने जैसे ही उन्हें प्रणाम किया कि उनकी आँखें गीली हो गयीं। इसी छोटे-से अरसे में, औरों की तरह वे भी इस विधवा को बहुत स्नहे करने लगे थे। कुरते की आस्तीन से आँखें पोंछते हुए बोले-बेटी, तुम्हारे मंगल से ही हमने महिम को यम के जबड़े से वापस पाया है। जभी फुर्सत मिले, या घूमने की इच्छा हो तो इस बूढ़े चाचा को भूलना मत बिटिया! मेरा घर तुम्हारे लिये रात-दिन खुला रहेगा।

कुछ दूर पर अचला खड़ी थी; मृणाल ने उसे दिखाते हुए मुस्कराकर कहा-इनके होते यम के बाप की क्या मजाल कि सँझले दादा को ले जाये! मैंने जिस दिन उन्हें सँझली दीदी के जिम्मे कर दिया, मेरा काम उसी दिन चुक गया।

केदार बाबू कुछ गम्भीर-से हो गये, मगर बोले कुछ नहीं।

दो प्रौढ़-से कारिंदे और एक नौकरानी, मृणाल को उसके घर छोड़ आने को तैयार थे। उन सबको लेकर घोड़ा-गाड़ी फाटक से बाहर निकल गयी, तो केदार बाबू के अन्तर्तम् से एक दीर्घ श्‍वास निकला। उन्होंने आहिस्ते से इतना ही कहा-अजीब, अनोखी लड़की!

सुरेश का मन भी शायद इसी भाव से भरा था। उसने और किसी तरफ गौर न करके, हामी भरते हुए आवेग के साथ कहा-मैंने तो ऐसा कभी नहीं देखा! न तो ऐसी मीठी बात सुनी है कभी, न ऐसा कुशल काम-काज ही देखा है!! जो भी काम दीजिए, इस कुशलता से करेगी कि जी में होगा, जीवन-भर शायद वह यही करती आयी है। मगर गजब तो यह कि गाँव से बाहर कभी कदम भी नहीं रक्खा!

केदार बाबू ने सच मानते हुए भी अचरज के साथ पूछा-अच्छा?

सुरेश बोला-जी! उसे देख-देखकर मेरे जी में आता था-पूर्वजन्म के संस्कार की जो बात कही जाती है, सच न हो कहीं! कहकर वह हँसने लगा।

पूर्वजन्म के प्रसंग से केदार बाबू कुछ चिन्तित-से होकर सहसा बोल उठे-सो जो भी हो, इसे देखकर मेरी निश्चित धारणा हुई है कि स्त्रियों में यह अनमोल रतन है! इसे आजीवन यों जीवन्मृत बनाये रखना पाप ही नहीं, महापाप है!! मेरी लड़की रही होती वह, तो मैं हर्गिज ऐसा निश्चिन्त नहीं रह सकता था!!!

सुरेश ने ताज्जुब में आकर पूछा-क्या करते आप?

बूढ़े ने ओजभरे शब्दों में कहा-मैं फिर से उसकी शादी करता! एक बुड्ढे को सौंपकर जिन लोगों ने इस उन्नीस-बीस साल की उम्र में उसे जोगन बनाया है, वे उसके हितू नहीं, कट्टर दुश्मन हैं!! और दुश्मनों के काम को मैं किसी भी हालत में वाजिब नहीं मानता!!!

वे जरा चुप रहकर फिर बोले-जरा उसके स्वामी के ही सलूक को तो देखो। दो-दो बीवी के गुजरने के बाद, जब पचास साल की उम्र में उस खूसट ने इस लड़की से गठबन्धन किया, तो अपने मौज-मजे के सिवा उसने इसके भविष्य के बारे में सोचा भी?

सुरेश को निरुत्तर देख वे और भी जोश में आ गये। बोले-मैं विधवा-विवाह के बुरे-भले का तर्क नहीं करना चाहता। लेकिन इस पर तुम्हारा सारा हिन्दु-समाज चीख-चीखकर मर ही जाये, तो भी मैं यह नहीं मानने का उस दूध-पीती बच्ची के लिये यही विधान श्रेयस्कर है! उसे ऐसा कुछ भी नहीं, जिसे देखकर वह एक भी दिन गुजार सके। सारी जिन्दगी कोई खिलवाड़ है-कि ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचर्य का शोर मचाने से सारी दुनिया रातो-रात तपोवन हो जायेगी!! उस लड़की के कपड़े-लत्ते देखकर ही मेरा कलेजा टूक-टूक हो जाता था।

सुरेश ने जवाब नहीं दिया, नजर उठाकर देखा तक नहीं। लेकिन कनखियों से देखा कि अचला अब तक चौखट का सहारा लिये बुत-जैसी खड़ी थी-वहाँ अब वह नहीं है। जाने कब अन्दर चली गयी।

मृणाल के चले जाने के बाद अचला जब-जब सुरेश के चेहरे की तरफ ताकती, उसे लगता, वह अनमना हो गया है। और जाने कौन-सा शोक उसे क्रमशः नीरस किये दे रहा है।

दो दिन के बाद की बात। तीसरे पहर, निचले बरामदे के एक ओर धूप में, आराम-कुर्सी पर बैठा सुरेश जाने कौन-सी किताब पढ़ रहा था। आहट पाकर उसने उलटकर देखा-अचला

खुद उसके लिये चाय लेकर आ रही है। पहले कभी ऐसा नहीं हुआ, सो हैरत में आकर सुरेश ने सीधा बैठते हुए पूछा-बैरा कहाँ है? खुद ही लिये आ रही हो!

अचला ने इसका जवाब न दिया। एक छोटी-सी तिपाई पर चाय का प्याला रखते हुए, दूसरी कुर्सी खींचकर आप भी बैठ गयी।

उसके इस बिल्कुल नये आचरण से, दूसरा सवाल करने का साहस सुरेश को न हुआ। उसने चुपचाप चाय का प्याला हाथ में उठा लिया।

कुछ देर चुप बैठी रहकर अचला ने धीमे से कहा-अच्छा सुरेश बाबू, विधवा-विवाह को आप किसी भी हालत में अच्छा नहीं समझते?

चाय के प्याले में होंठ लगाए रखकर ही सुरेश ने कहा-समझता हूँ। इसलिये मेरा कुसंस्कार अभी उस हद तक पहुँचा नहीं है।

अपने को सोचने का और ज्यादा मौका न देकर अचला बोली-फिर तो मृणाल जैसी लड़की से विवाह करने में आपको रत्ती-भर भी एतराज न होना चाहिए।

चाय के प्याले को हाथ में लिये, सख्त होकर बैठते हुए सुरेश ने कहा-इसका मतलब?

अचला की शक्ल या आँखों में उत्तेजना के आसार न दिखाई दिए। वह सहज ढंग से बोली-आपके आगे मैं अंसख्य ऋणों से ऋणी हूँ। इसके सिवा मैं आपका भला चाहने वाली हूँ। आपको मैं सुखी-सहज-साँसारिक और स्वाभाविक देखना चाहती हूँ। एक दिन आप विवाह करने को तैयार थे; आज मेरा एकान्त अनुरोध है, स्वीकार कीजिए!

जैसे कण्ठस्थ हो, एक ही साँस में इतनी-इतनी बातें बोलकर अचला हाँफने लगी।

बड़ी देर तक सुरेश बुत-सा स्थिर बैठा रहा, और आखिर बोला-इससे क्या तुम सच ही खुश होगी?

अचला ने कहा-हाँ!

-वह राजी होगी?

-मैं समझती हूँ, होगी!

सुरेश जरा फीका हँसकर बोला-लेकिन मैं ऐसा नहीं समझता। तुमने किताब में पढ़ा है-कोई-कोई सती पति के साथ हँसते-हँसते जल मरती थी। मृणाल उसी कोटि की औरत है! मुँह की बात पर उसे राजी करना तो बहुत दूर की बात है, एक-एक करके उसके हाथ-पाँव काटते जाओ, तो भी दुबारा ब्याह करने के लिये उसे राजी नहीं कराया जा सकता। इस

असम्भव को सम्भव करने की चेष्टा में, नाहक ही उसके सामने मेरी मिट्टी-पलीत मत करो, अचला! उसने मुझे दादा कहा है, इस सम्मान को मैं सुरक्षित रखना चाहता हूँ।

देखते-ही-देखते अचला का चेहरा गुस्से के मारे काला पड़ गया। सुरेश का कहना खत्म हुआ, कि सख्त-सी होकर बोली उठी-संसार में अकेली मृणाल ही सती नहीं है, सुरेश बाबू! ऐसी भी सतियाँ हैं, जिन्होंने मन में भी किसी को पतिरूप में चुन लिया हो, तो लाखों प्रलोभनों से भी उन्हें डिगाया नहीं जा सकता!! इनका जिक्र छापे की किताबों में न भी मिले, तो भी इसे सच जानें!!! इतना कहकर हैरान-से रहे, हक्के-बक्के-से सुरेश की तरफ नजर तक न उठाकर, वह गर्विता नारी दृढ़ कदम बढ़ाती हुई बाहर चली गयी।

(25)

किसी की उच्छ्‌वसित, निश्छल प्रशंसा में किसी और के लिये कितना कठोर आधात और अपमान छिपा रह सकता है-वक्ता और श्रोता दोनों में से कोई शायद थोड़ी देर पहले तक भी इसे नहीं जानते थे। हाथ का प्याला हाथ ही में लिये सुरेश बेबस-सा बैठा रहा; और अचला अपने कमरे में जाकर, तकिये में मुँह गाड़कर रुलाई के बेरोक वेग को रोकने लगी-बगल में ही महिम का कमरा था-कहीं उसके कानों आवाज न पहुँचे। अन्तर्यामी के सिवा वास्तव में इस रुलाई का इतिहास और कोई नहीं जान सका।

लेकिन इस गहरे दुःख से उसे एक नया तथ्य मिला। नारी-जीवन में यह सतीत्व कितनी मूल्यवान वस्तु है, इतने दिनों के बाद आज ही मानो पहले-पहल उसकी आँखों के सामने प्रकट हुआ। उस रोज सुरेश से उसके संस्पर्श पर पिता की सन्देहालु दृष्टि से वह बेहद दुःखी और नाराज हुई थी, समझा था कि यह उस पर जुल्म है; पर आज जब अचानक उसी धर्महीन, पराई स्त्री पर निगाह रखने वाले सुरेश को ही सतीत्व के चरणों पर सिर नवाकर

इस तरह प्रणाम करते देखा, तो उसे यह समझना बाकी न रहा कि उसका असली स्थान क्या है।

एक बात और। उसने आज यह अनुभव किया कि स्पष्ट कहने की ताकत क्या होती है? वह शिक्षिता थी। मन से स्वामी के लिये निष्ठा ही सतीत्व है, यह बात उसकी अजानी न थी। यह वह अच्छी तरह जानती थी कि अकेला मन या अकेला तन, कोई भी पूर्ण नहीं। फिर भी मन जब उसका डाँवाडोल हुआ है, जबान से यह कहने में जब उसे हिचक नहीं हुई कि पति को वह प्यार नहीं करती-तब भी लेकिन उसे अपने-आपको छोटा नहीं लगा। पर आज जब सुरेश की जबान से निकली हुई बात ने, अजानते ही उसके नाम से असली शब्द को जोड़ देना चाहा, तो उसकी अन्तरात्मा एक हृदयभेदी वेदना के आत्र्त स्वर में चीखकर रो पड़ी।

मगर इसका यह मतलब नहीं कि मृणाल पर उसकी श्रद्धा बढ़ गयी हो। उसके सम्बन्ध में आज उसे जो चेतना मिली, उसे वह जिन्दगी में कभी नहीं भूलेगी-मन-ही-मन वह बार-बार प्रतिज्ञा करने लगी।

बाहर पिता की छड़ी की ठक्-ठक् और पीछे से सुरेश के पैरों की आहट उसने सुनी। समझ गयी कि वे लोग महिम के पास जा रहे हैं। जरा ही देर में पिता की पुकार पर, उसने आँचल से भली तरह आँख पोंछकर किवाड़ खोला और उस कमरे में पहुँची।

उसकी सूरत देखकर केदार बाबू ने पूछा-क्यों, बात क्या है? दो ही बजे शोरबा देना था, चार बज रहे हैं! अरे, यह शक्ल ऐसी क्यों? सो रही थी?

अचला जवाब न देकर जल्दी से चली गयी। जबसे मरीज को शोरबा देने को कहा गया था, यह काम मृणाल ही करती थी। नौकर चूल्हे पर चढ़ा देता था, वह समय पर अन्दाज से उतार लिया करती थी। उसके जाने के बाद यह भार अचला पर आ पड़ा था। आज उसे इसकी याद ही नहीं रही। दौड़ी-दौड़ी गयी। देखा-आग कब की ठण्डी हो गयी है, और शोरबा जलकर सूख गया है।

बड़ी देर तक सन्न-सी खड़ी होकर जब वह लौटी, तो यह सुनकर केदार बाबू ने अचला से कुछ नहीं कहा। सुरेश से बोले-मैंने तो तुमसे तभी कहा था सुरेश, कि अभी एक अच्छी नर्स न रक्खोगे, तो महिम को बचा नहीं पाओगे! मेरी लड़की को क्या तुम लोग मुझसे ज्यादा जानते हो?

सुरेश चुप बैठा रहा। लेकिन यह किसी ने नहीं देखा-कि महिम अब तक स्त्री के शर्म से फीके पड़े चेहरे की ओर देख रहा था। वह धीरे-धीरे बोला-सुरेश, नर्स के हाथों से मुझे दवा तक न रुचेगी। लेकिन मदद के लिये इन्हें कोई आदमी दो। कल-परसों, दो-दो रात इन्हें रात-रात भर जगना पड़ रहा है। दिन के वक्त थोड़ा-सा आराम न करने दो, तो कल-पुर्जे के आदमी से भी काम नहीं ले सकते!

बात अक्षरशः सत्य न हो, झूठ न थी। सुरेश खुश हो गया; लेकिन केदार बाबू अपनी रूखी बात पर लज्जित हो कुछ कहने ही जा रहे थे, कि अचला कमरे से बाहर चली गयी।

रात में बहुत बार उसके जी में आया कि बीमार पति से, रो-रोकर अपने अनेक अपराधों के लिये क्षमा माँगकर पूछे-कि उसकी जैसी पापिनी को फजीहत से बचाने की उन्हें क्या पड़ी थी? लेकिन चरम लज्जा से यह सवाल किसी भी प्रकार से उसके मुँह से न निकला।

सुरेश का एक नियमित काम था, वह रोज रात को महिम के कमरे में जाकर, सारी जरूरी चीजों का इन्तजाम करके तब सोने जाता था। मृणाल जब थी, तो वह लगभग रात-भर आता-जाता रहता था। जरूरत भी थी। लेकिन इधर कई दिन से देखा गया-सहज ही वह कमरे में नहीं जाता। जरूरत होती तो वह दाई को भेजकर खोज लेता; केवल साँझ से पहले एक बार, जरा देर के लिये खुद आकर खोज-पूछ करता। उसके इस रवैये ने सबसे पहले अचला का ही ध्यान खींचा था। लेकिन इस पर कुछ कहना उसके लिये सम्भव नहीं था। इसीलिये वह चुप रही थी। पर जिस दिन महिम ने खुद ही इसका जिक्र किया, तो उसे कहना ही पड़ा कि आज-कल वह ज्यादातर घर में भी नहीं रहते। इसकी वजह भी वह नहीं जानती। महिम ने चुपचाप सुना, अपनी कोई राय न दी।

दूसरे दिन सवेरे अचला नीचे उतर रही थी, और सुरेश भी किसी काम से ऊपर जा रहा था; अचला को देखते ही वह दूसरी तरफ हट गया। उसे सन्देह न रहा, कि सुरेश उसी से कतराता चलता है और एक दिन हृदय से उसने जिसकी कामना की थी, सुरेश की हरकत से उसका वही हृदय व्यथा से पीड़ित हो उठा।

(26)

सभी काम-काज, उठने-बैठने तक में, अचला के मन के एकान्त कोने में जो बात हर पल सुलगती रही, वह यह कि सुरेश के मन में कोई बहुत बड़ा परिवर्तन काम कर रहा है, जिससे उसका कोई ताल्लुक नहीं। जो उद्दाम प्रेम कभी उसमें पैदा होकर बढ़ा, वह मानो टूटे-फूटे घर-सा उसे छोड़कर और कहीं चला गया। वह अपने-आपको हजारों तरह से झिड़कने-धिक्कारने लगी। लेकिन विदाई की वेदना को वह हर्गिज मन से दूर न हटा सकी। यहाँ तक कि बीच-बीच में, भयानक डर से उसके सर्वांग के रोएँ खड़ा करते हुए यह सन्देह उसके मन में झाँक-झाँक कर उठने लगा कि अपने अनजानते उसने कभी सुरेश को

चुपचाप प्यार किया है या नहीं। हर बार इस आशंका को वह असगंत, अमूलक कहकर टालने लगी; अपने-आप पर व्यंग करके कहने लगी-इस असम्भव के सम्भव होने से पहले वह डूब मरेगी-तो भी यह बात छाया-सी उसके पीछे ही लगी रही; घूमते-फिरते वह इसे अपनी आँखों से देखने लगी, और शायद इसीलिये इस विभीषिका से पिण्ड छुड़ाने की नीयत से, नहाने-खाने भर के समय को छोड़कर, रात-दिन में थोड़ा भी समय पति से अलग रहने का साहस न कर सकी। बगल का जो कमरा उसके लिये था, इन कई दिनों में उसमें जाने की भी उसकी इच्छा न हुई। ऐसे ही कुछ दिन बीत गये।

महिम लगभग चंगा हो गया। आबोहवा बदलने के लिये जल्द ही जबलपुर जाने की बात चल रही थी। उस दिन अचला नीचे बैठकर स्टोव पर पति के लिये दूध गरम कर रही थी। दूध बार-बार उफन रहा था; उसे किसी तरफ ताकने की फुर्सत न थी-वह जानती न थी कि महिम अब तक उसी की ओर ताक रहा था-अचानक पति की लम्बी उसाँस की आवाज सुनकर उसने सिर उठाकर एक बार देख-भर लिया, और फिर अपने काम में लग गयी।

महिम कभी भी ज्यादा नहीं बोलता, मगर आज एकाएक निःश्वास फेंककर बोल उठा-सच अचला, बहुत बडे दुःख के बिना कभी कोई बड़ी चीज नहीं पाई जा सकती! मेरा घर भी फिर बनेगा, और यह बीमारी भी जाती रहेगी-लेकिन इससे भी जो अनमोल चीज मैंने पाई, वह तुम हो! आज मुझे लगता है-तुम्हारे बिना मेरा एक क्षण भी नहीं कट सकेगा!!

अचला चुपचाप कटोरे के गरम दूध को ठण्डा करती रही, बोली नहीं। कुछ देर रुककर महिम ने फिर कहा-मृणाल, सुरेश-इन लोगों ने भी कुछ कम सेवा नहीं की मेरी; लेकिन न जाने क्यों, जभी मुझे होश आता, मैं घुटन महसूस करता। बार-बार जी में आता-इन्हें इतनी तकलीफ, इतनी असुविधा हो रही है, इनके इस एहसान का बदला जीवन में कैसे चुकाऊँगा! लेकिन ईश्वर के हाथों का बाँधा यह ऐसा सम्बन्ध है कि तुम्हारे बारे में यह

फिक्र ही नहीं होती कि यह ऋण कभी मुझे चुकाना ही पड़ेगा। मुझे बचाना मानो तुम्हारी ही गर्ज है-कहकर महिम जरा हँसा।

अचला गर्दन झुकाए दूध को चलाती ही गयी, बोली कुछ नहीं।

महिम ने कहा-और कितना ठण्डा करोगी, लाओ!

अचला ने तो भी कुछ नहीं कहा। नजर झुकाए उसी तरह बैठी ही रही। पहले तो महिम को हैरानी-सी हुई लेकिन वह तुरन्त समझ गया कि मुझ से अपने आँसू छिपाने के लिये ही वह उस तरह सिर-गाड़े बैठी है।

सुरेश क्यों नहीं आता है, इसका वास्तविक कारण न समझते हुए भी, महिम ने कुछ अनुमान नहीं किया था, सो नहीं। इसके लिये उसके मन में क्षोभ मिली हुई एक खुशी ही थी। क्योंकि अचला सतर्क हो गयी है, अकेले में अचानक भेंट हो सकती है, इस खतरे से वह सहज ही कमरे से बाहर नहीं निकलती, महिम ने यह अनुभव किया। इसलिये आज उसका मन मानो वसन्त की हवा में उड़ता रहा। उसकी खाट के करीब ही एक चौकी पड़ी थी। उस दिन काफी रात तक अचला उसी पर बैठी कोई किताब पढ़ रही थी, और थककर बाकी रात वहीं सो रही। सवेरे महिम के जगाए वह हड़बड़ में जगी। खिड़की खोलकर देखा-वेला हो आयी है।

महिम किसी काम के लिये उसे कहते-कहते रुक गया, और सिर से पाँव तक स्त्री को बार-बार गौर करके अचरज से पूछा-तुम्हारी अपनी चादर क्या हो गयी? उससे भी ज्यादा हैरत में आकर अचला ने देखा-अभी-अभी जगने के बाद जो चादर वह लपेट कर आयी है, वह सुरेश की है। पति के इस सवाल ने मानो उसे कोड़ा लगाया। लाज और दुःख से सारा चेहरा बदरंग हो गया। मगर यह हुआ कैसे-वह सोच ही न पाई। याद आया, रात जब वे सो गये थे, तो वह अपनी चादर चपोतकर उनके पैरों पर रख कर, खुद अँचरा ओढ़े ही पढ़ने बैठ गयी थी। इतना ही सिर्फ याद आया, कि नींद में उसे सर्दी-सी लगी थी, और अब जगकर यही देख रही है। स्त्री के शर्माए चेहरे को देखकर महिम स्नेह से, कौतुकपूर्ण हँसी हँसा।

बोला-इसमें इतने शर्माने की क्या बात है अचला? हो सकता है, नौकर ने ही उलटा-पुलटा कर दिया हो, तुम्हारी चादर वहाँ और उसकी यहाँ रख दी हो। या सुरेश खुद ही कल शाम को यहाँ छोड़ गया हो, और तुमने बदन पर रख ली। बैरे से कह दो, बदल देगा!

कहती हूँ-कहकर अचला चादर लिये बाहर आयी, और जब अपने कमरे में विमूढ़-सी बैठ गयी, तो कुछ भी समझना बाकी न रहा। काफी रात बीतने पर सुरेश चुपचाप कमरे में आया होगा, और उसे जड़ाते देख, स्नेह-जतन से अपनी चादर उढ़ाकर चला गया होगा। इस बात में उसे जरा भी सन्देह न रहा। आँखें मूँद कर उसकी वह झुकी और प्यास-भरी निगाह वह स्पष्ट देख पाई, और उसके रोंगटे खड़े हो गये। उसे ऐसा लगा कि सुरेश उसी को देखने, और अच्छी तरह से देखने के लिये आया होगा; और शायद रोज ही आता है, किसी को मालूम भी नहीं हो सकता।

इस आचरण से उसकी लज्जा की सीमा न रही। इसे घिनौना, निन्दनीय, असभ्य कहकर वह हजार तरह से लथेड़ने लगी; मेहमान के प्रति मकान-मालिक का चोरी-चोरी ऐसा कर्म, अपने जीवन में कभी न क्षमा करने की बार-बार प्रतिज्ञा की। फिर भी उसका मन इस

अभियोग के लिये खुलकर हामी नहीं भर रहा है, यह भी उसने समझा। लेकिन साथ ही उसके आगे यह भी स्पष्ट हो गया, कि आज तक क्या और कहाँ चुभता रहा उसे।

केदार बाबू के कोई बचपन के साथी जबलपुर में रहते थे। उनके यहाँ से जवाब आया-जलवायु और कुदरती नज्जारों के लिये यह जगह बड़ी ही अच्छी है। मेरा घर भी काफी बड़ा है। महिम आये तो बड़े मजे में यहीं रह सकता है।

एक दिन सवेरे केदार बाबू ने आकर यह बताया। कहा-माघ महीना बीत चला। और राह की थोड़ी-बहुत तरद्दुद झेलने लायक भी हो ही गये तो अब देर काहे की? चल ही देना चाहिए! जवानी में एक बार वे जबलपुर गये थे। उसकी स्मृतियाँ मन में थीं, उन्हीं का बड़े उमंग से वर्णन करते हुए बोले-जगदीश की स्त्री अभी जीवित है, वे माँ के समान महिम की सेवा-जतन करेंगी, और इसी बहाने मेरा भी फिर एक बार जबलपुर जाना हो जायेगा। महिम चुपचाप सब सुनता रहा, पर कोई उत्साह नहीं दिखाया। उसकी यह उदासी सिर्फ अचला ने ही देखी। पिता जब वहाँ से चले गये, तो उसने धीमे-धीमे पूछा-क्यों, जबलपुर तो अच्छी जगह है, नहीं जाना चाहते हो?

महिम ने कहा-तुम लोग मुझे जितना तन्दुरुस्त और सबल समझ रही हो, हकीकत में उतना मैं अभी हुआ नहीं-कभी हूँगा या नहीं, मैं इसकी भी आशा नहीं करता!

अचला ने कहा-जभी तो डाक्टर ने जलवायु-परिवर्तन करने की सलाह दी है घूम आओ, सब ठीक हो जायेगा!

महिम ने धीरे-धीरे गर्दन हिलाई और जरा देर चुप रहा। बोला-क्या जानें। लेकिन ऐसी हालत में, अपने या और किसी के भरोसे मुझे स्वर्ग जाने का भी भरोसा नहीं होता! अन्दर से मैं बहुत अस्वस्थ, बहुत कमजोर हूँ अचला! तुम पास न रहो, तो शायद ज्यादा दिन न बचूँगा!! कहते-कहते उसकी आवाज भर्रा गयी।

वह जबान खोलकर कभी कुछ माँगता नहीं, कभी कोई कमी और दुःख नहीं जाहिर करता। सो उसके मुँह की इस व्याकुल याचना ने मानो कील चुभोकर, अचला के हृदय में अब तक के सारे रुँधे स्नेह, करुणा और माधुर्य का मुँह खोल दिया। वह अपने-आपको और सम्हाल न सकी और कहीं कुछ कर न बैठे इस डर से आँसू दबाती हुई दौड़कर वहाँ से भाग गयी। महिम बड़ी देर तक अचरज और दुःख से खुले दरवाजे की तरफ देखता रहा; फिर धीरे-धीरे लेट गया।

फिर जब दोनों की भेंट हुई, तो दो में से किसी ने भी इसके बारे में कोई बात न की। दूसरे दिन सवेरे वह हाथ में एक तार लिये आयी और मुस्करा कर बोली-जगदीश बाबू ने तार का जवाब दिया है; उन्होंने अपने मकान के पास ही हम लोगों के लिये एक छोटा-सा मकान ठीक किया है।

महिम ठीक न समझ पाकर बोला-मतलब इसका?

अचला बोली-वे पिताजी के मित्र हैं, इस नाते उन्होंने आपको जगह दी-माना; मगर दो-दो आदमी तो उनके कन्धे पर जाकर नहीं लद जा सकते! इसलिये मैंने कल ही पिताजी को लिख भेजा था कि एक दूसरा मकान ठीक करने के लिये उन्हें तार दे दें। उसी का जवाब है। यह कहकर उसने पीला-सा लिफाफा पति के बिछावन पर फेंक दिया।

महिम ने उसे उठाकर शुरू से अन्त तक पढ़कर सिर्फ अच्छा कहा। वह समझ गया कि अचला स्वेच्छा के साथ जाना चाहती है। लेकिन कल वाले आचरण को याद करके-जो आज भी उसके लिये ऐसा ही दुर्बोध, वैसा ही दुर्जेय है, किसी तरह की चंचलता दिखाने की उसे इच्छा न हुई। किन्तु अचला की ओर से सफर की पूरी तैयारी होने लगी। उस दिन दोपहर को इस कमरे में आकर वह अपने सरो-सामान ठीक कर रही थी। केदार बाबू दरवाजे के पास कुछ देर तक खड़े-खडे देखते रहकर बोले-तुम न जाओ, तो कोई हर्ज है बेटी?

अचला ने चौंककर देखते हुए पूछा-क्यों पिताजी?

सेहत और इलाज के लिहाज से उसका साथ रहना ठीक नहीं है-पिता होकर बेटी से यह कहने में उन्हें शर्म नहीं आयी। इसलिये महिम की मौजूदा आर्थिक स्थिति का इशारा करते हुए बोले-कौन ज्यादा दिन की बात है! फिर जगदीश के यहाँ उसे कोई तकलीफ ही नहीं होगी!! कुछ दिनों के लिये नाहक ही ज्यादा खर्च करके...

असली बात अचला ने नहीं समझी। उसने पिता की ओर नजर उठाकर पूछा-शायद उन्होंने कहा था!

-नहीं-नहीं, महिम ने कुछ नहीं कहा-मैं ही ऐसा सोच रहा हूँ...

तुम कुछ न सोचो-मैं सब ठीक कर लूँगी-कहकर उसने अपने सामान से ध्यान लगाया। दूसरे ही दिन अपने दो जेवर बेचकर उसने नकद रुपये मँगवाकर रक्खे।

फागुन के बीचो-बीच जाने का विचार था, पर सुरेश की फूफी ने पण्डित से पत्री दिखवाकर, पहले ही हफ्ते में यात्रा का दिन तै कर दिया। सबको वही राय माननी पड़ी।

जाने के दो दिन पहले से ही अचला का मन हवा में तैरता-फिरने लगा। कलकत्ता से बाहर कुछ दिनों के लिये ससुराल में रहने के सिवा वह कभी बाहर नहीं गयी; पश्चिम की तो उसने कभी शक्ल ही नहीं देखी। वहाँ कितने स्मारक हैं, कितने वन-जंगल, पहाड़-पर्वत, नद-नदी, जल-प्रपात-कितना कुछ है, जिनके बारे में लोगों की जबानी सुनने के सिवा, आँखों देखने की कल्पना कभी उसके मन में भी नहीं आयी। वही सारे आश्चर्य अब वह अपनी आँखों देखने जा रही है। इसके सिवा वहाँ उसके पति को सेहत मिलेगी, वहाँ अकेली वही पति की घरनी, गृहिणी सभी कामों में हाथ बँटाने वाली रहेगी। तन्दुरुस्ती के लिये वहाँ की आबोहवा अच्छी है, जीवन-यात्रा का पथ सहज-सुगम है; ये अच्छे हो गये तो वहीं कहीं अपनी दुनिया बसाएगी, और निकट भविष्य में जो अनचाहे अतिथि एक-एक करके आकर उनकी गिरस्ती को भरी-पूरी कर देंगे, उनके कोमल मुखड़े निहायत परिचित से ही मानो उसकी निगाहों पर नाचने लगे। सुख के ऐसे जाने कितने सपने उसके दिमाग में रात-दिन चक्कर काटने लगे। पति उसे छोड़कर अकेले अब स्वर्ग जाने का भी भरोसा नहीं करते, इस बात ने तो सारी चिन्ता को मधुमय कर दिया। अब उसे किसी के लिये न तो शिकवा रहा, न शिकायत; हृदय की सारी ग्लानि धुल गयी और मन गंगाजल-सा निर्मल तथा पवित्र हो गया। उसे इस बात की बड़ी इच्छा होने लगी कि जाने के पहले एक बार मृणाल से भेंट हो जाये, उसे अपनी छाती से लगाकर, जाने-अनजाने अपने सभी अपराधों के लिये क्षमा माँग ले। आज सुरेश के लिये भी उसका मन रोने लगा। परम बन्धु होने के बाद भी जो वह आज लाज और संकोच के उन लोगों के सामने नहीं आता-उसकी बदनसीबी की इस वेदना का

उसने आज जैसा अनुभव किया, और कभी नहीं किया था। उससे भी हृदय से क्षमा माँगनी है। लेकिन खोज करने पर पता चला-वे कल से ही घर पर नहीं हैं।

जाने के दिन सुबह से ही बदली घिर आयी। बूँदा-बाँदी शुरू हो गयी। सामान बाँधे जा चुके थे, कुछ-कुछ स्टेशन भी भेज दिये गये थे, टिकट तक कटा लिया गया था। अचला के लिये भी दूसरे दर्जे का टिकट लेने की बात चली थी लेकिन उसने एतराज किया। कहा-रुपया फूँकने का ही शौक हो, तो कटाओ! मैं स्वस्थ हूँ, सबल हूँ और कितने बड़े-बड़े घर की स्त्रियाँ ड्योढ़े दर्जे के जनाना-डिब्बे में सफर करती हैं; मैं नहीं कर सकती? ड्योढ़े से ऊपर मैं हर्गिज नहीं जाऊँगी!

आखिर वैसा ही किया गया।

पूरे दो दिन सुरेश के दर्शन नहीं हुए थे। लेकिन आज दिन अच्छा न था-चाहे इसलिये या और किसी कारण से, वह अपने पढ़ने वाले कमरे में ही था। उस आनन्दविहीन कमरे में अचला ने वसन्त के एक झोंके-सा प्रवेश किया। उसकी आवाज में खुशी झलकी पड़ रही थी। बोली-इस जन्म में अब हम लोगों की आप शक्ल ही न देखेंगे क्या? ऐसा क्या अपराध किया है, कहिए तो?

सुरेश चिट्ठी लिख रहा था। नजर उठाकर उसने देखा। अपना घर जल जाने के बाद उसके आस-पास के पेड़-पौधों की जो सूरत अचला देख आयी थी, सुरेश के इस चेहरे ने उसकी ऐसी याद दिला दी-कि वह मन-ही-मन सिहर उठी। वसन्त की हवा निकल गयी-वह भूल गयी कि क्या कहने आयी थी, पास जाकर उद्‌विग्न होकर पूछा-तबीयत खराब है सुरेश बाबू? मुझसे नहीं कहा?

सुरेश ने क्षण-भर को नजर उठायी थी। तुरन्त झुकाकर बोला-नहीं, तबीयत मेरी खराब नहीं है, मैं ठीक हूँ! उसके बाद किताब के पन्ने पलटता हुआ बोला-आज ही तो जा रही हो-सब ठीक हो गया? न जाने अब कब तक भेंट न होगी!

लेकिन दो-एक मिनट तक दूसरी तरफ से कोई जवाब न पाकर, अचरज से उसने सिर उठाकर ताका। अचला की दोनों आँखें लबालब भर गयी थीं; आँख मिलते ही आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें टपाटप चू पड़ीं।

सुरेश की नसों में गरम खून खौल उठा, लेकिन आज सारी शक्ति लगाकर अपने को जब्त करके उसने सिर झुका लिया।

आँचल से आँसू पोंछकर अचला ने गाढ़े स्वर में कहा-तुम्हारी तबीयत हर्गिज अच्छी नहीं है! तुम भी हम लोगों के साथ चलो!!

सुरेश ने सिर हिलाकर कहा-नहीं।

-नहीं क्यों? तुम्हारे लिये... बात पूरी न हो सकी। बाहर से बैरे ने आवाज दी-बाबूजी, चाय-और पर्दा हटाकर वह अन्दर आया, साथ-ही-साथ मुँह फेरकर अचला बाहर चली गयी।

घण्टे-भर बाद जब वह कमरे में गयी, तो महिम ने पूछा-सुरेश दो दिनों से गया कहाँ है, जानती हो? फूफी से भी कुछ नहीं बताया है। वह आज मुझसे भेंट नहीं करेगा क्या?

अचला ने धीरे-धीरे कहा-आज तो वे घर ही में हैं। महिम ने कहा, नहीं! अभी-अभी नौकरानी कह गयी-वह सवेरे ही निकल गया है!

अचला चुप रही। थोड़ी देर पहले उससे भेंट हुई है, वह बीमार है, छुटपन की तरह इस बार भी उसने तुम्हारी जान बचाई है-केवल इसी एहसान से उसको एक बार बुलाना तुम्हारे लिये उचित है-उससे अब खतरा नहीं-शर्म से भरी हुई शंका की निगाह से देखकर उसे और मत लजाओ-उसके मन की इन बातों में से एक भी आवाज जीभ से बाहर नहीं निकली। वह पति की ओर ठीक से ताक भी न सकी। चुपचाप किसी काम में लग गयी।

धीरे-धीरे स्टेशन जाने का समय करीब आ गया। नीचे केदार बाबू की चीख-पुकार सुनाई पड़ी, और फूफी भरा घट लिये व्यस्त हो पड़ीं। नौकरों ने गाड़ी पर सारा सामान लाद दिया; लेकिन जो मकान-मालिक थे, उन्हीं का कोई पता नहीं चला। फिर भी इस पर खुलकर आलोचना करने की किसी को हिम्मत न हुई। अन्दर-अन्दर मामला कुछ ऐसा था कि उसने मानो सबको कुण्ठित कर दिया था।

अकेले में पाकर बेटी के माथे पर हाथ रखकर केदार बाबू ने स्नेह-सने स्वर में कहा-सती हो बिटिया, माँ-सी होओ! बुढ़ापे के कारण बहुत बुरा-भला कहा है-रंज मत होना। कहकर वे झटपट वहाँ से खिसक गये।

गाड़ी पर सवार होकर, अकेले में महिम ने दुःखी होकर अचला से कहा-आखिर उसने हमसे भेंट नहीं की! उससे एक बात कहने के लिये मैं दो दिनों तक उसकी प्रतीक्षा करता रहा।

पिता की बात से उस समय अचला की आँखों से आँसू बह रहे थे। उसने केवल गर्दन हिलाकर कहा-नहीं।

ओट में फूफी खड़ी थी। भक्ति से उन्हें प्रणाम करके अचला ने उनके चरणों की धूल जो ली तो गद्‌गद होकर असंख्य आशीर्वाद देती हुई वे बोल उठीं-तुम्हारा सुहाग अक्षय हो बिटिया, पति को नीरोग करके जल्द लौट आओ, ईश्वर से यही प्रार्थना है!

मेरे लिये यही सबसे बड़ा आशीर्वाद है फूफी?-आँखें पोंछती हुई वह गाड़ी पर जा बैठी। बात केदार बाबू के भी कानों में गयी। अक्षम्य लज्जा से मानो मर-से गये।

(27)

हावड़ा से गाड़ी छूटने में दसेक मिनट की देर थी। बाहर बादलों से भरा आसमान। बूँदा-बाँदी का विराम नहीं। लोगों के चलने से सारा प्लेटफार्म कीचड़ से भर गया था, लोग गठरी-मोटरी लिये, किसी तरह सम्भल-सम्भलकर जगह ढूँढ़ते फिर रहे थे। ऐसे में अचला ने देखा-हाथ में एक बड़ा-सा बैग लिये सुरेश आ रहा है। अचरज और दुश्चिन्ता से केदार बाबू का चेहरा स्याह हो उठा; उसके पास आते न आते वे चीख उठे-अरे, माजरा क्या है सुरेश? तुम कहाँ चले?

जवाब सुरेश ने अचला को दिया। उसी की ओर देखकर सूखी हँसी हँसते हुए कहा-न; मैंने देखा, तुम्हारा उपदेश, तुम्हारा आमंत्रण, किसी की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आज सवेरे आँख में उँगली गड़ाकर तुमने बता न दिया होता तो मैं समझ ही न पाता कि सेहत मेरी भी कितनी खराब हो गयी है। चलो, कुछ दिन तुम्हारा ही मेहमान होकर रहूँ, देखूँ ठीक हो सकता हूँ कि नहीं! सच कह रहा हूँ न...

ठीक तो है, ठीक तो! उसके अलावा, नई जगह में हमें काफी मदद भी मिल जायेगी-कहकर महिम ने अचला की ओर देखा। उसकी उस मौन और दुःखी निगाह ने मानो शोर करके सबको सुनाते हुए अचला से कहा-मुझसे क्यों नहीं कहा? जिसकी सेहत के लिये इतनी उत्कण्ठा रही, आज सुबह तक तुम दोनों ने जिस बात की चर्चा की-उसकी तनिक भी खबर मुझे क्यों नहीं होने दी? इस चुप-चुप की क्या जरूरत थी, अचला?

लेकिन अचला उधर को मुँह फेरे रही, और सुरेश कुछ समय तक विमूढ़-सा रहकर, अचानक अन्दर की उत्तेजना को बाहर ढकेलकर नाहक ही परेशान-सा बोल उठा-लेकिन अब समय तो है नहीं! चलो, गाड़ी पर ही बातें होंगी। चलिये केदार बाबू-कहकर केवल सामने की ओर ही नजर किये, मानो सबको ठेलता ही ले चला।

बड़ी देर तक केदार बाबू कुछ नहीं बोले। महिम को उसकी जगह पर बैठाकर अचला को उन्होंने औरतों वाले डिब्बे में चढ़ा दिया। केवल उस समय, जब गाड़ी छूटने लगी और झुककर उन्हें प्रणाम करके सुरेश महिम की बगल में जा बैठा, तो उन्होंने कहा-तुम्हीं साथ हो तो आशा है, रास्ते में कोई तकलीफ न होगी! औरतों वाला डिब्बा जरा दूर है, बीच-बीच में जरा खोज-खबर लेते रहना सुरेश! महिम से कहा-पहुँचते ही समाचार भेजना न भूलना। ख्याल रहे! मैं बेताब रहूँगा-कहकर उन्होंने आँसू रोकते हुए प्रस्थान किया। उनका वह उदास चेहरा और स्नेहगीला स्वर बड़ी देर तक दोनों मित्रों के कानों में गूँजता रहा।

गाड़ी छूटी, और सर्दी लगने के डर से महिम झट कम्बल लपेटकर लेट गया; लेकिन सुरेश वहीं उसी तरह बैठा रहा। वहाँ उसकी शक्ल की तरफ गौर करने वाला कोई नहीं था, अगर होता तो कोई भी देखकर कह सकता कि आज उन दो आँखों की निगाह हर्गिज स्वाभाविक न थी-भीतर बहुत बड़ी कोई अगलग्गी न होते रहने से, किसी की आँख से ऐसी तीखी रोशनी छिटक ही नहीं सकती। पैसेंजर गाड़ी हर स्टेशन पर रुकती-रुकती, धीमी-धीमी चाल से बढ़ने लगी; और बाहर बारिश होती रही। किसी बड़े स्टेशन पर गाड़ी रुकने को हुई, तो चादर में लिपटा मुँह बाहर निकालकर महिम ने कहा-भीड़ तो थी नहीं, थोड़ा सो क्यों नहीं लिया, सुरेश? ऐसी सुविधा तो हर वक्त नहीं मिल सकती!

सुरेश ने चौंककर कहा-हाँ, सो रहा हूँ।

उसका यह चौंकना ऐसा बेतुका और अहैतुक लगा कि महिम आश्चर्य से अवाक् हो गया। मानो वह उससे छिपाकर कोई गुनाह कर रहा था, पकड़ जाने के खौफ से डर गया है। इस आशंका को महिम देर तक मन से निकाल नहीं सका। गाड़ी रुक गयी।

अपनी स्थिति समझकर, हँसी के आभास से मुखड़े को कुछ सरस बनाकर सुरेश ने कहा-मैंने सोचा था, तुम सो रहे हो, सो चौंक उठा...

महिम ने केवल-'हूँ' कहा-बिना जरूरत की यह सफाई भी उसे अच्छी नहीं लगी।

सुरेश बोला-उन्हें किसी चीज की जरूरत है कि नहीं, पूछना...

-लेकिन पानी नहीं पड़ रहा है?

-खास नहीं! मैं झपटकर देख आता हूँ-और सुरेश दरवाजा खोलकर बाहर निकल आया। औरतों वाले डिब्बे के पास जाकर देखा-अचला को एक हमउम्र साथिन मिल गयी है। वह उसी से गप-शप कर रही है। उसी लड़की ने पहले सुरेश को देखा, और अचला को छूकर इशारा करके मुँह फेरकर बैठ गयी। अचला ने पलटकर देखा। सुरेश ने-कुछ चाहिए या नहीं यह पूछा-अचला ने सिर हिलाकर नाहीं की। कहा-तुम्हें पानी में नहीं भीगना है, चल दो! कहकर वह खिड़की के पास आ गयी। धीमे से कहा-मेरी फिक्र की जरूरत नहीं; जिनकी फिक्र है उनका जरा ख्याल रखना!

सुरेश ने कहा-उसका ख्याल है! लेकिन तुम्हें खाने को कुछ, पानी... अचला ने मुस्कराकर कहा-नहीं-नहीं, कुछ भी नहीं चाहिए! तुम भीग-भीगकर बीमार पड़ना चाहते हो क्या?

सुरेश ने एक नजर अचला को देखा और निगाह नीची कर ली। कहा, चाहता तो जमाने से हूँ, मगर अभागे के पास बीमारी भी तो फटकना नहीं चाहती! सुनकर अचला की कनपटी तक शर्म से लाल हो उठी-लेकिन नजर उठाते ही सुरेश कहीं देख न ले, इस आशंका से उसने किसी कदर इसे दिल्लगी की शक्ल देने की कोशिश करते हुए हँसकर कहा-अच्छा तुम चलो तो सही! वह काम कराऊँगी तुमसे कि...

लेकिन बात को वह पूरी नहीं कर सकी। उसकी छिपी लज्जा ने, इस बनावटी दिल्लगी के बाहरी प्रकाश को बीच में ही झिड़कते हुए रोक दिया।

गाड़ी छूटने की घण्टी बजी। कुछ कहना चाहते हुए भी सुरेश बिना कहे चला जा रहा था, कि बाधा पाकर उसने उलटकर देखा-उसकी चादर का एक छोर अचला की मुट्ठी में है। वह फुसफुसाकर गरज-सी उठी, मैंने तुम्हें साथ चलने को कहा था, यह बात तुमने सबके सामने क्यों कह दी? मुझे इस तरह से अप्रतिभ क्यों बनाया? ठीक इसी बात के लिये तब से सुरेश के अन्दर उथल-पुथल मची थी, और वह पश्चात्ताप से जल रहा था। इसलिये वह करुण स्वर में बोला-अनजानते मुझसे अपराध हो गया, अचला!

अचला जरा भी नर्म न पड़ी। वैसी ही गरम होकर कहा-अनजानते? सबके सामने मेरी हेठी कराने के लिये, जानकर ही कहा तुमने?

गाड़ी चल पड़ी। सुरेश को और कुछ कहने का मौका न मिला। अचला ने उसकी चादर छोड़ दी, और वह धड़कता दिल लिये तेजी से चला गया। वह बेशक किसी तरफ निगाह किये बिना चल पड़ा, लेकिन नजरों से उसका पीछा करते हुए, और एक जने की धड़कन थम जाने को हुई। अचला ने देखा-अपने डिब्बे में खिड़की से बाहर सिर निकालकर महिम उन्हीं लोगों को देख रहा है। अचला जब अपनी जगह पर आ बैठी, तो उस लड़की ने पूछा-यही हैं आपके बाबू?

अनमनी अचला केवल हूँ करके, सूनी आँखों बाहर खेत-खलिहान, पेड़-पौधों को देखती रही। जिस गप को अधूरा छोड़कर वह सुरेश के पास गयी थी, उसे फिर से पूरा करने की उसे इच्छा न हुई।

फिर गाँव और गाँव, शहर और शहर पार होने लगा। उसके मन की कुढ़न फिर जाती रही, तथा चेहरा निर्मल और प्रशान्त हो गया। फिर से वह अपनी हमसफर से खुशी-खुशी बात करने लगी; जिस शर्म ने घण्टाभर पहले उसे मायूस कर दिया था, वह याद भी न रही।

किसी बड़े स्टेशन पर, सुरेश खानसामा के हाथों चाय और खाने की चीजें लेकर हाजिर हुआ। अचला ने सब कुछ रखवाकर शिकायत करते हुए कहा-इन झंझटों के लिये तुमसे किसने कहा? तुम्हारे मित्ररत्न ने शायद?

अचला खूब जानती थी कि इन बातों में सुरेश किसी के कहने की अपेक्षा नहीं रखता, फिर भी अनमाँगे इस जतन के लिये इतनी-सी चिकोटी काटे बिना वह न रह सकी।

सुरेश होंठ दबाकर हँसते हुए चला जा रहा था; अचला ने आवाज दी-उसके होंठ पर हँसी का वह आभास अभी था ही। उसे देखते ही अचला सहसा फिक् करके हँस पड़ी, और लाज से लाल हो उठी। उस लाल आभा को सुरेश ने दोनों आँखों मानो जी-भरकर पी लिया।

अचला ने दरअसल पति के बारे में जानने के लिये ही सुरेश को फिर से पुकारा था कि उन्हें कोई तकलीफ या असुविधा तो नहीं है या कि कोई जरूरत तो नहीं-एक बार आ सकेंगे क्या-एक-एक कर ये ही बातें जानने की इच्छा थी; मगर अब एक भी बात पूछने की उसमें शक्ति न रही। उसने बेतुकी गम्भीरता से सिर्फ इतना पूछा-हमें इलाहाबाद में गाड़ी बदलनी होगी? कितनी रात को गाड़ी वहाँ पहुँचेगी, मालूम है आपको? पता करके कह जायेंगे मुझे!

अच्छा!-इतना कहकर सुरेश कुछ चकित-सा हो चला गया।

लौटकर अचला ने देखा-वह लड़की अपनी जगह से दूर हटकर बैठी है। जी की खीझ को सम्भाल न पाकर अचला ने पूछा-आपके यहाँ लोग चाय-डबल रोटी नहीं खाते?

वह नम्रता के साथ हँसकर बोली-भला पूछती हैं, इस बला से भी कोई घर बचा है? सभी खाते हैं!

अचला ने कहा-फिर घृणा से दूर क्यों खिसक गयीं?

उसने शर्माकर कहा-नहीं बहन, घृणा से नहीं; मर्द तो सभी खाते हैं, लेकिन मेरे ससुर यह सब पसन्द नहीं करते। और हम औरतों को...

ऐसे ही खाने-छूने के मामले में मृणाल से उसकी जुदाई हुई थी। उस दिन भी जिस कारण से अपने को रोक नहीं सकी थी, आज भी वैसी ही एक जलन से वह अपने को भूल बैठी, और रुखाई के साथ उससे बोली-मैं आपको तंग नहीं करना चाहती, आप मजे में अपनी जगह पर आकर बैठ सकती हैं-और पलक मारने-भर की देर में अचला ने चाय-रोटी खिड़की के बाहर फेंक दी। वह लड़की बड़ी देर तक काठ मारी-सी रही, उसके बाद मुँह फेरकर आँचल से आँसू पोंछने लगी। शायद उसने यही सोचा-इतनी देर के परिचय और बातचीत की जिसने कोई मर्यादा नहीं रक्खी, आँसू देखकर न जाने वह क्या कर बैठे?

थोड़ी देर के लिये बारिश थम जरूर गयी थी, मगर आसमान में बादल जमते ही चले जा रहे थे। तीसरे पहर के करीब फिर बारिश जम गयी। वह लड़की इसी पानी में उतर जायेगी-तैयार होने लगी।

अचला से और रहा न गया, वह उसके पास जा बैठी। उसकी हथेली अपनी मुट्ठी में लेकर स्निग्ध स्वर में कहा-अपने व्यवहार पर मैं बेहद शर्मिन्दा हूँ। आप मुझे माफ करें!

वह हँसी, लेकिन तुरन्त उत्तर न दे सकी। अचला ने फिर कहा-मेरा मन ठीक नहीं रहने पर मैं क्या कर बैठती हूँ, कोई ठिकाना नहीं! पति बीमार हैं, उन्हें लेकर जलवायु-परिवर्तन के लिये बाहर जा रही हूँ-अच्छे हो गये तो ठीक ही हैं; नहीं तो इस परदेश में क्या बीतेगी, भगवान् ही जानते हैं! कहते-कहते उसका गला भर आया।

उस लड़की ने आश्चर्य से कहा-मगर आपके पति को देखकर तो यह नहीं लगता कि बीमार हैं!

अचला ने कहा-मेरे पति इसी गाड़ी में हैं, आपने उन्हें नहीं देखा है। ये मेरे पति के मित्र हैं।

वह लड़की और भी हैरान होकर चुप रही।

उस समय जब उसने पूछा था-यह क्या आपके बाबू हैं, तो अनमनी अचला ने हूँ कर दिया था, यह अचला को याद न था; लेकिन वह न भूली थी। सो उसके चकित होने को अचला ने अनुभव से ग्रहण किया। सुरेश से उसकी बातचीत का ढंग उसे कैसा बुरा लगा, मन-ही-मन इसकी कल्पना करके वह लाज से मर गयी। और निहायत बेमानी और भद्दा-सा जवाब दे बैठी-हम लोग हिन्दू नहीं हैं, ब्राह्म हैं!

उसने फिर भी जब कोई जवाब नहीं दिया, तो अचला ने उसका हाथ छोड़ दिया। कहा-आप चूँकि हमारा व्यवहार ठीक-ठीक समझ नहीं सकतीं, इसलिये हमें अजीबो-गरीब न समझें!

अबकी वह लड़की हँसी। बोली-हम तो ऐसा नहीं सोचती, आप ही लोग बल्कि जिस कारण से भी हो, हमसे दूर रहना चाहते हैं! यह मैंने कैसे जाना कि हमारे दो-एक अपने लोग आपके समाज के हैं। उन्हीं से मैंने जाना! कहकर वह हँसने लगी।

अचला ने पूछा-वह कारण क्या है?

वह बोली-वह आप जरूर जानती होंगी। नहीं जानती हों, तो समाज के किसी से पूछ देखें। इसके बाद हँसकर इस प्रसंग को दबाते हुए बोली-अच्छा, अपने पति को लेकर इतनी दूर न जाकर हमारे यहाँ क्यों नहीं चलतीं?

-कहाँ, आरा?

राम कहिए! वहाँ भी आदमी रहता है? मेरे पति ठेकेदारी करते हैं इसलिये मुझे कभी-कभी वहाँ जाकर रहना पड़ता है। मैं डिहरी की बात कह रही हूँ। सोन नदी के किनारे अपना छोटा-सा घर है। वहाँ दो दिन रहने से आपके पति चंगे हो जायेंगे। चलेंगी?-अचला के दोनों हाथ अपनी गोदी में लेकर वह उसकी ओर ताकने लगी।

इस अपरिचित स्त्री की उत्सुकता और हार्दिक आग्रह देखकर अचला मुग्ध हो गयी। बोली-लेकिन इसके लिये आपके पति की अनुमति होनी चाहिए। उनके कहे बिना कैसे जा सकती हूँ?

उसने सिर हिलाकर कहा-ऐसा भी क्या! हम सेवा करने की लिये दासी हैं, इससे क्या सब बात में दासी? ऐसा सोचें भी मत; हुक्म देने में तो हम ही मालिक हैं! वह जगह आपको पसन्द न आये, तो आप सीधे डिहरी चली आयें-बिल्कुल न सोचें, मैं कह रही हूँ! अनुमति लेनी हो तो मैं लूँगी, आपको क्या गर्ज पड़ी है? यह कहकर उस सुहागिन लड़की ने अपनी खुशी की अधिकता से मानो अचला को आच्छन्न कर दिया।

गाड़ी की धीमी चाल से समझ में आया कि आरा स्टेशन करीब आ रहा है। उसने फिर अचला के दोनों साथ अपनी गोद में लेकर कहा-मेरा स्टेशन आ रहा है, मैं अब उतरूँगी। लेकिन आप सोच-सोचकर जी न खराब करें, कहे जाती हूँ! कोई डर नहीं, आपके पति अच्छे हो जायेंगे!! परन्तु वचन दीजिए, लौटती बेर एक बार मेरे घर में पैरों की धूल देंगी?

अचला ने आँसू रोकते हुए कहा-वह सुअवसर मिला, तो आपसे जरूर मिलती जाऊँगी!

उसने कहा-क्यों नहीं, सुअवसर जरूर मिलेगा! आपको मैंने पहचान लिया।

मैं कहे जाती हूँ, आपकी ऐसी भक्ति और प्यार की ईश्वर कभी उपेक्षा नहीं कर सकते; ऐसा हो ही नहीं सकता!

अचला जवाब न दे सकी। मुँह फेरकर उसने उमडे आँसू को रोका।

बारिश में गाड़ी प्लेटफार्म पर लगी। उसका देवर वहीं खड़ा था। उसने आकर दरवाजा खोल दिया। उसके कान के पास मुँह ले जाकर अचला ने चुपचाप कहा-अपने पति का नाम तो नहीं लेंगी आप, जानती हूँ; मगर अपना नाम तो बताइये! अगर कभी आऊँ, तो आपको ढूँढूँगी कैसे?

उसने जरा हँसकर कहा-मेरा नाम राक्षसी है! डिहरी में जिस बंगाली लड़की से भी पूछेंगी, मेरा ठिकाना बता देगी!! मगर दोनों जने एक बार आइए, मेरे सिर की कसम, मैं राह देखती रहूँगी!!! सोन के किनारे पर ही मेरा घर है। इसके बाद उसने दोनों हाथ जोड़कर अचला को नमस्कार किया, और भीगती हुई चली गयी।

भाप की गाड़ी फिर धीरे-धीरे चल पड़ी। अभी-अभी साँझ हुई थी, किन्तु वर्षा के साथ हवा के झोंकों ने दुर्योग की इस रात को और भी भयंकर कर दिया था। खिड़की के काँच के बाहर देखते-देखते उसकी आँखें खुल गयीं-उसे यही लगने लगा कि इस हाथ को हाथ न सूझने देने वाले अँधेरे ने उसके आदि-अन्त को लील लिया है। जोत का, आनन्द का मुखड़ा अब

कभी नहीं देख सकेगी-जीवन में अब इससे छुटकारा नहीं। साथीहीन सूने कमरे के एक कोने में जाकर, चादर लपेटकर आँखें बन्द किये वह लेट गयी। अब उसकी दोनों आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। यह आँसू आखिर क्यों, उसका यह दुःख ही आखिर क्या है-यह भी नहीं सोच सकी वह, परन्तु रुलाई भी किसी तरह नहीं रोक सकी-अबाध लहरों-सी वह उसके कलेजे को चूर-चूर करती हुई गरजती फिरने लगी। पिता की याद आयी, छुटपन की सहेलियों की याद आयी, फूफी की भी याद आयी, मृणाल की याद आयी, अभी-अभी जो लड़की राक्षसी के नाम से अपना परिचय दे गयी, उसकी याद आयी-यहाँ तक कि नौकर जद्दू भी मानो उसकी नजर में आने-जाने लगा। उनके मन में ऐसी ही पीड़ा होने लगी, मानो वह जिन्दगीभर के लिये सबसे विदाई लेकर, निरुद्देश्य यात्रा में निकली हो।

लगातार यों रोते-रोते, अगले स्टेशन तक में उसका वेदना-विकल हृदय कुछ शान्त हो आया। वह उठकर आकुल-सी देखने लगी, कि शायद कोई स्त्री मुसाफिर इस आफत की रात में उसके डिब्बे में आ जाये। भीगते-भीगते कोई-कोई उतरे, कोई-कोई सवार भी हुए; पर उसके डिब्बे के पास कोई भी नहीं फटकी।

गाड़ी छूट जाने के बाद एक लम्बी उसाँस भरकर वह अपनी जगह पर लौट आयी, और सिर से पाँव तक चादर लपेट कर पड़ रहते ही, अबकी किसी अचिन्तनीय कारण से, उसका भूखा हृदय सहसा सुख की कल्पना से भर उठा-लेकिन यह कोई नई बात न थी; जिस दिन जलवायु-परिवर्तन का प्रस्ताव हुआ था, उस दिन भी उसने ऐसा ही स्वप्न देखा था। आज भी वह उसी प्रकार अपने बीमार पति को याद करके, उनके स्वास्थ्य और दीर्घायु की कामना करके एक अजानी जगह में आनन्द और सुख-शान्ति का जाल बुनते-बुनते विभोर हो गयी।

वह कब सो गयी थी और कितनी देर सोई, पता नहीं। एकाएक अपना नाम सुनकर चौंक कर उठ बैठी। देखा-दरवाजे के पास सुरेश खड़ा है, और खुले दरवाजे से हवा के झोंके के साथ पानी ने आकर, अन्दर प्लावन-सा कर रक्खा है।

सुरेश ने चिल्लाकर कहा-जल्द उतरो; गाड़ी प्लेटफार्म पर खड़ी है। तुम्हारा बैग कहाँ है?

अचला की आँखें तब भी निंदाई थीं; लेकिन उसे याद आया-जबलपुर के लिये इलाहाबाद में गाड़ी बदलनी है। अपना बैग उसे दिखाती हुई वह हड़बड़ा कर उतर पड़ी। बोली-इस पानी में उन्हें कैसे उतारिएगा? यहाँ पालकी-वालकी कुछ नहीं मिलती? ऐसे तो बीमारी बढ़ जायेगी, सुरेश बाबू!

सुरेश ने क्या जवाब दिया, बारिश में समझ में नहीं आया। एक हाथ से बैग और दूसरे से अचला का हाथ कसकर पकड़े हुए वह उधर वाले प्लेटफार्म की ओर लपका। वह गाड़ी खुलने-खुलने को थी। पहले दर्जे के एक सूने डिब्बे में अचला को ढकेलते हुए बोला-तुम स्थिर होकर बैठो, मैं उसे ले आऊँ।

तो मेरी यह मोटी चादर लेते जाइए, उन्हें अच्छी तरह से ओढ़ा कर लाइए!-अचला ने अपनी चादर सुरेश के बदन पर फेंक दी। वह तेजी से चला गया।

जहाँ तक नजर जा सकी, अचला सामने देखती रही। दूर-दूर खम्भों पर स्टेशन की रोशनी जल रही थी, पर इस घोर बारिश में रोशनी इतनी नाकाफी-सी थी कि लगभग कुछ भी

नजर नहीं आ रहा था। मुसाफिर पानी में दौड़ रहे हैं, सिर पर बोझा लिये कुली आ-जा रहे हैं, रेल कर्मचारी परेशान-से-यह सब बस धुँधली छाया-सा दीख रहा था। धीरे-धीरे वह भी न दीखने लगा, स्टेशन की घण्टी जोरों से बज उठी, और जिस गाड़ी से अचला अभी-अभी उतरकर आयी थी, खौफनाक अजगर की नाइ फोंस्-फोंस् की आवाज से आकाश-पाताल कँपाती हुई वह प्लेटफार्म से बाहर निकल गयी-अँधेरे के सिवा सामने और कोई ओट न रही।

फिर घण्टी बजी-अचला ने समझा कि यह घण्टी इस गाड़ी के छूटने की है-लेकिन वे लोग चढ़ गये कि नहीं, कहाँ चढ़ गये, सामान सब लदा या नहीं-कुछ भी न जान पाकर अचला चिन्तित हो गयी।

कम्बल ओढ़े, हाथ में नीली लालटेन लिये एक प्यादा तेजी से जा रहा था। उसे सामने से गुजरते देख अचला ने पुकारकर कहा-सारे मुसाफिर चढ़ गये या नहीं? पहले दर्जे का डिब्बा देखकर वह ठिठक गया। बोला-जी मेम साहब!

अचला कुछ निश्चिन्त-सी हुई। समय पूछा, उसने बताया-नौ बज के...

नौ बज के? अचला चौंक उठी-लेकिन इलाहाबाद पहुँचने में तो रात लगभग बीत जाती। अकुलाकर पूछा-इलाहाबाद...

लेकिन वह आदमी और खड़ा नहीं रह पा रहा था। ऊपर शेड नहीं था, फिर गाड़ी की छत से छींटे उड़कर उसके नाक-मुँह में सुई-से चुभ रहे थे। हाथ की रोशनी को तेजी से हिलाते हुए मुगलसराय-मुगलसराय!-कहता हुआ वह चला गया।

सीटी बजाकर गाड़ी खुल गयी। इतने में उसके सामने से दौड़ते हुए सुरेश कहता गया-डरो मत, मैं बगल के ही कमरे में हूँ!

(28)

सुरेश बगल के डिब्बे में चढ़ गया, ठीक है; मगर वे? तब से वह बाहर ही तो आँखें बिछाए है-जितना धुँधला चाहे हो, उनकी शक्ल क्या बिल्कुल नजर ही नहीं आती? फिर इलाहाबाद के बजाय जाने किस नये स्टेशन में आखिर गाड़ी क्यों बदली गयी? पानी के छींटे से उसके बाल, उसका ब्लाउज भीगने लगा, फिर भी खिड़की से मुँह बाहर किये कभी सामने, कभी पीछे, अँधेरे में वह क्या देख रही थी, वही जाने। लेकिन उसका मन किसी भी प्रकार से यह मानने को राजी न हुआ, कि इस गाड़ी में उसके पति नहीं हैं-वह सुरेश के साथ निरी अकेली, किसी दिशाहीन उद्देश्यहीन यात्रा में जा रही है। ऐसा नहीं हो सकता! कहीं-न-कहीं वे इसी गाड़ी में जरूर हैं!

सुरेश आदमी चाहे जैसा हो, जो भी करे; मगर एक बेकसूर स्त्री को उसके समाज, धर्म, नारी के सारे गौरव से हटाकर अनिवार्य मृत्यु में ढकेल देगा-ऐसा पागल वह नहीं है। खासकर के इससे उसे लाभ क्या है? अचला के जिस शरीर के प्रति उसे इतना मोह है, उसे एक वेश्या के शरीर में बदलने को वह जीवित नहीं रह सकती-यह सीधी-सी बात अगर उसने नहीं समझी, तो प्रेम शब्द को जबान पर लाया ही क्यों था? नहीं-नहीं ऐसा हर्गिज नहीं हो सकता! वे कहीं इंजन के आस-पास ही सवार हो गये, वह देख न पाई शायद।

अचानक एक झोंका आ-लगते ही सिमटकर वह एक कोने में चली गयी, और अपने को देखा-सारे बदन का कपड़ा कहीं भी जरा-सा सूखा नहीं रह गया था। बारिश में वह इस कदर भीग गयी थी कि आँचल से लेकर ब्लाउज की आस्तीन तक से टपाटप पानी चू रहा था। बिना जाने वह जो झेलती रही, जानकर उससे अब वह न झेला गया; कपड़े बदलने की गरज से उसने अपने बैग को अपनी ओर खींचकर खोलना चाहा कि इतने में गाड़ी की चाल धीमी पड़ गयी। जरा ही देर में गाड़ी स्टेशन पर जाकर रुकी। पानी जोरों से पड़ ही रहा था, यह जानने की कोई तरकीब न थी कि कौन-सा स्टेशन है; फिर भी बैग खुला ही पड़ा रहा, अन्दर के अदम्य आवेग से नीचे उतरकर, अँधेरे में अन्दाज से झपटकर वह सुरेश वाले डिब्बे की खिड़की के सामने जा खड़ी हुई।

जोर से आवाज दी-सुरेश बाबू!

उस डिब्बे में दो-एक बंगाली और एक अँग्रेज सज्जन थे। सुरेश एक कोने में सिमटकर आँखें बन्द किये बैठा था। अचला को आशंका थी-उसके गले से शायद आवाज न निकले; इसीलिये कोशिश से निकाली गयी चीख ने, ठीक मानो घायल जानवर के ऊँचे चीत्कार की तरह न केवल सुरेश को, बल्कि वहाँ मौजूद सबको चौंका दिया। हक्के-बक्के सुरेश ने आँख खोलकर देखा-दरवाजे पर खड़ी अचला के चेहरे पर पानी की धारा और आलोक-किरण ने एक साथ ही पड़कर रूप के एक ऐसे इन्द्रजाल की रचना की थी कि सबकी मुग्ध दृष्टि विस्मय से एकबारगी अवाक् थी! सुरेश दौड़कर उसके समीप पहुँचा, कि उसने पूछा-उन्हें नहीं देख रही हूँ-कहाँ हैं वे? कौन-से डिब्बे में चढ़ाया उन्हें?

-चलो, ले चलूँ तुम्हें-कहकर सुरेश बारिश में ही उतर पड़ा, और अचला का हाथ पकड़कर उसी तरफ खींचता ले चला, जिधर से वह आयी थी।

दोनों बंगाली एक-दूसरे को देखकर जरा मुस्कराये। अँग्रेज बेचारा कुछ न समझ सका; लेकिन एक स्त्री की करुण पुकार उसके जी को छू गयी थी-जमीन पर गिरे कम्बल को अपने पाँव पर खींचकर उसने एक लम्बी साँस ली, और चुपचाप अँधेरे में बाहर देखता रहा।

अचला के डिब्बे के पास जाकर सुरेश ठिठक गया, अन्दर देखकर घबराते हुए पूछा-तुम्हारा बैग खुला कैसे है? उसने अचला के जवाब का इन्तजार नहीं किया-जोर से खींचकर अचला को अन्दर ले जाकर दरवाजा बन्द कर दिया।

उँगली से दिखाते हुए पूछा-इसे खोला किसने?

अचला ने कहा-मैंने! मगर छोड़ो उसे; वे कहाँ हैं-मुझे दिखा दो, या सिर्फ बता दो किधर हैं, मैं खुद ढूँढ़ लूँगी। कहते-कहते उसने दरवाजे की तरह कदम बढ़ाया। सुरेश ने झट से उसका हाथ थाम लिया। कहा-इतनी घबरा क्यों रही हो, देखती नहीं, गाड़ी खुल गयी?

बाहर अँधेरे की ओर देखकर ही अचला समझ गयी कि बात ठीक ही है। गाड़ी चलने लगी थी। उसकी दोनों आँखों में निराशा मानो साकार दिखाई दी। उसने मुड़कर सिर्फ पल-भर के लिये सुरेश के पीले और श्रीहीन चेहरे को देखा, और कटे पेड़ की नाईं गिरकर, दोनों हाथों से

सुरेश के पैर को जकड़ती हुई रो पड़ी-कहाँ हैं वे? उन्हें क्या आपने सोते में गाड़ी से ढकेल दिया? बीमार आदमी का खून करके तुम्हें...

ऐसी खौफनाक तोहमत का तब भी लेकिन अन्त न हो सका। एकाएक उसका हृदय-विदारक रोना-चौचीर हो फैलाकर सुरेश को एकबारगी पत्थर बनाता हुआ चारों तरफ फैला, और वैसी ही खौफनाक रात के अन्दर जाकर खो गया; और वहीं, उसी गद्दी वाली बेंच पर टिककर सुरेश असहय आश्चर्य से काठ मारा-सा बैठा रहा। उसके पैरों के नीचे क्या हो रहा था, बड़ी देर तक मानो वह कुछ समझ ही न पाया। बड़ी देर के बाद अपना पाँव खींचकर वह बोला-मैं ऐसा काम कर सकता हूँ, तुमको यकीन आता है?

अचला उसी तरह रोते-रोते बोली-तुम सब कुछ कर सकते हो! हमारे घर में आग लगाकर तुमने उन्हें जलाकर मार डालना चाहा था। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, बताओ-कहाँ पर क्या किया है तुमने? कहकर वह फिर उसका पैर पकड़ कर उसी पर सिर कूटने लगी। लेकिन जिसके पैर थे, वह एकबारगी अचेतन-सा टुकुर-टुकुर ताकता रहा।

बाहर पगली रात वैसी ही दमकती रही, बिजली बार-बार अँधेरे को वैसे ही चीर देने लगी, बरसाती झोंके उसी तरह सारी दुनिया को तोड़ते-मरोड़ते रहे; मगर इन अभिशप्त नर-नारियों के अन्धे हृदय में जो प्रलय उमड़-घुमड़ रहा था, उसके मुकाबले यह सब तुच्छ था, कुछ भी नहीं!

एकाएक अचला तीर की गति से उठ खड़ी हुई, तब सुरेश का सपना टूट गया। उसने अनुभव किया-अगला स्टेशन करीब आ गया है, इसीलिये गाड़ी की चाल धीमी हो गयी है! उसे समझते देर न लगी कि अचला आखिर इस तरह खड़ी क्यों हो गयी! बड़ी कोशिश से

अपने को सम्हाल कर, दायें हाथ से उसे रोकते हुए सुरेश ने कहा-बैठो! महिम इस गाड़ी में नहीं है।

नहीं हैं? तो हैं कहाँ? कहते-कहते वह धप्प से सामने की बेंच पर बैठ गयी।

सुरेश ने गौर किया-उसके चेहरे पर से लहू की आखिरी निशानी तक गायब हो गयी। शायद अब तक के इतने रोने-धोने, इतने सिर पीटने के बावजूद उसके हृदय में, सारी विरोधी दलीलों के बाद भी एक अव्यक्त आश छिपी थी-हो सकता है ये सारी आशंकाएँ निर्मूल हों; हो सकता है, भयंकर दुःस्वप्न की असह वेदना-नींद टूटते ही, एक लम्बी साँस के साथ ही खत्म हो जाये। ऐसी एक अकथनीय धारणा ने उस समय तक भी उसके हृदय को उजाड़ नहीं दिया था। क्योंकि अभी-अभी तो संसार में उसकी कामनाओं का सर्बस मौजूद था, और एक रात भी न बीती-उसका कुछ नहीं रहा, कुछ भी नहीं? पलक-मारते जिन्दगी बदनसीबी की आखिरी हद को पार कर गयी। परिणामहीन इतनी बड़ी विपत्ति में शायद अपने जीवित रहने पर ही उसे विश्वास नहीं हो रहा था। दोनों बुत-से बैठे रहे। गाड़ी एक अजाने स्टेशन पर आकर लगी, और खुल गयी।

सुरेश ने एक बार क्या तो कहना चाहा, फिर चुप ही रहा; फिर उठ खड़ा हुआ। खिड़की का काँच उठाकर एक-दो बार उसने चहल-कदमी की और फिर अचला के सामने जाकर खड़ा हुआ। बोला-महिम सकुशल है। अब वह इलाहाबाद पहुँचा होगा। जरा रुककर फिर बोला-वहाँ से वह जबलपुर भी जा सकता है। कलकत्ता भी वापस हो सकता है।

अचला ने सिर उठाकर पूछा-और हम कहाँ जा रहे हैं?

उस आँसू-मलिन मुँह पर दुःख और निराशा की चरम प्रतिमूर्ति फिर एक बार सुरेश को दिखाई दे गयी। उससे कितनी बड़ी भूल हो गयी-यह उसे मालूम न था। और इसके लिये आज वह अपनी हत्या भी कर सकता था। लेकिन जिसकी छलना ने उसकी सत्य-दृष्टि को इस तरह से ठगकर इस भूल में ही बार-बार उँगली का इशारा किया है, उस छलनामयी के लिये भी उसका हृदय विषाक्त हो उठा। इसीलिये अचला के प्रश्न का उसने बड़ी रुखाई से जवाब दिया-हम शायद सदेह नरक में ही जा रहे हैं! जिस पतन के रास्ते पर राह दिखाते हुए इतनी दूर खींच लाई हो, उसके बीच में ही, चाहने से रुकने की जगह तो मिल नहीं सकती! अब तो अन्त तक चलना ही पड़ेगा!!

जवाब सुनकर अचला एड़ी से चोटी तक एक बार काँप उठी, उसके बाद सिर झुकाकर वह चुप ही रही। जो झूठा-मक्कार पराई स्त्री को गलत रास्ते ले जाकर भी बेझिझक ऐसी बात जबान पर ला सकता है, उससे कोई क्या कहे!

सुरेश फिर पायचारी करने लगा। उस पाषाण-प्रतिमा के सामने बोलने की शक्ति शायद उसे नहीं थी। कहने लगा-तुम तो कुछ ऐसा जता रही हो, जैसे सर्वनाश अकेले तुम्हारा ही हुआ! लेकिन सर्वनाश का जो मतलब है, वह मेरे हक में किस हद से गुजरा, पता है? मैं तुम लोगों की तरह ब्रह्मज्ञानी नहीं हूँ। मैं नास्तिक हूँ! मैं पाप-पुण्य का स्वाँग नहीं किया करता, वास्तविक सर्वनाश की ही सोचता हूँ!! तुम्हारे पास रूप है, आँसू हैं; एक औरत के जो हथियार हैं, तुम्हारे तरकस में सभी हैं-तुम्हें किसी भी रास्ते में रुकावट नहीं आयेगी। लेकिन मेरा अंजाम सोच सकती हो? मैं मर्द हूँ, लिहाजा जेल से बचने के लिये मुझे अपने हाथों यहाँ गोली खानी पड़ेगी! कहकर सुरेश ने खड़े होकर छाती के बीच में हाथ रखकर दिखाया।

जाने क्या कहने को मुँह उठाकर भी अचला ने मुँह फेर लिया। लेकिन उसकी आँखों से घृणा छलकी पड़ती थी। यह देख सुरेश आग-बबूला हो बोल उठा-मोर का पखना लगाकर कौआ कभी मोर नहीं होता, अचला! इस निगाह को मैं पहचानता हूँ। मगर वह तुम्हें नहीं सोहती। जिसे सोह सकती है वह मृणाल है, तुम नहीं! तुम असूर्यपश्या हिन्दू-नारी नहीं, इतने से तुम्हारी जात नहीं जायेगी। उतर कर तुम जी चाहे जहाँ चली जाओ। मैं चिट्ठी लिखे देता हूँ, महिम को दिखाना वह तुम्हें अपना लेगा! खाने के लोभ में जंगली जानवर जैसे फन्दे में घिरकर, गुस्से में जो जी में आता है, उसी को करता रहता है-ठीक वैसे ही सुरेश अचला की चित्थी-चित्थी उड़ा देना चाहने लगा। बीच ही में सहसा थमकर बोला-आखिर यह ऐसा कौन-सा अपराध है? तुमने तो पति के घर में ही, उनके मुँह पर कहा था-तुम किसी और को प्यार करती हो-याद हैं? जिस आदमी ने घर फूँक कर तुम्हारे पति को जला डालना चाहा था-ऐसा तुम्हारा विश्वास है, उसी के साथ चल देना चाहा था-चली भी आयी थीं-याद आता है? उसी के घर, उसी के आश्रय में रहकर, छिप कर रोते हुए उसे साथ आने का आग्रह किया था-ख्याल आता है? यह क्या उससे भी बड़ा गुनाह है? रोज-रोज की और भी जाने कितनी हरकतें! जभी मुझे यह हिम्मत पड़ी। असल में तुम एक गणिका हो, इसलिये तुम्हें भगा लाया। इससे ज्यादा की तुमसे उम्मीद नहीं की। मैं तुमसे बार-बार कहता हूँ, तुम सती-सावित्री नहीं हो! वह तेज, वह गरूर तुम्हें शोभा नहीं देता, नहीं फबता-यह निहायत अनधिकार चर्चा है तुम्हारे लिये!! कहकर सुरेश रुँधी साँस की वजह से ज्योंही थमा, अचला सिर उठाकर टूटे स्वर में चीख उठी-रुकें नहीं आप, रुकें नहीं सुरेश बाबू, और कहिए! दोनों पैरों से मुझे रौंदकर, संसार में जितनी भी कड़वी बात है, घिनौना व्यंग्य है, जितना भी अपमान है-सब कीजिए-वह जमीन पर औंधी पड़ गयी और रुँधी रुलाई की फटी आवाज में बोली-यही चाहती हूँ मैं, इसी की मुझे जरूरत है! हमारा यही वास्तविक सम्बन्ध है। संसार से, ईश्वर से, आपसे केवल यही मेरी भावना है!!

सुरेश गाड़ी की दीवार से टिककर काठ-सा खड़ा रहा। अचला के खुले-बिखरे बाल जमीन पर लोटने लगे, उसके भीगे कपड़े धूल में सनकर लथपथ हो गये। लेकिन सुरेश उधर कदम नहीं बढ़ा सका। नया शिकारी पहले निशाने में गिरी हुई चिड़िया की मृत्यु-यंत्रणा को जैसे

अवाक् होकर देखता है, वैसे ही दो मुग्ध-अपलक आँखों की निगाह से वह मानो किसी मरणासन्न स्त्री की अन्तिम घड़ी की गवाही के लिये खड़ा हो।

गाड़ी की गति फिर धीमी हुई, और धीमी होते-होते स्टेशन पर आकर रुकी। सुरेश ने सीधा खड़े होकर सहज-शान्त स्वर में कहा-तुम्हें इस हालत में देखकर लोग चकित रह जायेंगे। तुम उठकर बैठो, मैं अपने डिब्बे में जाता हूँ! सुबह होने पर तुम जहाँ उतरना चाहोगी, जहाँ जाना चाहोगी-मैं तुम्हें भेजवा दूँगा। इस बीच में कुछ खौफनाक, कुछ कर बैठने की कोशिश मत करना। उसका कोई नतीजा न होगा! सुरेश दरवाजा खोलकर नीचे उतर गया। सावधानी से दरवाजे को बन्द करके, जाने क्या सोचकर जरा देर चुपचाप खड़ा रहा। उसके बाद मुँह बढ़ाकर बोला-मेरी बात तुम समझोगी नहीं। लेकिन इतना सुन लो-इस मसले का हल मेरे जिम्मे रहा! तुम्हारी कोई बुराई मैं न होने दूँगा। यह कर्ज मैं पाई-पाई चुकाकर जाऊँगा-कहकर वह धीरे-धीरे अपने डिब्बे की ओर चला गया।

गाड़ी की खिंची और लगातार आवाज के बन्द होने के साथ-साथ हर बार ही सुरेश का स्वप्न टूट जाता था, लेकिन पलकों का भार ठेलकर देखने की शक्ति मानो उसमें न रह गयी थी। भीगे कपड़ों में बेहद सर्दी लग रही थी। वास्तव में वह बीमार पड़ सकती है, और मौजूदा हालत में यह बात कितनी खतरनाक है-अन्दर-ही-अन्दर इस महसूस भी कर रही थी; लेकिन बैग को खोलकर कपड़े बदलने की कोशिश, एक असम्भव इच्छा-सी ही उसके मन में बेबस पड़ी थी। ठीक ऐसे ही समय एक सुपरिचित कण्ठ का स्वर उसके कानों पड़ा-कुली! कुली! अधजगी-सी आँखें खोलकर उसने देखा-गाड़ी किसी स्टेशन पर खड़ी है, और जाने कब अँधेरा मिटकर, बारिश थमे धुमैले मेघों से छनकर, एक तरह की मटमैली रोशनी में सब झलक उठा है। उसने देखा-बहुत-से लोग उतर रहे हैं, बहुतेरे चढ़ रहे हैं, और उन्हीं में खड़ी शोक-मग्न एक नारी-मूर्ति किसी के इन्तजार में खड़ी है! यह अचला थी। चमड़े का एक बहुत बड़ा बैग माथे पर लिये एक कुली से उतरते ही उसने कुछ पूछा, और धीरे-धीरे गेट की तरफ बढ़ी।

अब तक सुरेश बेबस-सा सिर्फ देख ही रहा था। शायद उसका यह आँखों का देखना, अन्दर दाखिल होने की राह नहीं पा रहा था; पर जैसे ही गाड़ी खुलने की सीटी प्लेटफार्म के किसी छोर से गूँज उठी, कि जैसे बिजली छू गयी हो, उसके भीतर-बाहर की जड़ता जाती रही। तुरन्त उसने अपना बैग खींच लिया और उतर पड़ा।

टिकट की बात अचला को याद ही नहीं थी। गेट पर टिकट-बाबू के सामने जाते ही अचला ठिठक गयी, कि इतने में पीछे से सुरेश ने स्निग्ध स्वर में कहा-रुको मत, बढ़ो! मैं टिकट दे रहा हूँ।

अचला को उसके आने की खबर न थी। पल-भर के लिये भय और झिझक से उसके पाँव नहीं उठे; मगर यह हिचक औरों के देख सकने के पहले ही वह धीरे-धीरे बाहर हो गयी।

बाहर जाकर दोनों की बातें हुईं-

सुरेश ने कहा-मैंने सोचा था, तुम सीधे कलकत्ते ही लौट जाना चाहोगी; लेकिन यक-बयक डिहरी में क्यों उतर पड़ीं? यहाँ जाना-पहचाना कोई है क्या?

अचला दूसरी तरफ नजर किये थी। उसी तरफ नजर किये बोली-कलकत्ते में किसके पास जाऊँगी?

-लेकिन यहाँ?

अचला चुप रही। सुरेश खुद भी कुछ देर तक चुप रहकर बोला-शायद मेरी किसी बात का अब तुम एतबार न कर सकोगी, उसके लिये मुझे कोई शिकायत भी नहीं, अन्तिम समय में मैं केवल भीख चाहता हूँ!

अचला वैसी ही चुप खड़ी रही।

सुरेश ने कहा-मेरी बात किसी को समझाने की भी नहीं, और मैं समझाना भी नहीं चाहता! मेरी चीज मेरे ही साथ जाये! जहाँ जाने से यहाँ की आग जला नहीं सकेगी, मैं आज उसी देश की राह ले रहा हूँ; पर मेरा आखिरी सहारा मुझे दो-मैं हाथ जोड़कर विनती करता हूँ!

तो भी अचला के मुँह से एक भी शब्द न निकला; सुरेश कहने लगा-मैंने तुम्हें बहुत कड़वी बातें कही हैं, बहुत दुःख दिया है; लेकिन बाद में अच्छे रहने के घमण्ड में, ऊपर बैठकर तुम्हारे माथे कलंक की कालिमा पोतूँ-यह मैं मरकर भी बर्दाश्त नहीं कर सकूँगा! मेरे लिये तुम्हें तकलीफ न उठानी पड़े, विदा होने के पहले मुझे इस सुयोग की भीख देती जाओ, अचला!

उसकी आवाज में क्या था, अन्तर्यामी ही जानें। गरम आँसू में अचानक अचला की दोनों आँखें डूब गयीं। फिर भी जी-जान से अपने कण्ठ को सम्हाल कर उसने धीरे-धीरे पूछा-मुझे क्या करना होगा, कहिए?

सुरेश ने जेब से टाइम-टेबल निकालकर, गाड़ी का समय देखकर कहा-तुम्हें कुछ नहीं करना होगा! साँझ से पहले अब किसी भी तरफ जाने की कोई गुंजाइश नहीं, इसलिये इतनी देर के लिये मुझ पर अविश्वास न करो-बस इतना ही चाहता हूँ! मुझसे अब तुम्हारा कोई अमंगल न होगा, तुम्हारा ही नाम लेकर मैं कसम खाता हूँ!!

लोगों की कौतूहल-भरी दृष्टि से बचने के लिये, स्टेशन के छोटे-से वेटिंग-रूम में जाकर रुकने की इच्छा उन दोनों में से किसी की न हुई। पूछताछ करने पर पता चला-बड़ी सड़क पर सम्राट शेरशाह के नाम पर कायम सराय की बुनियाद आज भी बिल्कुल मिट नहीं गयी है। शहर के छोर पर की उसी सराय में जाने के लिये उन्होंने किराये की एक बैलगाड़ी तय की।

रास्ते में से किसी ने किसी से बात नहीं की, किसी ने किसी का मुँह नहीं देखा। सिर्फ उस समय, जब बैलगाड़ी सराय में जाकर रुकी-तो एक झलक सुरेश की शक्ल देखकर अचला न केवल हैरान हुई, बल्कि बेचैन-सी हुई। उसकी दोनों आँखें बेहिसाब लाल थीं, और चेहरे पर मानो किसी ने स्याही पोत दी हो! संसार के बड़े-से-बडे अन्धड़-तूफान में उसे देखा था उसने किन्तु उसकी यह शक्ल कभी देखी हो-ऐसा याद नहीं आया।

गाड़ीवान को किराया चुकाकर सुरेश ने मनीबैग को वहीं रख दिया। कहा-तब तक यह तुम्हारे ही पास रहा, जरूरत हो तो लेने में संकोच मत करना!

अचला के जी में आया, पूछे कि इसका मतलब क्या? मगर न पूछ सकी। सुरेश ने कहा-यह सामने वाला ही कमरा कुछ अच्छा है, शायद; तुम जरा सुस्ताओ, बगल के कमरे में इन कपड़ों को जरा बदल डालूँ। पता नहीं, इन्हीं सबके चलते ऐसा भद्दा लग रहा है-कहकर अचला की सुविधा-असुविधा का कोई ख्याल न करते हुए ही वह अपना बैग उठाकर, नशेबाज जैसा डगमगाता हुआ, बरामदे को पार करके कोने वाले कमरे में चला गया।

उसके चले जाने के बाद अचला अकेली-रास्ते पर खड़ी न रह सकी। सो अपने वजनी बक्से को किसी तरह ठेल-ठूलकर कमरे में ले आयी, और उसी पर ठक्-से बैठी, राह से आने-जाने वालों को देखने लगी।

(29)

उसी कमरे के सामने बक्स पर बैठे-बैठे-आशा और भरोसा का स्वप्न देखते हुए कैसे अचला के दो घण्टे निकल गये, वह सोच न सकी। थोड़ी ही देर हुई कि सूर्योदय हुआ। सर्दियों के धूल-भरे पेड़-पौधों, कल की बारिश से धुल-निखर कर सुबह के सूरज की किरणों से झलमला रहे थे। भीगे कोमल पथ पर थकावट-मिटे राही हँसते हुए चलने लगे थे, इक्के-दुक्के इक्के भी छोटी घण्टियों की आवाज गुँजाते दौड़ रहे थे। बीच-बीच में चरवाहे बालक गाय-भैंस के झुण्ड लिये-उनसे अजीबो-गरीब रिश्ता कायम करते हुए जाने किस गाँव की ओर चल पड़े थे। पास ही के किसी एक झोंपड़े से किसी गृहस्थ वधू के गाने के साथ जँतसार की अथक-अजानी लय तिरती आ रही थी। कुल मिलाकर नये दिन का यह कर्म-स्रोत उसकी चेतना में गतिशील हो रहा था; उसी के अनोखे प्रवाह में उसका दुःख, उसका दुर्भाग्य, उसकी चिन्ता कुछ देर के लिये कहीं बह गयी थी मानो। उसे याद ही न थी कि वह ठीक किसलिये-क्यों यहाँ बैठी है। अचानक दो गँवई बालकों की हैरान-सी निगाहें याद आईं! वे अँगना के एक ओर से, आँखें फाड़-फाड़कर ताक रहे थे। इस टूटी-फूटी पुरानी

सराय के बीते दिनों का गौरव-इतिहास उन बच्चों को मालूम न था। लेकिन उनके होश सम्हालने के वक्त से ऐसे यात्री इसमें कभी नहीं आये, उसकी मौन आँखों की निगाह ने अचला को यह साफ बता दिया। जगने के बाद वे रोज की तरह खेलने आये, कि यह ताज्जुब उन्हें दिखाई पड़ गया।

अचला ने चौंककर खड़ी हो उनसे कुछ पूछना चाहा था, लेकिन वे लड़के तुरन्त चम्पत हो गये। उसी क्षण उसे याद आया-कोई दो घण्टे पहले, कपड़े बदलने की कहकर सुरेश जो गया है, सो गया ही है! आखिर इतनी देर से अकेला वह कर क्या रहा है-यह जानने के लिये वह धीरे-धीरे उस कमरे के सामने पहुँची, और बन्द किवाड़ के अन्दर से कोई आहट न पाकर दो-एक मिनट चुप खड़ी रही; फिर धीरे-धीरे किवाड़ के पल्ले हटाकर सामने ही जो कुछ देखा, उससे एक साथ ही मुक्ति की तीखी घबराहट और भय से, जरा देर के लिये उसका सारा शरीर मानो पत्थर हो गया। कमरे में अँधेरा था, सिर्फ उधर के एक टूटे झरोखे से छनकर थोड़ी-सी रोशनी फर्श पर पड़ रही थी। वहाँ अँधेरे-उजाले में, निहायत गन्दी जमीन पर सुरेश चित् पड़ा हुआ था। उसके बदन पर कपड़े वे ही थे, बैग केवल खुला-पड़ा था, और उसमें की कुछ चीजें इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं।

पलक मारने की देर में अचला को उसकी आखिरी बातों की याद आ गयी-सुरेश डॉक्टर है, वह मनुष्य की जिन्दगी को बचाना ही नहीं जानता, उसकी जान को चुपचाप निकाल-बाहर करने का भी हुनर उसे आता है। इस भयंकर भूल के लिये सुरेश की उत्कट आत्मग्लानि की याद आयी; याद आयी उसकी विदा-याचना, उसका भरोसा देना-सबसे ज्यादा बारम्बार प्रायश्चित करने का कठोर इशारा-एक साथ एक ही साँस में, सबने मानो उस लोटती हुई देह के एक ही परिणाम की बात उसके कानों कही। वह द्वार थामकर वहीं बैठ गयी, यह हिम्मत न पड़ी कि अन्दर जाये।

लेकिन अब उस लोटते हुए शरीर को देखकर, उसकी आँखें मानो फटकर आँसू बहाने लगीं। जो उसी के लिये कलंक का इतना बड़ा बोझा माथे पर रखकर, हताश के मारे सदा के लिये इस दुनिया को छोड़ चला-उसका गुनाह कितना ही बड़ा क्यों न हो, उसे क्षमा नहीं कर सके-ऐसा वज्र-हृदय संसार में शायद हो-और आज पहली बार अपने सामने उसका अपना अपराध भी स्पष्ट हो उठा।

सुरेश से पहचान होने के उस पहले दिन से आज तक, जितनी इच्छा-आकांक्षा, जितनी भूल-चूक, जितना मोह, जितना छल, जितना आग्रह-आवेग दोनों के बीच से गुजरा-एक-एक कर सब फिर से दिखाई देने लगा। उसका अपना आचरण, पिता का आचरण-अचानक उसका सारा बदन सिहर उठा! लगा-अपना ही नहीं, बहुतों के बहुत-बहुत पातकों का भारी बोझ उठाकर सुरेश जिस विचारक के चरणों में जा-पहुँचा है, वहाँ वह मुँह बन्द किये चुपचाप सभी सजा कबूल कर लेगा; या एक-एक करके सारा दुःख, सारा अभियोग बताकर उनसे क्षमा की भीख माँगेगा।

जीवन के उपभोग के बहुत से सामान, बहुत से उपकरण उसके पास थे, तो भी जो वह चुपचाप, बिना किसी आडम्बर के सब-कुछ छोड़कर चला गया-इसकी गहरी पीड़ा अचला को आज रह-रहकर बेधने लगी। उसने क्या सचमुच ही प्रेम किया था-इस बात को उस मौत के सामने खड़े होकर पूछने, अविश्वास करने की गुंजाइश न रही।

फिर उसके गालों पर से आँसू की धारा बहने लगी। पिछली रात गाड़ी पर दोनों में धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय पर काफी तर्क हो गया था। लेकिन वह सब कितनी थोथी बकवास है-अचला पहले यह क्या जानती थी? प्यार की जात नहीं होती, धर्म नहीं होता; जो इस तरह से मर सकता है, वह समाज के गढ़े हुए कायदे-कानूनों से बहुत ऊपर है-ऐसे

विधि-निषेध उसे छू नहीं सकते-इस मृत्यु के सामने खड़ी होकर इस बात पर आज वह इंकार कैसे कर सकती है?

अचला आँचल से आँसू पोंछ रही थी। अचानक उसका कलेजा छन्-से हो रहा-लगा, लाश मानो हिल उठी और दूसरे ही दम एक अस्फुट-कातर स्वर के साथ सुरेश ने करवट बदली। वह मरा नहीं है-जिन्दा है! आवेग के एक प्रचण्ड वेग से अचला उसके पास गयी, और टूटे स्वर में पुकारा-सुरेश बाबू!

पुकार सुनकर सुरेश ने अपनी लाल-लाल आँखें खोलकर देखा, मगर कुछ बोला नहीं।

अचला भी कुछ बोल नहीं सकी, केवल एक अदम्य उसाँस उसके गले को बन्द करती हुई, आँसू के रूप में दोनों गालों पर से झरने लगी। लेकिन पलभर पहले के आँसू से कितना फर्क था इसका!

फिर भी सबसे ज्यादा जो चिन्ता भीतर-भीतर उसे दुखा रही थी, वह था इसका वास्तविक पहलू। इस अनजान-अपरिचित जगह में सुरेश के शव को लेकर वह क्या उपाय करेगी, किसे बुलाएगी, किसे कहेगी-हो सकता है बहुत अप्रिय आलोचना हो, बहुत-बहुत घिनौनी बातें उठें-उनका वह किसे-क्या जवाब देगी; शायद हो कि पुलिस वाले खोद-खोदकर सब भेद निकालें, ऐसी बेहयाई की शर्मिन्दगी से उसका सारा देह-मन भीतर-भीतर कैसा पीड़ित, कैसा दुःखी हो रहा था-उसका वह खुद भी पूर्णतया विचार नहीं कर सकती थी। इस बेअन्दाज मुसीबत के चंगुल से अचानक छुटकारा पाकर, अब उसके आँसू रोके नहीं रुकने लगे। और वह मरा नहीं है, सिर्फ इसी बात पर अचला का हृदय उसके प्रति कृतज्ञता से भरपूर हो उठा।

कुछ क्षण इसी तरह बीत जाने पर, सुरेश ने धीरे-धीरे पूछा-क्यों रो रही हो अचला?

अचला ने भर्राई आवाज में कहा-तुम इस तरह से सोये क्यों रहे? गये क्यों नहीं? मुझे इतना डराया क्यों?

उसकी आवाज में जो स्नेह उमड़ा-वह ऐसा करुण, इतना मधुर था कि न केवल सुरेश के, बल्कि अचला के भी मन में एक प्रकार के मोह का संचार हुआ। वह बोली-तुम्हें इतनी ही नींद लगी थी, तो मुझसे कहा क्यों नहीं? मैं उधर वाले कमरे को झाड़-पोंछकर तुम्हारे लिये कुछ बिछा देती! गाड़ी आने में तो काफी देर थी!!

सुरेश ने कोई जवाब नहीं दिया, सिर्फ विगलित स्नेह से उसकी तरफ ताकते हुए, उसका दायाँ हाथ उठाकर अपने तपे कपोल पर रक्खा, और एक लम्बा निःश्वास फेंका।

अचला ने चौंककर कहा-यह तो तप रहा है! बुखार हो गया क्या?

सुरेश ने कहा-हूँ, और यह बुखार सहज ही जाने वाला भी नहीं! शायद...

अचला ने धीरे-धीरे हाथ खींच लिया। जवाब में उसके मुँह से भी इस बार सिर्फ दीर्घ निःश्वास ही निकला। उसकी सारी स्नेह-ममता एक क्षण में जमकर पत्थर हो गयी। सहने

की, धीरज धरने की उसे जितनी भी शक्ति थी, सबको इकट्ठा करके गाड़ी के वक्त तक स्थिर रहने की मन में ठान रक्खी थी; लेकिन इस अकल्पनीय विपत्ति के आ पड़ने से जब उसकी आशा की पतली किरण भी पल में छिप गयी, तो मौत की कामना के सिवा दुनिया में माँगने की उसे कोई दूसरी चीज न रही।

वह इस हालत में उसे यहाँ अकेला छोड़ जाने की कल्पना भी न कर सकी; मगर जिसकी सेवा का सारा उत्तरदायित्व, सारा भार उसके माथे पर पड़ा, उसे लेकर इस परदेश में वह करेगी क्या; किससे कहाँ जाकर मदद माँगेगी, क्या परिचय देकर लोगों की सहानुभूति की अधिकारिणी होगी-बिजली की तरह एक साथ इन चिन्ताओं के दिमाग में दौड़ते ही, वह सोचकर कोई किनारा न पा सकी कि वह भाग जाये, कि फुक्का फाड़ कर रो पड़े-या जोर से सिर पीट-पीटकर, अपने ही हाथों अपने जीवन का लगे हाथ अन्त कर दे!

(30)

उस दिन स्टेशन से भीगते हुए जो लौटे, सो गाँठ के दर्द और सर्दी-बुखार से केदार बाबू सात-आठ दिन बीमार रहे। बेटी-दामाद का कोई कुशल-पत्र नहीं मिला, इसलिये बेहद फिक्रमन्द होने के बावजूद अपने मित्र को जबलपुर एक चिट्ठी डालने के सिवा और कोई जतन नहीं कर सके। आज उसका जवाब आया। खत में यही लिखा था कि वहाँ कोई नहीं पहुँचे, न ही उन्हें किसी को कोई खबर है। ये चन्द पक्तियाँ पढ़कर, उड़े हुए चेहरे से, सूनी आँखों केदार बाबू उनकी ओर देखते और बार-बार चश्मे के काँच को पोंछते रहे। आखिर उन लोगों का हुआ क्या, कहाँ गये वे-किसे लिखें, किससे पूछें? कुछ भी न सोच सके। उनकी आफत-मुसीबत में जो आदमी तन-मन से उसके काम आता था, वह सुरेश भी नहीं, वह भी उन्हीं के साथ है।

ठीक इसी समय बैरा ने और एक चिट्ठी लाकर उनके सामने रख दी। केदार बाबू ने किसी कदर नाक पर चश्मा रखकर, जल्दी से चिट्ठी को उठाकर देखा, वह अचला के नाम थी। यह चिट्ठी कहाँ से आयी, किसने लिखी-यह जानने की अकुलाहट में, दूसरे का पत्र खोलना चाहिए कि नहीं-यह सवाल भी उनके मन में न उठा। उन्होंने झटपट लिफाफे को फाड़ डाला। देखा-लिखने वाली मृणाल थी। उसके बाद शुरू से आखिर तक पत्र को पढ़ गये, और सूनी निगाहों से बाहर की ओर देखते हुए चश्मा पोंछने के काम में जुट गये। उनके जी में क्या होने लगा, ईश्वर ही जानें! बड़ी देर के बाद चश्मा पोंछना बन्द करके, उसे नाक पर रखकर फिर से एक बार चिट्ठी को पढ़ने लगे। मृणाल ने स्त्री की सहिष्णुता, धीरज, क्षमा आदि के तीखे उपदेश देकर अन्त में लिखा था-

यह जरूर है कि सँझले दादा तुम्हारें बारे में कुछ नहीं कहते, पूछने पर भी बड़े गम्भीर हो उठते हैं; मगर मैं तो औरत हूँ, समझ सकती हूँ! अच्छा तो यह कहो सँझली दीदी, झगड़ा-झंझट किसके नहीं होती बहन? लेकिन इसी के लिये ऐसा रूठना? शरीर और मन को ऐसी हालत में न समझकर तुम्हारे पति नाराज भी हो सकते हैं, घबराकर, ऊबकर चले भी जा सकते हैं; मगर तुम तो अभी पागल नहीं हो गयी हो कि उन्होंने कहा और तुमने हाँ कर दी-जाओ वापस! जभी मैं सोचा करती हूँ सँझली दी, कि कैसे साहस करके तुमने अपने मरणासन्न पति को इस जंगल में भेज दिया-और निश्चिन्त होकर सात-आठ दिन-सात-आठ दिन क्यों कहें, सात-आठ साल से बाप के घर में मजे में पड़ी हो! यकीन मानो, उस दिन जब वे सरो-सामान के साथ घर आये, मैं उन्हें पहचान नहीं सकी! किस बात में तुम लोगों की लड़ाई हो गयी, कब हो गयी, क्यों इन्होंने जबलपुर जाना मुल्तवी करके यहाँ आने का तै किया-मैं कुछ भी नहीं जानती और जानना भी नहीं चाहती। जानती तो हो, सास को छोड़कर मुझे कहीं जाने का उपाय नहीं! मेरे सिर की कसम, पत्र पाते ही तुम चली आना! जा पाती तो मैं जाकर तुम्हारे पैर खींचकर फिर भी ले आती-अगर सँझले दादा इतता ज्यादा बीमार न हो गये होते। तुम एक बार आओ, आकर आँखों से देखो, तब समझोगी कि नाहक मान करके तुमने कितना बड़ा अन्याय किया है! यह घर भी तुम्हारा है, मैं भी तुम्हारी हूँ-इसलिये यहाँ आने में हिचक न करना। तुम्हारी राह देखती रही, चरणों

में कोटि-कोटि प्रणाम! एक बात और, मेरे पत्र की बात सँझले दादा न जानें, मैंने छिपाकर लिखा है।

इति-मृणाल!

पत्र समाप्त करके पुनश्च मृणाल ने छोटी-सी कैफियत दी थी-मैं जानती हूँ कि पति की गैरहाजिरी में तुम घड़ी-भर को भी सुरेश बाबू के यहाँ नहीं रह सकतीं, इसलिये मैके के पते पर ही पत्र दे रही हूँ। आशा है, मिलने में देर न होगी!

केदार बाबू के हाथ से चिट्ठी छूटकर गिर गयी। वे फिर से आसमान की तरफ नजर किये अपना चश्मा पोंछने के काम में लग गये। इतना समझ में आ गया कि महिम जबलपुर के बजाय अपने घर पर है, और अचला वहाँ नहीं है। वह कहाँ है, उसका क्या हुआ-यह सब या तो महिम जानता नहीं, या जानकर भी बताना नहीं चाहता।

अचानक ख्याल आया, सुरेश आखिर कहाँ है? वह तो उन्हीं का मेहमान रहने के ख्याल से साथ हो गया था। बेशक वह अपने घर नहीं लौटा, नहीं तो एक बार जरूर मिल जाता!! उसके बाद जो आशंका उनके मन में शूल-सी चुभी, उसकी चोट से वे सीधे नहीं रह सके, आराम-कुर्सी पर लेट गये, आँखें मूँद लीं।

दोपहर को नौकरानी सुरेश के घर जाकर पूछ आयी-फूफी को कुछ भी मालूम नहीं। कोई पत्र नहीं आया है, इससे वे भी चिन्तित हैं!

रात को सोने वाले कमरे में, केदार बाबू फिर मृणाल के पत्र को लेकर रोशनी में बैठे। उसके हरूफ-हरूफ को गौर से देखकर खोजने लगे, कहीं अगर टिकने की जगह मिले। न भी हो तो कहाँ जाकर, किस तरह मुँह छिपायेंगे-नहीं जानते। पुश्तों से कलकत्ते रहे, कलकत्ते के बाहर भी कोई भला आदमी जिन्दा रह सकता है, यह वह सोच भी नहीं सकते। इस जन्म के चीन्हे-जाने स्थान, समाज, सदा के बन्धु-बान्धव से बिछुड़ कर कहीं अज्ञातवास में जीवन के बाकी-दिन बिताने ही पड़े-तो वे दुस्सह दिन कैसे कटेंगे, यह उनकी कल्पना से परे था; और बेटी होकर जिस हतभागन ने बीमार बाप के कमजोर कन्धों पर यह बोझा लाद दिया-उसे वे क्या कहकर अभिशाप दें, यह भी उनकी कल्पना के बाहर था।

रातभर में वे एक बार भी झपकी न ले सके। सुबह होते-होते उनकी बदहजमी वाली बीमारी फिर दिखाई दी। लेकिन आज चूँकि उनकी ओर देखने वाला भी कोई न दिखाई दिया, तो बेबस-से बिस्तर पर पड़े रहने में भी उन्हें घृणा महसूस हुई। इतनी बड़ी पीड़ा को भी शान्त भाव से छिपाए, और दिन की तरह वे बाहर निकले और स्टेशन के लिये गाड़ी लाने के लिये बैरा को कहकर, आप जल्दी-जल्दी कपड़ा-लत्ता सहेजने लगे।

(31)

जाड़े का सूरज तीसरे पहर ढलने को था, और उसकी कुछ-कुछ गर्म किरणों से सोन नदी का दूर तक फैला हुआ चौर धू-धू कर रहा था। ऐसे समय एक बंगाली के मकान में, बरामदे की रेलिंग पकड़ कर उधर को देखती हुई अचला चुप खड़ी थी। उनकी अपनी जिन्दगी से उस मरुखण्ड का कोई सम्बन्ध था या नहीं, यह और बात है; लेकिन उन दो अपलक आँखों की निगाह को एक नजर देखते ही यह समझ में आ सकता था-कि उस तरह से देखने पर देखा कुछ नहीं जा सकता, सिर्फ सारा संसार एक अजीब और बहुत बड़े जादू के करिश्मे-सा लगता।

-दीदी?

चौंककर अचला ने पीछे देखा। जो लड़की एक दिन अपने को राक्षसी बताकर आरा-स्टेशन में उतर गयी थी, यह वही थी। समीप आकर अचला के उद्भ्रान्त और बहुत ही श्रीहीन मुखड़े की ओर एक नजर रखकर, मान करती हुई-सी बोली-अच्छा दीदी, हर कोई तो यह देख रहे हैं कि सुरेश बाबू चंगे हो गये हैं; डॉक्टर कह रहे हैं कि अब जरा भी डर नहीं, फिर भी रात-दिन तुम्हारी यह मायूसी नहीं जाती-यह क्या तुम्हारी ज्यादती नहीं? पति हमारे भी हैं, उन्हें कुछ होता-हवाता है तो हम भी फिक्र के मारे मर-सी जाती हैं; मगर कसम ले लो, तुमसे उसकी तुलना ही नहीं हो सकती! मुँह फेरकर अचला ने साँस ली, कोई जवाब नहीं दिया।

वह रूठकर बोली-इष्? एक उसाँस ले ली, बस!! कहकर भी देर तक जब अचला का कोई जवाब नहीं मिला, तो उसका एक हाथ अपनी मुट्ठी में लेकर बड़े ही करुण ढंग से पूछा-अच्छा, सुरमा दीदी, सच बताना, हमारे घर तुम्हारा घड़ीभर भी मन नहीं टिक रहा है, है न? खूब तकलीफ हो रही है, असुविधा है न?

अचला जैसे नदी की ओर देख रही थी-देखती रही, लेकिन अबकी जवाब दिया; कहा-तुम्हारे ससुर ने मेरी जो भलाई की है, वह क्या मैं जन्म-भर भूलूँगी बहन? वह हँसी। बोली-मैं जैसे भूलने के लिये ही तुम्हारे पीछे पड़ी हूँ! और दूसरे ही क्षण मीठे उलाहने के तौर पर बोलीं-शायद इसीलिये उस समय बाबूजी के उतना पुकारने पर भी जवाब नहीं दिया? तुमने सोचा-बुड्ढा जब-तब...

अचला ने बड़े अचरज से पलट कर कहा-नहीं, हर्गिज नहीं-!

राक्षसी ने जवाब दिया-हूँ, हर्गिज नहीं! वह भी मैं अगर खुद गवाह न होती! मैं ठाकुर-घर में थी। मैंने सुना सुरमा, सुरमा, अरी ओ बिटिया सुरमा! चार-पाँच बार उन्होंने पुकारा तुम्हें। मैं पूजा की तैयारी कर रही थी, छोड़कर लपकी। मैंने देखा, वे सीढ़ी से नीचे उतर रहे हैं। कसम, सच कह रही हूँ!

इसे केवल अचला ने ही समझा, कि बूढ़े की पुकार को उसके अनमने मन का दरवाजा ढूँढ़े क्यों न मिला? फिर भी लाज-भरे पछतावे से वह चंचल हो उठी। बोली-शायद कमरे में...

राक्षसी ने कहा-कहाँ का कमरा! जिनके लिये कमरा है, वे तो उस समय बाहर टहलने गये थे! मैंने आँगन से साफ देखा, ठीक इसी तरह रेलिंग पकड़े खड़ी। कहकर वह जरा थमी और हँसकर बोली-लेकिन तुम तो अपने में थीं नहीं बहन, कि बूढ़े-टेढ़े की पुकार सुन पातीं! जो सोच रही थी वह कहूँ तो...

अचला चुपचाप फिर नदी के उस पार देखने लगी-इन तानों का जवाब देने की कोशिश तक नहीं की। लेकिन यहाँ यह समझ रखना जरूरी है, कि राक्षसी नाम से उसकी जरा भी समानता न थी-और नाम भी उसका राक्षसी नहीं, वीणापाणि था। पैदा होते ही माँ मर गयी थी, इसीलिये दादी ने यह नाम धर दिया था-जिसे वह सास-ससुर, पड़ौसी से छिपा नहीं सकी थी।

अचला को एकाएक मुँह फेरकर चुप हो जाते देखकर वह मन-ही-मन शर्मिन्दा हुई। अनुतप्त होकर बोली-अच्छा बहन, तुमसे जरा दिल्लगी करना भी मुहाल! मैं क्या जानती नहीं हूँ कि बाबूजी की तुम कितनी श्रद्धा-भक्ति करती हो। उनसे ही तो मैंने सब-कुछ सुना। टहल कर वे सवेरे लौट रहे थे, और तुम रोती हुई डॉक्टर की तलाश में निकली थीं। उसके बाद वे तुम्हारे साथ गये, और सराय से तुम्हारे पति को लिवा लाए। यह सब भगवान् की कृपा है दीदी, वरना तुम लोगों के चरणों की धूल भी कभी इस कुटिया पर पडेगी-उस दिन गाड़ी में यह किसने सोचा था? लेकिन मेरे सवाल का तो जवाब नहीं मिला! मैं पूछ रही थी कि यहाँ तुम्हें एक घड़ी भी अच्छा नहीं लग रहा है, यह मैं समझ गयी हूँ। लेकिन क्यों? यहाँ तुम्हें कौन-सा कष्ट, कौन-सी असुविधा हो रही है? मैं सिर्फ यही जानना चाहती हूँ-कहकर पहले की ही तरह अबकी भी जरा देर इन्तजार करके उसे लगा-जवाब का वह बेकार ही इन्तजार कर रही है। सो जिसे उसके ससुर ने जगह दी थी, सुरमा दीदी कहकर उसने भी स्नेह किया था-उसका चेहरा अपनी ओर खींचते ही उसने देखा, उसकी आँखों के कोने से चुपचाप आँसू बह रहे हैं। वीणापाणि स्तब्ध खड़ी रही, और आँचल से आँसू पोंछकर उसने अपनी सूनी निगाह दूसरी ओर फेर दी।

दूसरे दिन तीसरे पहर, एक नये मासिक पत्र की कोई कहानी पढ़कर वीणापाणि अचला को सुना रही थी। बेंत की कुर्सी पर अधलेटी अचला कुछ तो सुन रही थी, और कुछ उसके कानों में कतई पहुँच ही नहीं रहा था-ऐसे समय वीणापाणि के ससुर रामचरण लाहिड़ी-'बिटिया राक्षसी'-कहते ऊपर आये। दोनों जनी झट उठकर खड़ी हो गयीं। वीणापाणि ने बूढ़े के सामने एक कुर्सी खींचकर पूछा-क्या है बाबूजी?

ये बूढ़े बड़े ही निष्ठावान हिन्दू थे। उन्होंने धीरे-धीरे कुर्सी पर बैठते हुए, स्नेह से अचला की ओर देखते हुए कहा-एक बात कहनी है बिटिया! अभी-अभी पुजारीजी आये थे। वे तुम पति-पत्नी के नाम से संकल्प करके भगवान् को तुलसी चढ़ा रहे थे, वह कल समाप्त होगा। सो कल तुमको कष्ट करके-जरा देर तक बिना खाए रहना पड़ेगा! वे हमारे घर ही

ठाकुर लेते आयेंगे, तुम्हें कहीं जाना न पड़ेगा!! सुनकर अचला का सारा चेहरा स्याह हो उठा-धुँधले प्रकाश में यह बूढ़े को न दिखा, मगर वीणापाणि की नजर पड़ी। वह हिन्दू नारी थी, जन्म से उसी संस्कार में पली। और बीमार पति के कल्याण के लिये यह कितने उत्साह और आनन्द की बात है, इसे वह संस्कार जैसा ही समझती थी, लेकिन अचला की शक्ल का ऐसा अजीब परिवर्तन देख उसके अचरज की सीमा न रही। फिर भी सखी के नाते पूछा-अच्छा बाबूजी, तुलसी तो आपने सुरेश बाबू के लिये चढ़वाई, तो फिर उन्हें उपवास न करा कर आप दीदी को क्यों कह रहे हैं?

बूढ़े ने हँसकर कहा-वे और तुम्हारी दीदी क्या दो हैं बिटिया? सुरेश बाबू तो इस दशा में उपवास कर नहीं सकेंगे, सो तुम्हारी सुरमा दीदी को ही करना पड़ेगा! शास्त्र में ऐसा नियम है, सोचने की बात नहीं!!

इसके जवाब में भी जब अचला हाँ-ना कुछ न बोली-तो उसकी वह निश्चेष्ट-नीरवता शुभाकांक्षी बूढ़े के भी नजर में आयी। उन्होंने सीधे अचला की ओर देखते हुए पूछा-इसमें तुम्हें कोई आपत्ति है, बेटी? कहकर उसके प्रतिवाद की आशा में देखते रहे।

अचला से अचानक इसका भी कोई जवाब देते न बना। जरा देर चुप रहकर बोली-उन्हें कहने से खुद वे ही करें शायद! उसके बाद सभी चुप हो गये। यह बात कैसी अजीब-सी, कितनी रूखी और सख्त सुनाई पड़ी-इसे कहने वाले के सिवा शायद और किसी ने नहीं अनुभव किया। अन्तर्यामी के सिवा और कोई उसे नहीं जान सका।

बूढ़े ने खड़े होकर कहा-तो वही होगा! और धीरे-धीरे नीचे उतर गये। नौकर बत्ती दे गया, पर दोनों वैसे ही सिमटी और झिझकी रहीं। मासिक पत्रिका की वैसी जानदार-जोशीली कहानी

का बचा हिस्सा पढ़ने का उत्साह भी किसी में न रहा। बाहर अँधेरा गाढ़ा होने लगा, और उसी को चीरकर उस पार की बालुका-भूमि एक से दूसरे छोर तक, इन दो क्षुब्ध, मौन और लज्जित नारियों की आँखों पर सपने-सी तैरने लगी।

इस तरह भी काफी समय कट जाता, लेकिन जाने क्या सोचकर वीणापाणि एकाएक कुर्सी अचला के पास खींचकर लाई, और अपना दायाँ हाथ सखी की गोद में रखकर धीरे-धीरे बोली-उस पार के चौर को देखकर मेरे जी में क्या आ रहा था, जानती हो दीदी? लग रहा था, ठीक जैसे तुम हो! जैसे ठीक उसी तरह थोडे-से अँधेरे में लिपटी-अरे, ऐसे सिहर क्यों उठीं?

अचला कुछ क्षण चुप रहकर बोली-एकाएक सर्दी-सी लग आयी! वीणापाणि अन्दर गयी। एक ऊनी चादर ले आयी। भली तरह अचला के बदन को उससे ढककर, अपनी जगह बैठकर बोली-तुमसे एक बात पूछने को बड़ा जी चाहता है दीदी, लेकिन कैसी तो शर्म आती है! नाराज न हो तो...

अजानी आशंका से अचला का कलेजा काँप उठा-ज्यादा बोलने में गला न काँप उठे, इस भय से मुख्तसर में सिर्फ 'ना' कहा-और स्थिर बैठी रही।

दुलार से उसकी हथेली को थोड़ा दबाकर वीणापाणि कहने लगी-अभी तो तुम मेरी दीदी हो, मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ; मगर उस दिन गाड़ी में तो मैं कोई नहीं होती थी-फिर तुमने अपना सही परिचय मुझसे छिपाना क्यों चाहा था? जो तुम्हारे पति थे, उनके लिये कहा कोई नहीं हैं; कहा-बीमार पति दूसरे डिब्बे में हैं, उन्हें लेकर जबलपुर जा रही हैं-लेकिन मुझे तुम ठग नहीं सकीं! मैं ठीक पहचानती थी कि वे तुम्हारे कौन हैं!! फिर तुमने बताया कि

तुम ब्राहम हो। इसके बाद वह जरा हँस कर बोली-पर जब देखती हूँ, तुम्हारे देवता का जनेऊ देखकर विष्णुपुर के पाठक-ठाकुर लोग भी शरमा सकते हैं!!! इतना झूठ क्यों बताया था भला?

जबर्दस्ती जरा सूखी हँसी हँसकर अचला बोली-यदि न बताऊँ? वीणापाणि बोली-तो मैं ही बताऊँगी! मगर पहले यह कहो कि ठीक बता दूँ, तो क्या दोगी? अचला के कलेजे में लहू की रफ्तार बन्द होने की नौबत आ गयी। उसके चेहरे पर मौत का जो पीलापन छा गया, बत्ती की मद्धिम रोशनी में वह अचला को नजर आया या नहीं, कहना कठिन है; लेकिन होंठ दबाकर फिर जरा हँसती हुई वह बोली-अच्छा, कुछ दो या न दो, मैं अगर सच बता दूँ तो मुझे क्या खिलाओगी, अचला दीदी?

अचला का अपना नाम उसके कानों में आग की लपट-सा समाया, और उसके बाद से ही वह-आधी होश में आधी बेहोश-सी, सख्त होकर बैठी रही।

वीणापाणि कहने लगी-हम दोनों बहनों का लेकिन उतना कसूर नहीं है, कसूर जो कुछ है, हमारे पति-देवताओं का! एक ने बुखार की बदहोशी में तुम्हारा असली नाम कह दिया, और दूसरे ने सोचकर तुम्हारा सही परिचय ढूँढ़ निकाला!!

अचला ने जी-जान से अपने धड़कते कलेजे को संयत करके कहा-क्या है सही परिचय, सुनूँ जरा?

वीणापाणि बोली-सच हो या नहीं-उन्हें अक्ल है; यह तुम्हें मानना ही पड़ेगा! एक रात आकर अचानक वे बोल उठे-अपनी अचला दीदी का रवैया मालूम है तुम्हें? वे घर से भाग आयी हैं। मैंने रंज होकर कहा-रक्खो भी चालाकी अपनी! दीदी कहीं सुन लें तो जिन्दगी भर तुम्हारी शक्ल नहीं देखेंगी!!

अचला कुर्सी को मुट्ठियों से कसकर पकड़े बैठी रही।

वीणापाणि कहने लगी-वे बोले-मेरी शक्ल चाहे वे देखें, चाहे न देखें, मगर मैं कसम खाकर कह सकता हूँ कि बात यह सच है! ननद-देवरानी से झगड़कर हो या सास-ससुर से न पटने के कारण ही हो, पति के साथ वे निकल पड़ी है। सुरेश बाबू का हाल देखकर तो लगता है, तुम्हारी दीदी उन्हें समुद्र में डूब मरने को कह दें, तो वे ना नहीं कर सकते। खैर, जहाँ भी हों, छिपकर दोनों जने रहेंगे, जब तक कि खोज-ढूँढ़कर, रो-पीटकर, मना-मनूकर सास-ससुर-बेटे पतोहू को न ले जायें! यह ही असली घटना न हो तो तुम मुझे...

मैंने कहा-अच्छा, वही सही, मगर गाड़ी में मुझ-जैसी एक मूर्ख अपरिचित स्त्री से झूठ बोलने की दीदी को क्या गरज पड़ी थी? इस पर उन्होंने हँसकर जवाब दिया-तुम्हारी दीदी अगर तुम्हारी-जैसी अक्लमन्द होती, तो कोई गर्ज न होती! लेकिन अक्लमन्द वे बिल्कुल नहीं हैं!! उन्होंने जैसे ही सुना कि तुम्हारा घर डिहरी में है, दो दिन के बाद तुम वहीं जाओगी, वैसी ही वे डिहरी के बदले जबलपुर-यात्री, अचला के बदले सुरमा, और हिन्दू के बदले ब्राह्म बन गयी। तुम्हारे दिमाग को यह नहीं सूझा राक्षसी, कि जो टिकट कटाकर जबलपुर जा रहे थे, एकाएक गाड़ी बदलकर वे डिहरी क्यों जाने लगे; और अपने बीमार पति को लेकर किसी बंगाली के यहाँ न उतरकर, इतनी दूर एक सराय में क्यों ठहरते? कहते-कहते बगल में झुककर वीणापाणि ने उसका गला लपेट लिया, और स्नेह-प्रेम से

गद्गद् हो उसके कान के पास मुँह ले जाकर अस्फुट-स्वर में कहा-बताओ न दीदी, हुआ क्या था? मैं कभी-किसी को कोई बात न बताऊँगी-तुम्हारा बदन छूकर कसम खाती हूँ!

वीणापाणि की जबानी अपने बारे में सत्य-आविष्कार का गलत इतिहास सुनकर, अचला की देह मानो निर्जीव पत्थर के एक टुकड़े-सी, सखी के आलिंगन में लुढ़क पड़ी। जीवन की आखिरी शर्मिन्दगी एक-एक कदम बढ़ाकर कहाँ आ पहुँची, वह यही देख रही थी; लेकिन वह जब एकाएक अजीब ढंग से मुँह फेरकर दूसरी ओर चली गयी, उसे छुआ तक नहीं-तो इस इतने बड़े सौभाग्य को ढो सकने की भी शक्ति उसे नहीं रही। आँसू के अटूट प्रवाह के सिवा, बड़ी देर तक उसमें जीवन का और कोई लक्षण नहीं दिखा।

ऐसे कुछ समय कटा। वीणापाणि अपने दामन से रह-रहकर उसके आँसू पोंछकर, स्नेह-सने स्वर में बोली-सुरमा दीदी, उम्र में बड़ी होते हुए भी, तुम छोटी बहन का कहना मानो, दीदी-अब घर लौट जाओ! कहा मानो, यह यात्रा तुम्हारी शुभ यात्रा नहीं!! इतने-इतने कष्ट से सुहाग का सिन्दूर जब बच गया, तो मना करके गुरुजनों को अब दुःख मत दो, उन्हें न रुलाओ! झुककर ससुराल लौट जाने में कोई शर्म, कोई हेठी नहीं बहन!

कुछ देर मौन रहकर वह फिर बोली-चुप हो? नहीं जाओगी? माँ-बाप से नाराज होकर घर से बाहर सुरेश बाबू ठीक नहीं रह सकते। तुम्हारे मुँह से जाने की बात सुनकर वे खुश ही होंगे, यह मैं निश्चित कहती हूँ!

आँख पोंछकर अचला अब सीधी बैठी। देखा-वीणापाणि उसी उत्सुकता से उसकी ओर देख रही है। पहले तो जवाब देने में उसे बड़ी शर्म आने लगी, लेकिन चुप रह जाने से ही उससे

पिण्ड नहीं छूट सकता-जब इस बात में कोई सन्देह नहीं रहा, तो जबर्दस्ती सब संकोच हटाकर वह बोली-हमारे घर लौटने का कोई उपाय नहीं है वीणा!

वीणापाणि विश्वास न कर सकी। बोली-कोई उपाय नहीं? तुम्हें मैं ज्यादा दिनों से जरूर नहीं जानती, परन्तु जितना जानती हूँ-उससे समूची दुनिया के सामने खड़ी होकर कसम खाकर कह सकती हूँ-कि तुम ऐसा कोई काम हरगिज नहीं कर सकती दीदी, जिससे कोई तुम्हारा किसी तरफ का रास्ता बन्द कर सके! अच्छा तुम अपनी ससुराल का पता बता दो, परसों तो हम लोग घर जा ही रहे हैं, बाबूजी को साथ लेकर तुम्हारे यहाँ जाऊँगी, देखती हूँ-वे मुझे क्या जवाब देते हैं! तुम्हारे सास-ससुर मेरे भी वही हुए, उनके सामने खड़ी होने में मुझे कोई शर्म नहीं!

अचला ने चौंककर पूछा-परसों तुम लोग घर जा रहे हो? सुना तो नहीं! यहाँ कौन-कौन रहेंगे?

कोई नहीं! सिर्फ नौकर-दरबान घर की रखवाली करेंगे। मेरी जेठ-सास बहुत दिनों से बीमार हैं, अब उनके जीने की आशा नहीं-उन्होंने सबसे मिलने की इच्छा जाहिर की है।

अचला ने पूछा-तुम्हारी ससुराल है कहाँ?

वीणापाणि ने कहा-कलकत्ते में पटलडाँगा!

पटलडाँगा का नाम सुनकर अचला का मुँह सूख गया। जरा देर चुप रहकर धीरे-धीरे बोली-तब तो हमें भी कल ही यह घर छोड़कर जाना पड़ेगा। यहाँ रहना तो न होगा अब!

वीणापाणि हँस उठी-इसीलिये तुम्हें घर जाने को कह रही थी, क्यों? इतनी देर में मेरी बात का यह मतलब निकाला तुमने! नहीं-नहीं, मुझसे कसूर हो गया, तुम्हें अब कभी कहीं जाने को न कहूँगी!! जब तक जी चाहे, इस झोंपड़े में रहो, हममें से किसी को कोई एतराज नहीं!!!

मगर इस समय निमंत्रण का अचला कोई जवाब नहीं दे सकी। कुछ देर चुप रहकर बोली-सच ही क्या तुम लोगों का जाना तय हो गया है?

वीणापाणि बोली-हाँ! गाड़ी में जगह तक रिजर्व हो गयी!! बाबूजी के कमरे में झाँककर देखो जरा, देखोगी-प्रायः पन्द्रह आना सामान भी बँध चुका है!!!

नौकरानी दरवाजे के पास आकर बोली-बहूजी, माँ जी रसोई में बुला रही हैं जरा!

आयी-कहकर जरा हँसते हुए, उसने फिर एक बार दोनों बाँहों से अचला का गला लपेटकर कानों में कहा-इतने दिन भीड़-भाड़ में, बड़े कष्ट में ही तुम लोगों के दिन बीते हैं। अब पूरा घर खाली-कोई-कहीं नहीं, मैं बला भी टाल रही हूँ-समझ गयी न दीदी? और सखी के गाल पर दो उँगली का दबाव देकर दाई के पीछे तेजी से निकल गयी।

खुशी का एक टुकड़ा-दक्खिनी बयार-सी वह सौभाग्यवती स्त्री धीरे-धीरे नजरों से ओझल हो गयी; लेकिन कानों में कहीं उसकी दो बातों को दोनों कानों में डाले, अचला वहीं बुत-सी बैठी रही। आज की रात और कल का दिन-भर बाकी। उसके बाद कोई रोक-रुकावट नहीं, इस सूनी नगरी में-पास और दूर, जहाँ तक उसकी दृष्टि जाती-भविष्य के बीच आँख खोलकर देखा-अकेली वह, और केवल सुरेश के सिवा उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा!

(32)

इस सूने घर में अकेले सुरेश को लेकर दिन बिताना पड़ेगा, और वह बुरी साइत हर पल करीब ही होती आ रही थी। बाधा नहीं, रोक नहीं, लाज नहीं, जाग नहीं-कल का कोई बहाना करने तक का मौका नहीं मिलेगा।

वीणापाणि ने कहा था-सुरमा दीदी, ससुराल अपना घर है, औरतों को वहाँ झुककर जाने में कोई शर्म नहीं!

हाय रे हाय! उसके कौन है और क्या नहीं है, इसका लेखा अन्तर्यामी के सिवा और किसने रक्खा है! फिर भी उसके पति आज भी हैं, और अपना कहने को वह जला हुआ घर अभी धरती की गोद में मटियामेट नहीं हुआ है। आज भी वह पल-भर के लिये उसमें जाकर खड़ी हो सकती है!

बँधे जानवर की आँखों पर से जब तक बाहर का यह फाँक एकबारगी ढँक नहीं जाता, तब तक जैसे वह एक ही जगह में सिर पीट-पीटकर मरता रहता है-वैसे ही उसके बेरोक मन की उदग्र कामना उसके कलेजे में हा-हा करती हुई, निकल बाहर होने की राह ढूँढ़ती हुई घुटने

लगी। पास के कमरे में सुरेश निश्चिन्त सो रहा था। बीच का दरवाजा थोड़ा-सा खुला, और उसी के इस तरफ फर्श पर चटाई डाल कर, ऐड़ी से चोटी तक कम्बल ओढ़े नौकरानी सो रही थी। घर-भर में किसी के भी जगने का कोई आभास नहीं-केवल वही मानो आग की सेज पर दहकती रही। दिनों तक इसी पलंग पर उसके बगल में वीणापाणि सोती रही, पर आज उसके पति यहीं थे, वह अपने कमरे में सोने गयी थी-और कहीं इसी चिन्ता का छोर पकड़ कर अपना दुखी और उद्भ्रान्त मन सहसा उन्हीं के कमरे के पर्यंक के प्रति हिंसा, अपमान, लज्जा के अणु-परमाणु में चूर-चूर हो दम तोड़े-इस डर से उसने अपने-आपको जोर-जबर्दस्ती खींचकर लौटाया, लेकिन तुरन्त उसका सारा शरीर बिजली छू जाने जैसा थर-थर काँपने लगा।

बगल के किसी कमरे की घड़ी में दो बजे। बदन पर की ऊनी चादर को हटाते ही उसने अनुभव किया-इस जाड़े की रात में भी उसके कपाल पर, मुँह पर बूँद-बूँद पसीना जमा है। सो उसने सिरहाने की खिड़की खोल दी। देखा-अँधियारे पाख की आठवीं का चाँद ठीक सामने ही उगा है, और उसी की कोमल किरणों से सोन नदी का नीला पानी बड़ी दूर तक चमक उठा है। गहरी रात की ठण्डी हवा ने उसके गर्म ललाट को सहला दिया, और वह वहीं उस खिड़की के सामने, अपने भाग्य की अन्तिम समस्या को लेकर बैठ गयी।

अचला की निश्चित धारणा हो गयी थी कि उसके शापित अभागे जीवन का जो कुछ सत्य है, लोगों को सारा-का-सारा एक अद्भुत उपन्यास-सा लगेगा। जिस रोज से इस कहानी की शुरुआत हुई, तबसे जीवन में जिनसे झूठ ने सत्य का नकाब डालकर झलक दिखाई है-उनमें से एक-एक को याद करके क्रोध, क्षोभ और मान से भाग्य-विधाता ने उसकी जवानी के पहले आनन्द को मिथ्या से ऐसा बिगाड़कर, ऐसे मजाक की चीज बनाकर संसार के सामने उधर देने में कोई हिचक नहीं दिखाई-उस बेरहम-बेदर्द को बचपन से अगर भगवान कहने की उसने शिक्षा पाई है, तो वह शिक्षा उसकी बेकार गयी, बिल्कुल बेमानी

हुई। वह आँखें पोंछते हुए बारम्बार कहने लगी-हे ईश्वर, तुम्हारे इतने बड़े विश्व-ब्रह्माण्ड में इस अभागिनी के जीवन को छोड़कर कौतुक करने को और क्या खाक कुछ नहीं मिला?

मन-ही-मन बोली-कहाँ थी मैं और कहाँ था सुरेश! ब्राह्म की छाया छूने में भी जिसकी घृणा और द्वेष का अन्त नहीं था, किस्मत के खेल से आज उसी की आसक्ति का आदि-अन्त नहीं रहा। जिसे उसने कभी प्यार नहीं किया-वही उसका प्राणोपम है, सिर्फ इसी झूठ को लोगों ने जाना? और जो सत्य है, उसे कहीं-किसी के पास जगह न मिली? और इस झूठ को उसी के मुँह से प्रचार कराने की जरूरत थी? अदृष्ट की इतनी बड़ी विडम्बना कब-किसके नसीब में घटी? पति को उसने बड़े दुःख से पाया था, मगर वह बर्दाश्त न हुआ-उसके चरम दुर्भाग्य की गठरी लिये सुरेश, अभिशाप की नाईं उसके गाँव में जाकर हाजिर हुआ। उसके सुख का बसेरा जलकर खाक हो गया, और उसी के साथ उसकी तकदीर भी जलकर भस्म हो गयी-इस बात में जब कोई शुबहा ही न रहा, तो फिर उसके बीमार पति को उसी की गोद में डाल दिया गया-जिसे वह एकबारगी खोने को थी। सेवा से पूर्णतया उसे लौटा देने का ही संकल्प अगर विधाता का था, तो फिर उसकी दुःख-दुर्दशा, ग्लानि-अपमान का अन्त क्यों नहीं?

दोनों हाथ जोड़कर अचला रुँधे स्वर में कहने लगी-जगदीश्वर, रोगमुक्त पति के आशीर्वाद से सभी अपराधों का प्रायश्चित हो चुका, अगर मुझे यही विश्वास करने दिया था-तो फिर इस इतनी बड़ी दुर्गत में क्यों ढकेल दिया? उसने संकोच नहीं माना, इतनी-इतनी हरकतों के बाद भी उसने सुरेश को साथ आने को आमंत्रित किया, दुनिया में इस कसूर के मिटने का उपाय नहीं, कलंक की यह कालिमा नहीं मिटने की-मगर मेरे अन्तर्यामी, मेरे भाग्य से तुमने भी क्या भूल समझा? मेरे कलेजे के अन्दर क्या है, वह क्या दिखाई ही नहीं दिया तुम्हें?

पिता की चिन्ता, पति की चिन्ता को वह जी-जान से मानो ठेलकर हटा दिया करती थी, आज भी चिन्ता को उसने पास नहीं फटकने दिया; किन्तु उसे मृणाल की बात याद आयी, फूफी की याद आयी, याद आया आने के वक्त सतीसाध्वी कहकर उनका आशीर्वाद देना। उसके सम्बन्ध में उनके मनोभाव की कल्पना करते हुए अकस्मात् मार्मिक आघात खाकर, देर के लिये उसका ज्ञान मानो खो गया, और देहमन की उस अवश-बेबश दशा में खिड़की पर माथा रक्खे, अनजाने ही उसकी आँखों से आँसू बह रहा था। ऐसे वक्त पीछे पैरों की हल्की आहट हुई। अचला ने मुड़कर देखा-खाली बदन, नंगे पाँव सुरेश आकर खड़ा है। आकस्मिक उत्तेजना से वह कुछ कहने जा रही थी, लेकिन गला रुँध गया। उसे दमन करने की उसकी इच्छा न हुई, और मुँह फेरकर तुरन्त उसने फिर उसी तरह खिड़की पर सिर रख लिया; लेकिन जो आँसू अब तक बूँद-बूँद टपक रहा था, उसका बाँध मानो टूट गया-और एक पगली धारा-सी फूट निकली।

कहीं कोई शब्द नहीं। घर के भीतर-बाहर रात की गहरी नीरवता छा रही थी। पीछे पत्थर की मूरत-सा चुप खड़ा सुरेश, सहसा उसका शरीर पत्ते की तरह काँपने लगा-और लमहें में उसने दोनों हाथ बढ़ाकर अचला का माथा अपनी छाती में खींच लिया।

अपने को उससे छुड़ाकर अचला ने आँखें पोंछीं, लेकिन सबसे बड़े अचरज की बात यह कि जो आदमी उसकी इतनी बड़ी दुर्गत की जड़ था, उसके इस व्यवहार से अचला को तीखी नफरत न हुई, बल्कि धीमे से कहा-तुम इस कमरे में क्यों आये?

सुरेश चुप रहा। शायद उसकी आवाज ही न निकली। अचला ने धीरे-धीरे खिड़की बन्द कर दी। बोली-सर्दी से तुम्हारा हाथ काँप रहा है। नंगे खड़े मत रहो-अन्दर जाकर सो रहो!

सुरेश की आँखें जल उठीं, लेकिन उसकी आवाज काँपने लगी-अचला का हाथ अपने हाथ में खींचकर अस्फुट स्वर में बोला-तो तुम भी मेरे कमरे में चलो!

अचला जरा देर अवाक्-विस्मय से उसके मुँह की ओर ताकती रहकर सिर्फ बोली-नहीं, आज नहीं! और धीरे-धीरे उसने अपना हाथ छुड़ा लिया।

इस शान्त और संयत ठुकराहट में क्या था-ठीक-ठीक समझ न पाने के कारण सुरेश चुपचाप खड़ा रहा। अचला उसकी ओर देखे बिना ही बोली-क्या तुम यह जानकर इस कमरे में आये कि मैं जाग रही हूँ?

सुरेश ने चोट-खाए हुए की तरह कहा-और क्या तुम्हें सोई समझकर आया हूँ, यह ख्याल है तुम्हारा?

ख्याल?-अचला मुँह फेरकर जरा हँसी। यह तीखी और सख्त हँसी, धुँधली जोत में भी सुरेश की नजर से न बच सकी। उस हँसी ने मानो साफ शब्दों में उससे कहा-अरे कायर! सोई स्त्री के कमरे में चोर-सरीखा घुसना नहीं चाहिए, पुरुष के इस महत्व का तुम आज भी दावा करते हो? लेकिन वह बोली कुछ नहीं। थोड़ी देर में झरोखे से हटकर खड़ी होती हुई धीरे-धीरे बोली-तुम्हारी तबियत ठीक नहीं, ज्यादा जगो मत, सो जाओ जाकर! कहकर वह अपने बिस्तर पर जाकर, सिर से पाँव तक कम्बल ओढ़कर सो गयी।

सुरेश कुछ देर तक पंगु-सा वहीं खड़ा रहा, और फिर धीरे-धीरे अपने कमरे में चला गया।

(33)

पाँच-छः दिन हुए, दो-तीन नौकर-नौकरानियों के अलावा सब कलकत्ता चले गये। एक मकान-मालिक नहीं गये। जरूरी काम के चलते, जाते-जाते वे न जा सके। इन कै दिनों तक रामचरण बाबू अपने काम में व्यस्त रहे, खास नजर नहीं आते। आज पहले-सुबह ही एकाएक वे ऊपर के कमरे में आ पहुँचे, और सुरमा का नाम लेकर पुकारने लगे। सर्दियों का सवेरा, अब तक कोई जगा न था; पुकार सुनकर अचला हड़बड़ाकर बाहर निकली, और सुरेश भी दूसरे दरवाजे से आँखें मलता हुआ आया। दोनों जनों को दो अलग-अलग कमरे से निकलते देख, बूढ़े की प्रसन्न दृष्टि अचानक संदिग्ध हो उठी, इसे सुरेश ने नहीं देखा, लेकिन अचला ताड़ गयी।

सुरेश की ओर देखते हुए, रामबाबू ने दुःखी-से स्वर में कहा-असमय में आपकी नींद तोड़ दी, बड़ी भूल हो गयी मुझसे!

सुरेश ने हँसकर कहा-गलती क्या! असल में मैं जाग ही रहा था, वरना ढोल पीटकर भी कोई मेरी नींद तोड़ सके, क्या मजाल! पर इतना सवेरे?

बूंढे ने अचला को सम्बोधन करके कहा-आज सुरमा बिटिया पर कुछ उपद्रव करने की जरूरत आ पड़ी है-यह कहकर जरा हँसते हुए उसकी ओर मुखातिब होकर बोले-मेरी खटोली हाजिर है, मुझे तुरन्त बाहर जाना है। दो-तीन बजे से पहले लौट न सकूँ शायद, सो थोड़ा दाल-चावल उबालकर रख लेना बिटिया-उतनी देर को जिसमें आकर मुझे चूल्हा-चक्की न करना पड़े!

कट्टर धार्मिक ये ब्राह्मण, अपनी स्त्री और पतोहू के सिवा और किसी के हाथ का बना भोजन नहीं खाते। उनकी रसोई भी बिल्कुल अलग थी। यहाँ तक की हर कोई उसमें जा भी नहीं सकता था; खुद बीच-बीच में बना लेने की उन्हें आदत थी, जभी घर की औरतें कलकत्ता जा पाई थीं। इन कै दिनों तक वे वहीं करते रहे थे, पर आज एकाएक इस अपरिचित स्त्री पर यह भार देने से, वह अचरज और सबसे ज्यादा डर से अभिभूत हो गयी।

अचला के उदास चेहरे को देखकर रामबाबू ने कहा-तुम सोच रही हो, आखिर यह बुड्ढा आज कह क्या रहा है? रसोई के मामले में इतना परहेज, इतना विचार रखता है-उसे आज यह हो क्या गया? तुम्हारे हाथ के भोजन से अरुचि क्यों होगी? और हो, न हो, उतनी देर से लौटकर चूल्हा फूँकने का जी नहीं चाहता होगा। इतना कहकर अचला के मौन मुखड़े को जरा देर देखकर फिर हँसते हुए बोले-मन-ही-मन तुम जरूर सोच रही हो कि इस बुड्ढे में अचानक इतनी उदारता जब आ ही गयी है, तो मुझे तकलीफ न देकर उस रसोइये के हाथ का खाने से ही तो चल जाता! नहीं बिटिया, वह नहीं चलता!! इस बुड्ढे में आज भी वही कट्टरता है, वही कुसंस्कार है-मर भी जाऊँ तो सन्ध्या-गायत्री न करने वाले इस रसोइये के हाथ का अन्न मेरे गले से नहीं पार हो सकता!!! फिर, बिटिया राक्षसी और तुमको इस बीच मैंने एक ही मान लिया है-यह भी नहीं, पर जितना सोचता हूँ, मुझे लगता है-यह बिटिया भी एक दिन राँध दे-तो वह मेरी अन्नपूर्णा का अन्न न होगा-यह मैं हर्गिज नहीं मानता! मगर अब तो रुक नहीं सकता, कहने को जो बाकी रह गया, खाते वक्त ही कहूँगा!! वहीं सबसे बढ़कर वास्तविक कहना होगा!!! कहकर बूढ़े जाने लगे, कि अचला व्यस्त हो उठी। क्या बोले-आगा-पीछा करते-करते जो बात पहले जबान पर आयी, वही बोल उठी। कहा-मैं तो पकाना वैसा जानती नहीं, मेरे हाथ की रसोई आपको पसन्द नहीं आयेगी।

पलटकर रामबाबू जरा हँसे। बोले-तुम मुझे इसी पर यकीन करने को कहती हो?

अचला ने कहा-हर कोई क्या बढ़िया पकाना जानती है?

वे बोले-सभी जानते हैं, मैं क्या यही कह रहा हूँ?

अचला हठात् इसका कोई जवाब न पाकर चुप रही। लेकिन सुरेश के लिये वहाँ खड़ा रहना असम्भव हो उठा। अचला के फीके पड़े चेहरे की तरफ ताक कर उसने उसकी पीड़ा समझी। इस बूढ़े सज्जन का आचरण भला हो या बुरा, सच हो या झूठ, उन्हें पकाकर खिलाने में जो घिनौनी ठगी है-यह बात अचला से अगोचर नहीं; और इस भली औरत का विवेक किसी भी हालत में, गुप्त रहस्य के कुकर्म से छुटकारा पाना चाहता है-उसके चेहरे पर यह भाव साफ देखकर, वह और किसी ओर देखे बिना, मुँह-हाथ धोने के बहाने जल्दी-जल्दी सीढ़ी से नीचे उतर गया।

तो मैं चलूँ-कहकर रामचरण बाबू भी सुरेश के पीछे हो लिये। अचला कुछ देर हक्की-बक्की-सी खड़ी रही, उसके बाद अपने को सचेतन करके जोर से आवाज दी-जरा सुनिए...

बूढे ने मुड़कर देखा-अचला कुछ कहना चाहती है, मगर नजर झुकाए चुपचाप खड़ी है। सो वे कुछ कदम आगे बढ़ आये। बोले-एक बात और कहनी है बिटिया! जब तुम्हारी हिचक जाना ही नहीं चाहती, तो-जानती हो सुरमा, बचपन में मैं मुहल्ले-भर का मँझले भैया था। शायद हो कि तुम्हारे पिता से उम्र में मैं छोटा भी न होऊँ! फिर तुम मुझे बड़े चाचा क्यों नहीं कहतीं?

अचला जानती थी कि बूढ़े उसे बहुत स्नेह करते हैं, प्यार के इस प्रकट रूप से उसकी आँखों के कोने में आँसू झलक पड़ा। इसलिये सिर हिलाकर उसने केवल हामी भरी।

उन्होंने पूछा-और कुछ कहोगी?

अचला जरा देर जमीन देखती रही, उसके बाद शायद सारी शक्ति बटोरकर अस्फुट स्वर में कहा-मेरे पिताजी लेकिन ब्राह्म थे!

रामचरण बाबू सहसा चौंक उठे-वास्तव में कलकत्ता में लोग जैसे शौकिया दो दिनों के लिये बन जाते हैं? ऐसे लोग ब्राह्मों के साथ बैठ छूटकर हिन्दुओं को गालियाँ देते हैं-वैसी गाली सच्चे ब्राह्म कभी जबान पर भी नहीं ला सकते-और उसके बाद अपने घर वापस जाकर, अपने समाज में ब्राह्मों को वैसी ही खरी-खोटी सुनाते हैं-ऐसी कि वैसे वचन हिन्दुओं के सात-पुश्त भी नहीं सुना सकते! ऐसे ही ब्राह्म न? ऐसे हों तो मुझे जरा भी आपत्ति नहीं!

अचला का चेहरा शर्म से रंग गया। वह बोली-नहीं, सच्चे ब्राह्म! जवाब से बूढ़े जरा पस्त-से पड़ गये। जरा देर में बोले-ब्राह्म ही हुए तो क्या? उनकी लड़की तो आखिर अछूत नहीं कि डरे। बल्कि जिसके धर्म में तुमने हाथ बँटाया है, वे जब हिन्दू हैं, जब उनके गले में यज्ञोपवीत है, और इन कुछ धागों का आज तक उन्होंने अपमान नहीं किया है-तो बाप का कर्म तुम्हें नहीं छू सकता। आज तुम जितने ही मनसूबे गाँठो, बूढ़े चाचा से निकल नहीं सकती!! रसोई आज तुम्हें करनी ही पड़ेगी!!! ओ! जभी पिता के पढ़ाए पाठ के नाते, उस

दिन तुमने उपवास से कन्नी कटाई? आज इसे सूद-समेत वसूल कर तब तुम्हारी जान छोड़ूँगा! रामबाबू फिर जाने को हुए। अचला अपनी उस जड़ता को जीत गयी। पूछा-अच्छा बडे चाचाजी, मैं ब्राह्म होऊँ तो आप मेरे हाथ का नहीं खायेंगे?

बूढ़े ने कहा-नहीं! मगर तुम तो वह हो नहीं, हो नहीं सकतीं!!

अचला ने पूछा-लेकिन वही होती-तो मैं सिर्फ इसीलिये आपके लिये अछूत हो जाती कि मेरा धर्ममत अलग है?

उन्होंने कहा-अछूत क्यों होने लगी बिटिया, अछूत नहीं होती! तुम्हारे हाथ का खाता नहीं, बस!!

इसके बारे में आज उसे बहुत-कुछ जानना था। इसी से वह चुप नहीं रह सकी। बोली-क्यों नहीं खाते? घृणा से?

बूढे से कोई जवाब देते न बना, एकटक उसे देखते रह गये।

अचला सारा संकोच छोड़ चुकी थी। बोली-बड़े चाचाजी, आपको दयामाया कितनी बड़ी है-इसके बहुत-से सबूत दुनिया में हैं-जानती हूँ मैं, मगर उसका हमसे बड़ा सबूत कोई नहीं! लेकिन आप जैसे का हृदय इतना अनुदार कैसे हो सकता है, मैं सोच नहीं पाती!! आप मनुष्य को इस तरह घृणा कैसे कर सकते हैं?

रामबाबू अचानक अकुलाकर बोले-मैं घृणा करता हूँ? किसे? कब? अचला ने कहा-जिसके हाथ का छुआ आपके लिये अस्पृश्य है, वही आपकी घृणा का पात्र है! मन में आप उसी को घृणा करते हैं!! लेकिन जमाने की आदत है, इसलिये यह भी नहीं पता है कि घृणा करते हैं!!! नौकर को छोड़िए, पाठकजी का पकाया भी आपके गले से नीचे नहीं उतर सकता, आप खुद कह चुके हैं! इससे मुल्क का कितना बड़ा नुकसान, कितनी अवनति हुई है, यह तो...

रामबाबू चुपचाप सुन रहे थे, अचला के जोश को भी गौर कर रहे थे। उसका कहना जब खत्म हुआ, तो बोले-घृणा हम किसी को नहीं करते बिटिया! जो नालिश तुमने की, यह नालिश साहब लोग करते हैं-उनसे तुम्हारे पिता ने सीखा, और अपने पिता से तुमने

सीखा!! नहीं तो मनुष्य भगवान है, यह ज्ञान केवल उन्हीं को नहीं, हमें भी था, आज भी है!!!

इतने में नीचे कुछ शोर-गुल-सा सुनाई पड़ा, एक पल उधर ध्यान देकर उन्होंने कहा-सुरमा, जिनके लिये खाना बहुत बड़ी चीज है, बडे तूल-कलाम की बात है, उनसे अपना मेल नहीं बैठ सकता! हमारे यहाँ यह खाना बड़ी मामूली चीज है-आज जरा इसका इन्तजाम कर रखना, फिर खाते-खाते बात होगी कि घृणा हम किससे-कितनी करते हैं, और उससे देश की कितनी अवनति हुई-लेकिन शोरगुल बढ़ रहा है-मैं अब चला! कहकर वे जरा तेजी से उतर गये।

(34)

तीसरे पहर के करीब जब खाकर तृप्ति की डकार लेते हुए रामबाबू उठने लगे, तो बड़े कष्ट से हल्का हँसकर अचला ने कहा-लेकिन चाचाजी, जिस दिन आप जानेंगे कि आज आपकी जात गयी, उस दिन आप मुझ पर नाराज न होने पायेंगे लेकिन।

रामबाबू ने मीठा हँसकर गर्दन हिलाते हुए कहा-अच्छा, अच्छा-वही होगा बिटिया-और वे हाथ धोने चले गये। उनके खड़ाऊँ की खटखट जब तक सुनाई देती रही, अचला सम्पूर्ण दृष्टि से तब तक मानो उसी का अनुकरण करती रही; कब यह आवाज खो गयी, कब बाहरी दुनिया ने उसकी चेतना से लुप्त होकर उसे पत्थर बना दिया-उसे इसकी खाक भी खबर न हुई।

बहुत दिनों से यहाँ काम करने वाली इधर की नौकरानी, बंगालियों के तौर-तरीके के साथ-साथ कुछ-कुछ बँगला भी सीख गयी थी। वह किसी काम से इधर आयी, तो बहूजी के बैठने के ढंग से दंग रह गयी। बड़ी होने के नाते, अधसीखी बँगला को डाँट के शब्द का इस्तेमाल करके-बेला की ओर अचला का ध्यान दिलाते हुए पूछा-आज खाने-पीने का भी काम होगा, कि यों ही चुपचाप बैठे रहने से काम चल जायेगा?

चौंककर अचला ने देखा-बेला जाती रही थी। साँझ हो चली थी। एक चमकहीन मैलापन, थकावट जैसा तमाम आसमान में फैल गया था; वह शरमाकर उठ खड़ी हुई और बोली-मैंने तो शाम के बाद ही खाने की सोची है लालू की माँ! आज भूख-प्यास बिल्कुल नहीं है!!

लालू की माँ हैरान होकर बोली-अभी-अभी तो कहा था बहूजी, कि बड़े बाबू खा लें, तब तुम खाओगी!

नः-एकबारगी रात को ही खाऊँगी-कहकर तर्क का मौका न देकर अचला जल्दी से ऊपर चली गयी।

थोड़ा-सा समय मिलता, कि वह रेलिंग के पास कुर्सी खींचकर चुपचाप नदी की ओर देखा करती। आज रात भी वैसे ही बैठी थी, अचानक रामबाबू के चप्पलों की आहट से उसने मुड़कर देखा-वे बिल्कुल बीच में आ खड़े हुए थे, और कुछ कहने से पहले ही, नारियल को एक ओर टिकाकर एक कुर्सी खींचकर बैठ गये। जरा हँसकर बोले-आज उसी बात का फैसला करने आया हूँ सुरमा-तुम्हारा ब्रह्मज्ञानी पिताजी ठीक हैं-कि इस बूढ़े चाचा की बात ठीक है-इसका आज कोई हल निकाले बिना नीचे नहीं जाता!

अचला समझ गयी, यह सवाल जाति-भेद वाला है। थकी हुई आवाज में बोली-तर्क भला मैं क्या जानती हूँ चाचाजी!

रामबाबू ने सिर हिलाकर कहा-अरे बाप रे! तुम किसी मामूली आदमी की बेटी हो? लेकिन बात झूठी है, यही गनीमत है, नहीं तो उस समय तो मैं हार ही जाता! किसी बात पर तर्क करने लायक मन की अवस्था अचला की न थी, इस तर्क-युद्ध से छुटकारा पाने का जरा-सा मौका पाकर बोली-तो फिर तर्क की क्या पड़ी है चाचाजी? आप ही की जीत हुई। जरा रुककर बोली, जो हार चुकी है, उसे दुबारा हराने से क्या लाभ?

रामबाबू ने तुरन्त कोई जवाब नहीं दिया। उम्र वाले आदमी ठहरे, दुनिया में उन्होंने बहुत-कुछ देखा-लिहाजा इस सिमटी आवाज का मर्म भी जैसे उनसे छिपा न रहा, वैसे ही उसके थके-पीले चेहरे पर इसकी छाप भी वे साफ देख पाए, कि यह लड़की सुखी नहीं है, कोई एक पीड़ा चिमनी की आग-सी रात-दिन उसके अन्दर जल रही है। वे जरा देर चुप रहे,

और हँसने की कोशिश करते हुए स्नेह से बोले-नः बहाना न चला! बूढ़ा आदमी, बकबक करना अच्छा लगता है, साँझ को अकेले दम घुटने लगता है, इसीलिये सोचा कि झूठ-सच कहकर बिटिया को जरा चिढ़ा दूँ, मगर कलई खुल गयी!! झुककर उन्होंने हुक्के के लिये हाथ बढ़ाया।

अचला समझ गयी कि वे जाने की तैयारी कर रहे हैं, और नीचे जाकर मुश्किल से ही इनका समय कटेगा, यह समझकर उसका मन दुःखी हो गया। सो वह खुद उठी, और अपने से हुक्का उनकी तरफ बढ़ाते हुए बोली-जी चाहे आप जितना तम्बाकू यहाँ बैठकर पियें! मगर अभी मैं आपको जाने नहीं दूँगी!!

हुक्का हाथ में लेकर वे बोले-लगाम इतनी ढीली मत करो बिटिया, अन्त तक सम्हाल नहीं सकोगी! मुँह बन्द किये मेरा तम्बाकू पीना तो तुमने देखा ही नहीं है!! उससे बल्कि कुछ कहने-सुनने दो...

-ताकि दम न घुट जाये, हूँ न बड़े चाचाजी! खैर, ठीक है। मगर बक-बक होगी काहे पर? रामबाबू ने मुँह का धुआँ ऊपर की ओर छोड़ते हुए कहा-यही तो मुसीबत कर दी तुमने! महावक्ता से यह पूछने पर उसकी जबान जो बन्द हो जाती है!! -अच्छा, चाचाजी, कभी अगर आपको यह मालूम हो कि आज जबर्दस्ती जिसका पकाया भात खाया है, उसके जैसी नीच, घृणित, इस दुनिया में, कोई नहीं-तो क्या करेंगे आप? प्रायश्चित? और कहीं शास्त्र में उसकी विधि ही न हो, तो?

रामबाबू बोले-फिर तो बला ही चुक गयी! प्रायश्चित करना ही नहीं पड़ेगा!

-मगर तब मुझ पर कितनी घृणा होगी आपको?

-कब?

-जब पता चलेगा कि मेरी कोई जात ही नहीं!

होंठ से हुक्का हटाकर उस मद्धिम रोशनी में ही कुछ देर तक उसे देखकर रामबाबू धीरे-धीरे बोले-तुम सबकी यही बात मैं किसी भी तरह समझ नहीं पाता। तुम सबकी क्यों

कहता हूँ-जानती हो सुरमा? अपने लड़के के मुँह से भी यह नालिश सुनी है मैंने! वह तो खोलकर ही कहता है-कि इस छूत-छात के भूत से ही तो देश धीरे-धीरे रसातल को जा रहा है!! क्योंकि इसकी जड़ में घृणा है, और घृणा का कभी अच्छा परिणाम नहीं होता!!

अचला मन-ही-मन बहुत चकित हुई। उसकी यह धारणा ही नहीं थी, कि किसी भी बहाने इस घर में इस आलोचना का प्रवेश हो सकता है। बोली-बात क्या झूठी है?

रामबाबू जरा हँसकर बोले-झूठ है या नहीं, मान लो यह न कहूँ; परन्तु सच नहीं है! शास्त्र के कानून-कायदों पर चलता हूँ, बस, इतना ही! जो इससे भी आगे जाते हैं, मसलन मेरे गुरुदेव, वे खुद पकाकर खाते हैं!! लड़की तक को नहीं छूने देते!!!

अचला जवाब न दे सकी। चुप रही।

रामबाबू ने हुक्के में और दो-चार दम लगाये। लगाकर बोले-जवानी में मैं बहुत घूमा। कितने वन-जंगल, पर्वत-पहाड़ और कैसे-कैसे लोग, कितने तरह के आचार-विचार, उन सबका नाम शायद तुम लोगों को मालूम न हो-कहीं खान-पान का विचार है, कहीं उसकी बू-बास भी नहीं, फिर भी सदा वैसे ही असभ्य हैं, उतने ही छोटे! यह कहकर जले तम्बाकू में बेकार ही और दो-चार कश लगाया, और अन्त में खम्भे से उसे टिका दिया। अचला जैसी चुप बैठी थी, बैठी रही।

रामबाबू स्वयं भी जरा देर चुप रहे, फिर सीधे बैठकर बोले-असली बात क्या है, जानती हो सुरमा, तुम लोगों ने साहबों से पाठ पढ़ा है। वे उन्नत हैं, वे राजा हैं, धनी हैं! उन लोगों में अगर पैर उठाकर हाथ के बल चलने का रिवाज होता, तो तुम लोग कहते-ठीक इसी तरह चलना सीखे बगैर तरक्की की कोई उम्मीद नहीं! ऐसी दलीलें अचला ने अखबार में बहुतेरी पढ़ी थीं, लिहाजा कुछ बोली नहीं, जरा हँसी। वह हँसी रामबाबू ने देखी, लेकिन नहीं देखी है-कुछ इस ढंग से दुहराते हुए कहने लगे-श्री-धाम, श्रीक्षेत्र में जब जाता हूँ, जाने कितने अजाने लोगों की भीड़ में होता हूँ। वहाँ छुआछूत की बला नहीं है, सोचने को जी भी नहीं होता! मगर इसका जन्म अगर घृणा से होता, तो क्या इस आसानी से ऐसा कर पाता? यही

समझो कि मैं किसी का छुआ नहीं खाता, लेकिन राह के गरीब-से-गरीब को भी, मन में कभी घृणा से देखा है-?

अचला व्याकुल स्वर में बोल उठी-मैं क्या आपको जानती नहीं, बड़े चाचाजी? दुनिया में इतनी दया किसे है?

दया नहीं बिटिया, दया नहीं-प्रेम! मैं जैसे उन्हीं लोगों को ज्यादा प्रेम करता हूँ! लेकिन असली बात बताऊँ तुम्हें, क्या कोई जात और क्या कोई आदमी, जब धीरे-धीरे वह हीन हो जाता है-तो सबसे नाचीज के मत्थे ही सारा दोष मढ़कर सान्त्वना पाता है। सोचता है-इस आसान रुकावट को सम्हालते ही रातो-रात वह बड़ा हो जायेगा। हम लोगों का भी ठीक यही रवैया है! लेकिन जो कठिन है, जो जड़ है...

बात पूरी करने का समय न मिला। सीढ़ी पर जूते की आवाज हुई। मुड़कर देखते ही सुरेश पर नजर पड़ी, और पूछ बैठे-अच्छा सुरेश बाबू, आप तो हिन्दू हैं, आप तो हमारे जाति-भेद को मानते हैं?

सुरेश सकपका गया। यह कैसा सवाल? जिस दलदल पर वे चल रहे हैं, उसे हर कदम पर टटोले बिना कदम बढ़ाने से किस गहराई में धँस पड़ेंगे-उसका क्या पता? इसलिये सत्य है या नहीं, इसकी भी कसौटी जरूरी है। इसलिये डरते हुए वह करीब गया, और अचला की ओर ताक कर मतलब भाँपने की कोशिश की। लेकिन उसकी शक्ल दिखाई न पड़ी। सो जरा सूखा-सा हँसकर लटपटाता-सा बोला-हम क्या हैं, यह तो आप सब जानते हैं रामबाबू।

रामबाबू बोले-खूब जानता हूँ! यही तो ख्याल था!! लेकिन आपकी देवीजी जो पासा ही पलट देना चाह रही हैं। कहती हैं-कि जाति-भेद सरीखे इतने बड़े अन्याय, इतने बड़े अनर्थ को वे हर्गिज कबूल नहीं कर सकतीं; म्लेच्छ के हाथ का खाने में उन्हें उज्र नहीं! यह शिक्षा जन्म से ही उन्हें अपने पिता से मिली है। उनके हाथ का भोजन खाकर मेरी जात गयी या रही? प्रायश्चित की जरूरत है कि नहीं, अब तक इसी पर बातें हो रही थीं। आपका क्या ख्याल है?

सुरेश अवाक्! अचला का मिजाज उससे छिपा नहीं, तथा बगावत की आग वहाँ हर वक्त सुलग ही रही है-यह खबर भी उसके लिये नयी न थी। लेकिन अकस्मात् वह आग आज कैसे भड़की और कहाँ तक फैली, इसका अन्दाजा न लगा पाकर, शंका और उद्वेग से वह सूख गया। लेकिन तुरन्त अपने को सम्हाल कर, पहले ही जैसा हँसने की कोशिश की, पर अबकी उस कोशिश ने हँसी को दबाकर महज चेहरे को ही बिगाड़ दिया।

रामबाबू ने सिर हिलाकर कहा-गरचे, यह वाजिब नहीं, फिर भी ऐसा सोचने में मुझे आपत्ति न थी; लेकिन पति के कल्याण की खातिर भी जब हिन्दू घर की स्त्री ने कर्त्तव्य का पालन न करना चाहा; तुलसी चढ़ाने के दिन भी हर्गिज उपवास न किया-खैर, मजाक भी हो, तो यह सख्त है जरा! अच्छा सुरेश बाबू, विवाह तो हिन्दू-मत से हुआ था?

सुरेश ने कहा-हाँ!

वे धीमे-धीमे हँसने लगे। कहा-मैं तो जानता हूँ! अचला की ओर देखकर बोले-तुमसे कहने को यों बातें तो बहुत हैं। पर अब तुम्हारे पिता के ब्राह्म होने का मुझे कोई गम नहीं! ऐसे अनेक ब्राह्मों को मैं जानता हूँ, जो समाज में जाकर आँखें भी बन्द करते हैं। थोड़ा-बहुत अनाचार भी करते हैं। किन्तु लड़की के ब्याह में हिसाब का गोलमाल नहीं करते। खैर, एक फिक्र मेरी जाती रही!

लेकिन उनसे भी ज्यादा फिक्र टली सुरेश की। वह बूढ़े की हाँ-में-हाँ मिलाते हुए बोल उठा-आप बजा फरमा रहे हैं! आज-कल ऐसे ही लोग ज्यादा हैं! वे...

हठात् दोनों चौंक उठे। बीच ही में अचला का तीखा स्वर मानो गरज उठा। सुरेश की आँखों पर तेज नजर गड़ाती हुई बोली-इतने गुनाहों के बाद भी, गुनाह बढ़ाने में तुम्हें शर्म नहीं आती? तुम तो जानते हो, मेरे पिताजी फरेबी नहीं, मन-वचन से वे वास्तव में ब्राह्म हैं! तुम्हें मालूम है वे... कहते-कहते वह कुर्सी पर से उठ गयी।

सुरेश पहले तो जरा सकपकाया, पर मुड़कर आश्चर्य से बड़ी-बड़ी हुई बूढ़े की आँखों को देखकर, वह भी मानो यकायक जल उठा। बोला-झूठ क्या है? तुम्हारे पिता क्या हिन्दू घर में तुम्हारी शादी करने को तैयार नहीं थे? सच बताओ!

अचला ने जवाब नहीं दिया। शायद थोड़ी देर चुप रहकर उसने अपने को सम्हाल लिया, और धीरे बोली-यह बात आज मुझसे क्यों पूछ रहे हो? इसके कारण को दुनिया में सबसे ज्यादा क्या तुम नहीं जानते? तुम्हें खूब मालूम है कि मैं क्या हूँ, मेरे पिताजी क्या हैं, मगर इसके लिये तुमसे झगड़ने की मुझे इच्छा नहीं-इतना ही नहीं-शर्म आती है! तुम्हारी जैसी इच्छा हो, बनाकर उन्हें बताओ!! मैं नहीं सुनना चाहती!!! कहो-मैं जाती हूँ-और वह तेजी से ही बगल के कमरे में चली गयी।

वह चली गयी। पर ये दोनों कुछ देर के लिये पत्थर-से निश्चल हो रहे।

बूढ़े ने शायद मन की भूल से ही-एक बार हुक्के के लिये हाथ बढ़ाया लेकिन तुरन्त अपना हाथ खींचकर जरा हिले-डुले, खखारकर गले को साफ किया और बोले-आजकल सेहत कैसी है सुरेश बाबू?

सुरेश अनमन हो पड़ा था। चौंककर बोला-जी, ठीक है! कहते ही उसे सच्चाई की याद आयी-फिर बोला-छाती में जरा यहाँ पर दर्द है-क्या जाने कल से बढ़ा या...

रामबाबू बोले-कहिए तो भला, ऐसे में जाड़े की रात में; इतनी देर तक बाहर घूमना क्या ठीक है?

ठीक घूमना नहीं था, एक मकान के लिये आज दो हजार रुपया बयाना दे आया।

रामबाबू ने अचरज किया। फिर कहा-नदी पर है, अच्छा मकान है, मगर मुझसे पूछते तो मैं मना करता! उस दिन बातों-बातों में समझ गया था-सुरमा को यहाँ रहना पसन्द नहीं। हँसकर बोले-उससे पूछ लिया है, या अपनी ही राय से खरीद लिया? सुरेश ने इसका जवाब न देकर कहा-नापसन्द का तो खास कोई कारण नहीं देख रहा हूँ! रहने लायक कुछ सामान भी कलकत्ता से मँगवाया है, आशा है, कल-परसों तक आ जायेगा!!

रामबाबू थोड़ी देर चुप रहे, फिर कुछ सोचकर पुकारा-सुरमा! अचला ने जवाब नहीं दिया लेकिन कमरे से बाहर आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गयी। बूढ़े ने स्नेह से कहा-तुम्हारे पति ने

तो यहाँ बहुत बड़ा मकान खरीद लिया! अब तो बूढ़े चाचा को छोड़कर तुम जा नहीं सकोगी!!

अचला चुप रही।

बूढ़े ने फिर कहा-घर और असबाब ही नहीं, मैं जानता हूँ, गाड़ी-घोड़ा भी आ रहा है, और उससे भी ज्यादा यह जानता हूँ कि यह सारा कुछ तुम्हारे ही लिये! कहकर हँसते हुए एक बार उन्होंने अचला को और एक बार सुरेश को देखा। लेकिन उस गम्भीर और उदास मुखड़े पर खुशी की कोई झलक ही न दिखी। इस धुँधले प्रकाश में औरों को शायद यह नहीं दीखता, मगर बूढ़े की पैनी निगाह न चूकी। तो भी उन्होंने पूछा, लेकिन बिटिया, तुम्हारी राय...

अचला अब बोली। कहा-मेरी राय की तो जरूरत नहीं, चाचाजी!

रामबाबू झट से बोल उठे-यह कैसी बात? तुम्हीं तो सब हो, तुम्हारी ही इच्छा से...

अचला उठ खड़ी हुई; बोली-नहीं चाचाजी, नहीं; मेरी इच्छा से कुछ नहीं आता-जाता! आप सब समझ नहीं पायेंगे; मैं आपको समझा भी नहीं सकूँगी-मगर अब इजाजत दे दें तो मैं जाऊँ...

बूढ़े के मुँह से बात नहीं निकली, उसकी जरूरत भी नहीं हुई।

एकाएक नौकरानी एक कड़ाही में आग ले आयी। सबका ध्यान उसी पर जा टिका। रामबाबू अचरज से पूछना चाह रहे थे, सुरेश ने अप्रतिभ होकर कहा-मैंने बैरा से लाने को कहा था, देख रहा हूँ, उसने दूसरे को यह हुक्म दे दिया! जहाँ पर दर्द है, वहाँ जरा...

आग की जरूरत की व्याख्या नहीं करनी पड़ी, लेकिन उसके लिये तो एक जने की और जरूरत थी। रामबाबू ने अचला की ओर देखा, लेकिन उसने तुरन्त मुँह फेर कर शान्त स्वर में कहा-मुझे बड़ी नींद लग रही है चाचाजी, मैं चलती हूँ! कहकर उत्तर का इन्तजार किये बिना ही चली गयी और तुरन्त दरवाजा बन्द करने की आवाज हुई। रामबाबू कुर्सी पर से उठ गये, और नौकरानी के हाथ से आग की कड़ाही लेकर बोले-चलिये सुरेश बाबू-

-आप?

-हाँ, मैं! कुछ नई बात नहीं, जीवन में यह काम बहुत कर चुका हूँ, और एक प्रकार से जबर्दस्ती ही उसे उसके कमरे में खींच ले गये। आग की कड़ाही को फर्श पर रक्खा; कुछ देर एकटक उसे देखते रहे, और तब उसका एक हाथ दबाकर कहा-नहीं, नहीं सुरेश बाबू, यह हर्गिज नहीं हो सकता, हर्गिज नहीं! मैं समझ रहा हूँ, कुछ हुआ है, मैं एक बार-लेकिन छोड़िए-जरूरत होगी तो फिर-कहकर वे चुप हो गये।

सुरेश एक शब्द भी न कह सका। लेकिन बच्चों-सरीखे एक बार उसके होंठ काँप उठे, और आँसू छिपाने के लिये उसने मुँह फेर लिया।

(35)

सुरेश एक सोफे पर आँख मूँदकर पड़ा था, और सामने एक कुर्सी खींच कर रामबाबू उसकी दुखती छाती पर सेंक दे रहे थे; ऐसे समय द्वार खोलने की आवाज हुई। देखा-अचला आ रही है। उसने बिना किसी आडम्बर के कहा-रात काफी हो गयी चाचाजी! आप सोने जाइए!!

इसी के तो इन्तजार में था बिटिया!-कहकर रामबाबू झट खड़े हो गये और सुरेश को देखकर कहा-इतनी देर तक विडम्बना के सिवा और क्या भोगते रहे हम दोनों? भला यह काम हम लोगों से होने का है? अचला की तरफ कुर्सी को जरा बढ़ावा देते हुए बोले-जिसका काम उसी को सुहाता है! लो, बैठो। मैं जरा हाथ-पाँव पसारूँ। थकावट के भार से एक लम्बी जम्हाई लेकर दो-तीन बार चुटकी बजाकर उन्होंने हुक्का उठाया, और बाहर जाकर सावधानी से दरवाजे को बन्द करते हुए हँसकर बोले-गनीमत है, ऊँघते हुए हाथ-पाँव न जला बैठा! क्यों सुरेश बाबू?

सुरेश ने कुछ कहा नहीं, सिर्फ हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

अचला चुपचाप उनकी छोड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गयी। सेंक देने के कपड़े को तपाती हुई बोली-फिर कैसे दर्द हो गया? कहाँ पर लगता है?

सुरेश ने न तो आँखें खोलीं, न वह बोला; सिर्फ हाथ से छाती की बाईं ओर दिखा दिया। फिर सन्नाटा। ऐसा सन्नाटा, लगने लगा कि इस मौन अभिनय के अन्तिम अंक तक यह मौन ही चलेगा। लेकिन वैसा हुआ नहीं। सहसा अचला के फ्लानेल-समेत हाथ को सुरेश ने अपनी छाती पर कस कर दबा लिया। अचला के चेहरे पर उद्वेग का कोई चिद्द नहीं दीखा, वह यही उम्मीद कर रही थी; केवल इतना कहा... छोड़ो, थोड़ा और सेंक दूँ!

सुरेश ने हाथ छोड़ दिया, लेकिन देखते-ही-देखते उठकर, दो व्याकुल बाँहें बढ़ाकर अचला को खींच लिया, और अपनी छाती से कसकर दबाते हुए असंख्य चुम्बनों से उसे अभिभूत कर दिया। एक क्षण पहले जैसे यह लगा था-कि इस आवेग-उच्छ्वासहीन नाटक का अन्त ऐसी ही निर्जीव नीरवता में होगा; पर एक पल बीतते-न-बीतते फिर यह लगने लगा कि इस बौखलाई उन्मत्तता की शायद सीमा नहीं, शेष नहीं-सभी ओर, सब समय ही यह उन्मत्तता मानो अजर, अमर होकर रहेगी। कभी किसी युग में भी इसका विराम न होगा, विच्छेद न होगा!

अचला ने बाधा नहीं दी, जोर नहीं लगाया, लगा कि इसके लिये भी वह तैयार ही थी; केवल उसका शान्त मुखड़ा एक बार पत्थर की तरह बेदर्द और सख्त हो गया। सुरेश को होश नहीं था, शायद सृष्टि के घोरतम अँधेरे से उसकी दोनों आँखें बिल्कुल अन्धी हो गयी थीं-नहीं तो उस मुखड़े को चूमने की शर्म और बेइज्जती उसकी समझ में आ भी सकती थी। समझ नहीं आयी ठीक, लेकिन थकावट से ही जब यह पागलपन फिर हो गया, तो अपने को धीरे-धीरे उससे छुड़ाकर अचला अपनी जगह पर आ बैठी।

कुछ क्षण जब दोनों के चुपचाप कट गये, तो एक लम्बा निश्वास फेंकते हुए सुरेश बोल उठा-इस तरह से हम लोगों की कब तक कटेगी अचला? कहकर उसने किसी उत्तर का इन्तजार नहीं किया और कहने लगा-तुम्हारा कष्ट मैं जानता हूँ, मगर मेरे दुःख को भी सोच देखो। मैं तो गया।

अचला ने इसका जवाब नहीं दिया। पूछा-तुमने यहाँ मकान खरीदा है? बड़े आग्रह से सुरेश बोल उठा-तुम्हारे ही लिये अचला!

अचला ने इसका भी जवाब न दिया। फिर पूछा-चीज-बस्त, गाड़ी घोड़ा भी मँगाया है?

सुरेश ने उसी तरह से जवाब दिया-सब तो तुम्हारे ही लिये!

अचला चुप रही। इससे उसे क्या जरूरत, यह उसे चाहिए या नहीं, उस आदमी से यह पूछने जैसा अपने ऊपर व्यंग्य दूसरा और क्या है? इसलिये इसके बारे में और कुछ न कहकर वह चुप हो रही। जरा देर चुप रहकर पूछा-रामबाबू के सामने तुमने मेरे पिताजी का नाम लिया? घर बताया है?

सुरेश ने कहा-नहीं।

-और सेंक देने की जरूरत है?

-नहीं।

-तो मैं जाती हूँ। मुझे बड़ी नींद आ रही है!-अचला कुर्सी पर से उठ गयी। आग की कड़ाही को हटाकर बाहर से दरवाजा बन्द करने जा रही थी, कि सुरेश हड़बड़ में उठकर बोला-एक बात बताती जाओ अचला! तुम क्या और कहीं जाना चाहती हो? सच कहो?

अचला ने पूछा-और कहाँ?

सुरेश बोला-जहाँ भी हो! जहाँ हमें कोई नहीं जानता, कोई नहीं पहचानता, ऐसी किसी जगह, वह देश जितना...

आवेश में सुरेश की आवाज काँपने लगी, अचला ने इस पर गौर किया, लेकिन वह बहुत ही स्वाभाविक और सहज स्वर में बोली-यहाँ भी तो हमे कोई नहीं पहचानता था, आज भी नहीं पहचानता!

उत्साह पाकर सुरेश कहने लगा-लेकिन धीरे-धीरे...

टोककर अचला बोली-धीरे-धीरे जान जायेंगे? हाँ जान सकते हैं, लेकिन यह खतरा तो और कहीं भी है!

सुरेश उमंग में आकर कहने लगा-तो यही तै रहा! यही तुम्हारी राय है, कहो? साफ-साफ कहो एक बार-कहते-कहते जाने किसने तो उसे ढकेल कर उठा दिया। लेकिन अकुलाए पैर को बढ़ाते ही देखा-द्वार बन्द करके अचला चली गयी है।

कई दिनों से बदली घिर रही थी। बारिश के आसार थे। सुरेश के नये मकान में कलकत्ते से आये ढेरों सामान जमा थे, उन्हें सहेज लेने का आग्रह किसी में न था। दो घोड़े, एक गाड़ी भी आयी थी-वह साईस के जिम्मे किसी अस्तबल में पड़ी है, कोई इसकी खोज नहीं लेता। जैसे-तैसे दिन बीतते जा रहे थे। ऐसे में एक दिन दोपहर को, रामबाबू एक हाथ में हुक्का और दूसरे में एक नीला लिफाफा लिये आ पहुँचे-अचला रेलिंग के पास सोफे पर अधलेटी पड़ी, किसी मासिक पत्र का विज्ञापन पढ़ रही थी। चाचाजी को देखकर उठ बैठी। चिट्ठी बढ़ाते हुए रामबाबू बोले-यह लो अपनी राक्षसी का पत्र! इतने दिन वह तुम्हें लिख नहीं सकी, इसके लिये मेरे पत्र में तुमसे हजार बार माफी माँगी है, असंख्य प्रणाम भी लिखा है। उसे माफ कर दो! हँसते हुए उसके हाथ में चिट्ठी देकर वे पास ही एक कुर्सी खींचकर बैठ गये, और नदी की ओर देखते हुए हुक्का पी-पीकर धुएँ से अँधेरा करते रहे।

अचला ने दो बार शुरू से आखिर तक पत्र को पढ़ने के बाद सिर उठाया। बोली-तो ये सब परसों सुबह की गाड़ी से आ रहे हैं? ये फूफी कौन, चाचाजी? और उनकी राजपुत्र-वधू? राजपुत्र के गार्जन-ट्यूटर...

रामबाबू ने हँसकर कहा-दिल्लगी का मौका हाथ आ जाये, तो यह बिटिया राक्षसी चूकने की नहीं! फूफी हुई मेरी छोटी विधवा बहन, और राजपुत्र-वधू यानी उनकी लड़की-भण्डारपुर के भवानी चौधरी की स्त्री-खैर, कहने को कोई जो कहे, राजा-रजवाड़ा-सा ही घर है! राजपुत्र हुआ उसी का दसेक बरस का लड़का-और यह आखिरी आदमी क्या है, यह तो आँखों देखे बिना बता नहीं सकता बेटी। होंगे कोई ज्यादा तनखा के नौकर-चाकर! बड़े आदमी के बेटे के साथ घूमते-फिरते हैं, यह वह जानते-अजानते जुगाकर, बालिग-नाबालिग सबका मन रखते हैं-ऐसे ही कुछ होंगे! मगर मैं इसकी तो नहीं सोचता सुरमा, आयें, खायें-पियें, पश्चिम के हवा-पानी से गले और छाती की जलन दो दिन स्थगित हो तो खुशी ही होगी; मगर फिक्र तो यह है कि घर अपना छोटा है-राजे-रजवाड़ों की सोचकर बनवाया भी नहीं,

घर-द्वार की व्यवस्था भी उसके अनुकूल नहीं! साथ में नौकर-नौकरानी भी शायद जरूरत से तिगुने आयें। इसी से मैं सोच रहा हूँ, अगर तुम्हारे घर को...

अचला व्यस्त होकर बोली-लेकिन उसका अब समय कहाँ, चाचाजी! फिर अकेले इतनी दूर रहना उनके लिये सुविधाजनक होगा?

रामबाबू ने कहा समय है, बशर्ते कि अभी से जुट जाया जाये! जगह तैयार रहे तो किसे-कहाँ सुविधा होगी, इसका हल सहज ही हो जायेगा। सुरेश बाबू तो सुनते ही इक्के पर सवार होकर चले गये-तुम्हारी गाड़ी भी तैयार होकर आयी समझो, तुम खुद अगर जल्द तैयार हो जाओ बिटिया, तो इतने में मैं भी जूते बदल कर चादर ले आऊँ। सच पूछो तो तुम्हारी गिरस्ती का ठीक-ठिकाना तो हम लोगों से होगा नहीं!

अचला कुछ देर चुप रही फिर उठ खड़ी हुई। बोली-अच्छा, मैं कपड़े बदल लेती हूँ। कहकर धीरे-धीरे चली गयी।

रामबाबू का प्रस्ताव न तो असंगत था, न अस्पष्ट। राजकुमार और राजमाता को जगह देने के लिये उसे यह आश्रम छोड़ना पड़ेगा, अचला समझ गयी; लेकिन समझना सहज होने से ही भार हल्का नहीं हो जाता। वह मन में जितनी दूर तक गया, स्टील के रोलर की नाईं सब-कुछ को पीसता हुआ चला गया।

इतने दिनों में कोई भी उसे घर से बाहर निकलने को राजी नहीं कर सका था। पन्द्रह मिनट बाद, आज पहली बार जब वह अपनी अभ्यस्त वेश-भूषा में तैयार होकर इसी के लिये आयी, तो चारों ओर का सब कुछ उसे नया और विस्मय-सा लगा-और तो और, अपने आपको भी और ही तरह का लगने लगा। फाटक के बाहर बड़ी-सी जोड़ी खड़ी थी, नई पोशाक वाले कोचवान ने मालिक समझकर सलाम किया; दरवाजा खोलकर साईस बाअदब हटकर खड़ा हो गया, और उसी का अनुसरण करते हुए रामबाबू जब सामने वाली जगह में बैठ गये, तो यह सब कुछ अजीब सपने-सा लगा। उसकी अभिभूत नजर गाड़ी के जिस हिस्से पर भी पड़ी, लगा-यह बहुमूल्य ही नहीं, यह सिर्फ धनवान के वैभव का घमण्ड ही नहीं, उसका एक-एक कतरा मानो किसी के अपार प्रेम का बना है!

सख्त सड़क पर चार जोड़े खुरों की टपटप आवाज गुँजाती हुई जोड़ी दौड़ पड़ी, लेकिन अचला के कानों अस्पष्ट-सी दाखिल हुई। उसका सारा हृदय बाहरी इन्द्रियाँ शायद आखीर तक ऐसी ही अभिभूत रह जातीं लेकिन रामबाबू की आवाज से सहसा चौंक उठी-सामने की ओर उसका ध्यान खींचते हुए वे बोले-वह रहा तुम्हारा घर बिटिया! नौकर-चाकरों की बहाली हो चुकी, मामूली तौर पर सजाने-गुजाने का काम अब तक काफी आगे बढ़ चुका होगा, केवल तुम लोगों के सोने के कमरे में मैंने किसी को भी हाथ लगाने से मना कर दिया है! उनके जाते-जाते मैंने कह दिया-सुरेश बाबू, घर के और जहाँ पर जो जी-चाहे कीजिए, कोई परवा नहीं मुझे-मगर बिटिया के कमरे में कुछ कर-धरके उसका काम बढ़ा मत दीजिएगा! लजीली मुस्कान के साथ आशाभरी आँखें उठाते ही वे चुप हो गये।

वे अचानक ऐसे थम क्यों गये-अचला उसी वक्त समझ गयी, इसलिये जब तक गाड़ी नये बंगले पर न जा पहुँची, तब तक वह अपना फीका उदास चेहरा बाहर की ओर फेर कर, बूढ़े की विस्मित आँखों से छिपाए रही।

गाड़ी की आवाज से सुरेश बाहर आया, काम छोड़कर अपनी मालकिन को देखने के लिये दाई-नौकर भी निकल आये, पर उस शक्ल को देखकर किसी को कोई उत्साह न मिला।

रामबाबू के साथ-साथ अचला उतर आयी, सुरेश की ओर नजर उठाकर उसने देखा तक नहीं। उसके बाद तीनों नये मकान के अन्दर गये। उसके भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे, कहीं भी आनन्द का लेश है-यह थोड़ी देर के लिये भी किसी को कहीं नहीं दिखाई दिया।

(36)

लेकिन इसमें गलती कितनी बड़ी थी, उसे जाहिर होते भी देर न लगी। घर सजाने के काम में लगे लोगों को, ऐसे महँगे और इतने ज्यादा सामानों के बीच खड़े होकर, इसीलिये सभी चिन्ताओं से ज्यादा एक चिन्ता बार-बार चोट करने लगी-कि जिसके पास रुपया है, उसने खर्च किया है-वह एक पुरानी बात है परन्तु यह तो सिर्फ वहीं नहीं है! यह तो मानो एक को आराम देने के लिये दूसरे की व्याकुलता की कोई हद नहीं!! काम करते हुए, यह-वह चीज

छूते-छापते मामूली बातें बहुत हुईं; आँखें भी मिलीं कई बार-लेकिन सबके अन्दर से एक अनबोली बात, छिपा इशारा रह-रह कर केवल इसी ओर उँगली दिखाने लगा।

धोने-पोंछने का काम खत्म नहीं हुआ था। लिहाजा, उसे मामूली तौर पर रहने लायक बनाने में ही सारा समय लग गया। थके-माँदे तीनों जने जब लौटने के लिये गाड़ी पर बैठे, तो एक पहर रात जा चुकी थी। हवा बही थी, सो सामने का आसमान जरा साफ हो गया था, सिर्फ बीचो-बीच धुमैले मेघ का एक टुकड़ा एक छोर से आकर, नदी पार हो करके दूसरी ओर फैलता जा रहा था; कभी मैली चाँदनी की धारा, मानो सप्तमी के चाँद के चारों तरफ के बैहार और पेड़-पौधों पर झर रही थी। आँखें भरकर इस सौन्दर्य को देखने के लिये रामबाबू आँखें फाड़कर खिड़की से बाहर ताक रहे थे; मगर जो बूढ़े नहीं-प्रकृति के सारे रस, सारी मधुरिमा का उपभोग करने की ही जिनकी उम्र थी, सिर्फ वही दोनों गाड़ी की गद्दी के कोनों में आँखें बन्द किये बैठे रहे।

एक बहुत पुरानी स्मृति अचला के मन में धुँधली हो गयी थी, बहुत दिनों के बाद आज वही याद आने लगी-सुरेश के कलकत्ते वाले घर से, ऐसी ही एक साँझ को, ठीक इसी तरह गाड़ी से वे लौट रहे थे। उस दिन उसके ऐश्वर्य और उपभोग के विपुल साधन, उसके मन को महिम से खींचकर बहुत दूर ले गये थे। उस दिन इसी सुरेश के हाथों अपने को सौंपना निरा असंगत या असम्भव नहीं लगा था-बहुत दिनों के बाद आज वही बात जो क्यों याद आयी, यह सोचते हुए-अपने अन्तर की गूढ़ छवि को देखकर, उसके सर्वांग को छूती हुई शर्म की आँधी बहने लगी। शर्म! शर्म!! शर्म!!! यह गाड़ी, वह घर और घर की इतनी-इतनी तैयारी-सब उसकी है; सब उसके पति के दुलार का उपहार है, यही सबने जाना। और ऐसा भी दिन आयेगा, जब लोग जानेंगे कि इसमें उसका वास्तविक अधिकार फूटी-कौड़ीभर का नहीं था। शुरू से आखिर तक सब झूठा! उस दिन वह शर्म को रक्खेगी कहाँ? अचला आज यह बात हर्गिज झूठ नहीं, इसका सारा-कुछ महज उसी की पूजा के लिये सँजोया गया है, और इसका आदि-अन्त ही स्नेह से, प्रेम से, दुलार से मण्डित है!

देखते-ही-देखते उसके मन में लोभ और त्याग, लज्जा और गौरव-ठीक गंगा-जमुना-सा अगल-बगल ही बहने लगा, और एक क्षण के लिये वह दो में से एक को भी अस्वीकार न

कर सकी। फिर भी घर पहुँच कर रामबाबू जब सान्ध्यकृत्य के लिये चले गये, तो थकावट और सिर-दुखने की दुहाई देकर, वह असमय में ही जल्दी से अपना कमरा बन्द करके लेट गयी-तो केवल लज्जा और अपमान ही मानो उसे निगल जाना चाहने लगे। पिता की लाज, पति की लाज, सगे-सम्बन्धियों की लाज, सबकी सम्मिलित लाज से ही आँख पर आकाश-चुम्बी होकर सभी दुखों को दबा दिया। केवल यही ख्याल होने लगा कि यह फरेब जब किसी दिन उभर जायेगा, तो मुँह छिपाने की जगह कहाँ रहेगी?

यों जिस समाज में वह बचपन से पली, वहाँ भूतल-शय्या या पेड़ों के नीचे वास-कोई भी किसी का आदर्श नहीं रहा। वहाँ हर चाल-चलन, आहार-विहार, मिलने-जुलने में विलासिता के प्रति विराग को नहीं, अनुराग को ही क्रमशः उग्रता से बढ़ते देखा है-वहाँ हिन्दू-धर्म के किसी आदर्श से उसका परिचय नहीं हुआ। स्वर्ग के आसरे संसार के सारे सुखों से अपने को हटाने की कठोर निष्ठा कभी नहीं देखी। उसने औरों की नकल पर बने घर के समाज को देखा है, जिसकी एक-एक नारी सांसारिक प्यास से दिनानुदिन केवल सूखती ही गयी है।

इसलिये इस सूनी सेज पर आँख मूँदकर, ऐश्वर्य नाम की चीज को तुच्छ कहकर उड़ा नहीं दे सकी। और उसका मन इस बात पर भी हामी न भर सका कि उसे यह नहीं चाहिए, जरूरत नहीं है। उसकी इतने दिनों की शिक्षा और संस्कार, इनमें से किसी को भी तुच्छ करने के अनुकूल नहीं पड़ता था-लेकिन ग्लानि से भी उसका सारा अन्तर काला हो उठा। सो जितनी दौलत, जितने उपकरण-शरीर को आराम से रखने के विविध साधन-आज अनमाँगे ही उसके पैरों-तले आ लुटे थे, उसका बेरोक मोह उसे अविराम एक हाथ से खींचने और दूसरे से फेंकने लगा।

दुःख के सपने में मुक्ति की जैसी एक धुँधली चेतना का संचार होता है, वैसे ही उसकी यह बाधा भी बिल्कुल जाती नहीं रही थी-कि भाग्य की मार से आज जो दगा है, कभी इसके सत्य होने में कोई अड़चन ही नहीं थी! यही सुरेश उसका पति हो सकता था, और दूर भविष्य में यह एकबारगी असम्भव है-यह भी कोई निश्चित तौर पर नहीं कह सकता!!

उनके समाज से मिलते-जुलते सभी समाजों में विधवा-विवाह चलता है, हिन्दू-नारी के समान किसी एक ही के पत्नीत्व-बन्धन को, इस-उस दोनों लोक में ढोने-फिरने का

अनुल्लंघनीय अनुशासन उन्हें नहीं मानना पड़ता-लिहाजा जीवन-मरण में केवल एक को ही अनन्यगति सोचने की लाचारी, उससे उम्मीद नहीं की जा सकती। पति के जीते-जी दूसरे को स्वामी कहने में, अपराध के भार से वह मन में जितना ही क्यों न दुःखी हो, लज्जा और अपमान की ज्वाला से जलता चाहे जितना हो, धर्म और परलोक की गदा उसे मारकर लुढ़का देने का डर नहीं दिखा सकी।

दरवाजे का कड़ा खटखटा कर रामबाबू ने कहा-एक बूँद पानी तक पिए बिना सो गयी बिटिया, तबीयत क्या इतनी खराब है?

अचला की चिन्ता का छोर टूट गया। उसे ऐसा लगा, जैसे उसके पिता की आवाज हो! कभी रंज होकर सो रहने पर वे इसी प्रकार घबराई आवाज से दरवाजे के बाहर से पुकारा करते थे।

इस चिन्ता को वह हर्गिज जगह नहीं देती, लेकिन स्नेह की इस पुकार को वह टाल न सकी। देखते-ही-देखते उसकी आँखें सजल हो आईं। झट उसने आँखें पोंछ लीं, और भर्राए गले को साफ करके जवाब देते हुए, किवाड़ खोलकर सामने आ खड़ी हुई।

ये बूढ़े सज्जन, इतने दिनों की इतनी घनिष्ठता के बावजूद सदा एक दूरी रखकर ही चलते थे-इस घर में आज का दिन ही इन लोगों का अन्तिम है, शायद यही सोचकर पल में वे उस दूरी को लाँघ गये। एक हाथ अचला के कन्धे पर रखकर दूसरे से उसका ललाट चूमते हुए बोले-अपने चाचा से शरारत बिटिया? तुम्हें कुछ नहीं हुआ, चलो-कहकर हाथ पकड़कर बरामदे की एक कुर्सी पर उसे बैठा दिया।

थोड़ी ही दूर दूसरी कुर्सी पर सुरेश बैठा था। उसने एक बार नजर उठाकर देखा, और फिर सिर झुका लिया। बात थी कि रात में बैठकर दिन के काम-काज पर बात की जायेगी, और सुरेश इसीलिये अकेले बैठकर रामबाबू के आने का इन्तजार कर रहा था। उसी की ओर देखकर रामबाबू जरा हँसकर बोले-आपकी गृहलक्ष्मी जानें किस साहब की बेटी हैं-दिन-तिथि, पोथी-पत्र को नहीं मानतीं! ऐसे में आप मानें न मानें, कुछ आता-जाता नहीं।

मगर मेरे साठ साल का कुसंस्कार तो जाने का नहीं! कल डेढ़ पहर के आस-पास एक शुभ साइत है-

सुरेश ने इशारे को न समझा। कुछ अचरज से कहा-शुभ साइत है?

रामबाबू इसका ठीक सीधा जवाब न दे सके। कुछ जैसे आगा-पीछा करके बोले-इसके बाद हफ्ते-भर के अन्दर पत्रो में कोई ढूँढ़े न मिला-इसी से-

सुरेश समझ तो गया; मगर हाँ-ना कुछ कह न पाकर, डर से छिपे-छिपाये उसने अचला की ओर ताका, और ताका कि अपनी नजर झुका न सका। देखा-अचला एकटक उसी की ओर देख रही है।

अचला ने शान्त भाव से कहा-कल सवेरे ही हम उस मकान में जा सकते हैं न?

दंग था सुरेश, इस सीधे प्रश्न का सीधा उत्तर उसके मुँह से हर्गिज न निकल सका। उसने किसी प्रकार से इतना ही जताना चाहा, कि वह घर अभी ठीक रहने लायक नहीं हो सका है-फर्श शायद ओदा है, नई दीवारें कच्ची हैं-उससे तुम्हारी तबीयत खराब हो सकती है या मेरी...

लेकिन आपत्तियों की यह सूची समाप्त न हो सकी। अचला मानो जरा हँसकर ही बोली-है तो रहे! जिस दुर्दिन में गीदड़ भी अपनी माँद से बाहर नहीं निकलना चाहता, वैसे दिन में जब मुझे खींचकर अनजान जगह में पेड़-तले ला बिठा सकते हो, तो फर्श गीला है-इस डर से मेरे लिये तुम्हें घबराने की आवश्यकता नहीं! उस दिन जो नहीं मरी, वह आज भी जिन्दा ही रहेगी!!

रामबाबू की ओर मुड़कर वह बोली-आप फिक्र न करें, चाचाजी-हम कल सवेरे ही जायेंगे! आपका एहसान हम जन्म-जन्म तक न अदा कर सकेंगे-हम कल जायेंगे-कहते-कहते रोकर भाग गयी, और अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया।

बूढ़े रामबाबू पर मानो गाज गिरी हो, ऐसे बैठे रह गये। उनकी आकुल-व्याकुल दृष्टि कभी सुरेश के झुके चेहरे पर, और कभी बन्द दरवाजे पर जाकर यह विफल प्रश्न करने लगी-यह

क्या हुआ? कैसे हुआ? सम्भव कैसे हुआ यह? लेकिन अन्तर्यामी के सिवा इस मार्मिक मान का उत्तर कौन दे?

(37)

दूसरे दिन सवेरे से ही आसमान बादलों से ढँका था। उस धुँधले आसमान के नीचे, सारा संसार ही कैसा उदास और मलिन लग रहा था। गाड़ी दरवाजे पर खड़ी थी, कुछ-कुछ बक्स बिछावन उस पर रक्खा जा चुका था; पत्रो के अनुसार ठीक घड़ी में अचला नीचे उतरी, और गाड़ी पर सवार होने से पहले रामबाबू के चरणों की धूल ली। वे जबर्दस्ती हँसने की कोशिश करके बोले-इस बूढ़े चाचा से छुटकारा पाना बड़ा मुश्किल है बिटिया! पाँवों की जरा-सी धूल लेकर दो मील के फासले पर जा रहे हो-इससे यह न समझो कि मुक्ति मिली!

गीली आँखें ऊपर उठाकर अचला ने धीरे-धीरे कहा-मैं तो ऐसा चाहती नहीं, चाचाजी!

इस करुणा-भरी बात से बूढ़े की भी आँखें भर आईं। उन्हें सहसा लगा-यह अपरिचित लड़की फिर जाने परिचय के बाहर-कितनी दूर खिसकी पड़ रही है। स्नेहढल स्वर में बोले-भला मैं यह नहीं जानता हूँ बिटिया? नहीं तो पति के साथ अपने घर जा रही हो, इससे आँखों में आँसू क्यों आ जाते? मगर तो भी तो मैं रोक नहीं पाया! कहते हुए उन्होंने बूँद-भर आँसू हाथ से पोंछ कर हँसते हुए कहा-पास में थीं, उत्पात मचाया करता था रात-दिन; अब वही करते न बनेगा। मगर सूद-समेत वसूलने में न चूकूँगा, देख लेना!

सुरेश पीछे था। आज पहली बार उसने भक्तिपूर्वक बूढ़े के पैरों की धूल ली। वे धीरे-धीरे बोले-मैं जानता हूँ, आप मेरे यहाँ सुखी नहीं थे सुरेश बाबू! मैं तन-मन से आशीर्वाद देता हूँ, अपने घर जाकर वही असुविधा दूर हो!

सुरेश ने कुछ नहीं कहा, केवल फिर से एक बार झुककर उन्हें प्रणाम करके गाड़ी पर जा बैठा।

रामबाबू ने दुबारा आशीर्वाद देते हुए ऊँचे स्वर में कहा-मैंने एक एक्का लाने को कह दिया है-साँझ होते-होते शायद जा न धमकूँ; मगर नाराज न होना! इस दिल्लगी के बाद एक लम्बी उसाँस भरकर मौन हो रहे।

गाड़ी चली गयी, तो मन-ही-मन कहा-अच्छा ही हुआ कि समय रहते ही ये चले गये! यहाँ सिर्फ नहान का अभाव ही न था, अपनी विधवा बहन के स्वभाव को भी जानते थे। दूसरों की नब्ज टटोलने के कौतूहल की उसमें सीमा न थी। आते ही वह सुरमा की कठिन कसौटी शुरू कर देगी और इसका नतीजा चाहे जो हो, वह सुखकर नहीं होगा। इस लड़की के बारे में कुछ न जानते हुए भी, इतना जरूर जाना था कि वह भद्र है। किसी भी आफियत के लिहाज से वह कभी झूठ नहीं कह सकती-वह ब्राह्म की लड़की है, छुआछूत नहीं मानती-यह सब वह छिपायेगी नहीं। वैसे में इस घर में जो विद्रोह मचेगा, उसकी कल्पना से ही छाती काँप उठती है। खैर, यह तो उनकी अपनी सुख-सुविधा की बात हुई। एक बात और थी, जिसको वे अपनी ताईं भी स्पष्ट कर लेना चाहते थे। उनके लड़की नहीं थी, लेकिन पहली सन्तान उनके लड़की ही हुई थी। आज वह जिन्दा होती, तो अचला की माँ हो सकती थी; लिहाजा उम्र और शक्ल की कोई समानता ही न थी। लेकिन उनकी यह भूल कितनी बड़ी थी-इसका पता उन्हें उसी दिन चला था, जिस दिन इस अपरिचित स्त्री को डॉक्टर की खोज में रोते-रोते रास्ते में जाते देखा था। उस दिन उन्हें ऐसा लगा था कि बहुत दिनों की खोई हुई वह लड़की अचानक मिल गयी; उस दिन से वह भूख निरन्तर बढ़ती ही गयी, और मन में भी अनुभव करते थे सही, लेकिन जाने कैसा तो एक रहस्य उस लड़की को घेरे हुए था। खैर, जो आँखों की ओट में है, वह ओट में ही रहे-खोदकर उसे निकालने की जरूरत नहीं।

एक दिन राक्षसी ने हल्का-सा इशारा दिया था-कि शायद कोई पारिवारिक झमेला है-शायद घर में झगड़कर सुरेश बाबू स्त्री को लेकर चले आये हैं। एक दिन अचानक अचला ने जब अपने को ब्राह्म महिला बताया, और सुरेश के गले में पहले जनेऊ दिखाई पड़ा था-उस दिन रामबाबू चौंक पड़े थे, उन्हें चोट पहुँची थी। लेकिन अन्दर से इस गुप्त रहस्य का मानो एक हेतु उन्हें मिला था-उस दिन उन्होंने यही समझा था कि हो-न-हो, ब्राह्म-परिवार में शादी करके ही सुरेश ने यह आफत मोल ली है, और यही विश्वास धीरे-धीरे उनके मन में जम गया था।

रामबाबू वास्तव में हिन्दू थे, इसलिये उन्होंने हिन्दू-धर्म की निष्ठा ही पाई थी, उसकी निठुरता नहीं। ब्राह्मण का लड़का सुरेश, उसकी यह दुर्गत नहीं ही होती तो उन्हें खुशी होती; परन्तु यह प्रेम-विवाह, सगे-सम्बन्धियों से विच्छेद; यह लुका-छिपी-इसका सौन्दर्य, इसका माधुर्य भीतर-ही-भीतर उन्हें बड़ा मुग्ध करता था। इसे बिना जाने आश्रय देने में, उनका हृदय मानो रस से आप्लावित हो उठता। इसलिये जब भी इन दो बागी प्रे्रमियों का प्रणय-मान मनमुटाव के रूप में उनकी नजर में आता, तो बड़े दुःख के साथ उन्हें यही बात याद पड़ती, कि दूसरे के यहाँ के सँकरे दायरे में मिलन ठोकर खा रहा है-वही शायद अपने घर के स्वाधीन और स्वच्छ अवकाश में, दुनिया के हजारों काज-अकाज में शान्ति और सामंजस्य में स्थिति-लाभ करेगा।

उनके नहाने का समय हो गया था, कन्धे पर अँगोछा डालकर नदी की ओर जाते-जाते, हँसते हुए बार-बार मन में कहने लगे-जाते वक्त इस बूढ़े पर बड़ा मान करके ही गयी। सोचा-अपने लोगों की खातिर बड़े चाचा ने अपने यहाँ हमें जगह नहीं दी! लेकिन दो दिनों के बाद जब जाकर यह देखूँगा कि उनकी आँखों में हँसी समा नहीं पा रही है, तो उसी दिन इसका बदला चुकाऊँगा। उस दिन पूछूँगा-इस बुड्ढे के सिर की कसम बिटिया, सच-सच बताओ तो, पिछले गुस्से की मात्रा कितनी रह गयी? देखता हूँ-क्या जवाब देगी? उनका तमाम चेहरा खुली हँसी से उद्भासित हो उठा। अपनी आँखों में मानो उन्होंने साफ देखा, कि होंठों में हँसती हुई अचला काम का बहाना बनाकर चली गयी, और तुरन्त रकाबी में मिठाई लेकर लौटी; मुँह को बेतरह गम्भीर बनाकर कहने लगी-मेरे हाथ की बनाई मिठाई है! न खायेंगे तो झगड़ा हो जायेगा चाचाजी!

नहाकर पानी में खड़े हो-गंगा-स्तोत्र पाठ करते समय भी, बीच-बीच में अचला की हँसी छिपाने की कोशिश को, साग से मछली ढँकने की चेष्टा से तुलना करते हुए उन्हें बड़ी हँसी आने लगी। और पिछली रात से जो क्षोभ मन में निरन्तर बढ़ रहा था, वह पूजा-पाठ करके घर लौटते हुए, कल्पना की स्निग्ध वर्षा से जुड़ाकर पानी हो गया।

तार आया-कल ही सब आ रहे हैं। साथ में राजकुमार और राजपुत्र-वधू के होने से आदमी शायद ज्यादा आयें। घर में उन्हें आज काम कम था। तिस पर आसमान का रंग-ढंग ठीक

न था। कहीं पानी पड़ने लगे और जाने में अड़चन आ जाये-इस डर से रामबाबू बेला झुकते-न-झुकते टमटम ठीक करके, इनाम देने का लोभ देकर उसे तेज ले चलने को कहा। लेकिन रास्ते में ही नम हवा बहने लगी, और वहाँ पहुँचते-पहुँचते बारिश थोड़ी-थोड़ी होने लगी।

अचला ने बाहर निकलकर कहा-आज ऐसे दुर्योग में क्यों निकले चाचाजी? अभी तो भीग गये होते!

उसके चेहरे या आवाज में भावी आनन्द का आभास तक न देखकर, बूढ़े का मन छोटा हो गया। इसके लिये वे कतई तैयार न थे-किसी ने गोया खींचकर उनकी कल्पना की माला को तोड़ दिया। तो भी उत्साह रखकर बोले-बाप रे, न निकलता तो खैर थी? पानी में भीगने को तो सम्हाल लेता, लेकिन आजीवन यहाँ का निकाला होकर कैसे रह पाता बेटी?

इस दुर्बोध नारी को वे कभी ठीक से पहचान नहीं सके थे। खासकर कल रात के सलूक से तो वे मारे अचरज के किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे-और आज के आचरण से तो जैसे दिशा ही भूल गयी उनको! बात तो महज इतनी-सी थी। लेकिन साथ-ही-साथ वह पागल-सी हो, उनकी छाती पर औंधी पड़कर फफक-फफक कर रोने लगी। बोली-आप मुझे इतना प्यार क्यों करते हैं चाचाजी! शर्म से मैं तो माटी में मिली जाती हूँ!

बड़ी देर तक बूढ़े कुछ बोल न सके-एक हाथ उसकी पीठ पर रक्खे, दूसरे से उसका सिर सहलाने लगे। उनका स्नेह-विगलित हृदय समाज सम्मत ब्याह, अपने-सगे याकि माँ-बाप से विद्रोह-विच्छेद, झगड़कर घर छोड़ना-इन पुरानी परिचित और अभ्यस्त बातों की धारा में ही बहने लगा। कोई नयी खान खोदने की कल्पना तक न की; इस प्रकार ये अवाक् बूढ़े और वह रोती हुई नारी, बड़ी देर तक एक ही रूप में खड़े रहे। उसके बाद धीमे-धीमे कहा-इसमें शर्म कैसी बेटी? तुम मेरी सती-लक्ष्मी बेटी हो, बहुत-बहुत दिन पहले, महज दो ही दिन को मेरी गोदी में आकर चली गयी थीं-लेकिन चूँकि माया न तोड़ सकी, सो फिर बाप के कलेजे में लौट आयी हो-मैं तो तुम्हें देखते ही पहचान गया था। सुरमा-उसे पास की एक कुर्सी पर बैठाकर तरह-तरह से यही समझाने लगे, कि इसमें कोई शर्म, कोई लाज नहीं! सब दिन, सब युग में ऐसा होता आया है!! जो सती हैं, स्वयं आदि-शक्ति हैं, वे भी

एक बार माँ-बाप, अपने-सगे सबसे झगड़ कर पति के घर चली गयी थीं। फिर से तुम्हें सब मिलेगा, सब होगा-आज जो विमुख हैं, वे फिर अपने होंगे, बेटे-पतोहू को अपने घर ले जायेंगे! देखना, मेरा यह आशीर्वाद कभी विफल न होगा!!

आवेश में वे कितना-क्या तो कहते गये। उसमें जो सार था, छोड़िए उसे-लेकिन उसके भार से सुनने वाली का सिर धीरे-धीरे धूल से मिल जाने को हो गया। जमकर बारिश शुरू हो गयी थी। इतने में नजर आया-सुरेश भीगकर कीचड़ से लतपत हो, कहीं से तेजी से घर में दाखिल हो रहा है। देखते ही अचला ने जल्दी से अपनी आँखें पोंछ लीं। और बारिश का पानी हाथ में लेकर, आँसू के चिद्द को धोकर बैठ गयी। रामबाबू समझ गये-चाहे जिस वजह से भी हो; सुरमा आँसू के इतिहास को स्वामी से छिपाना चाहती है।

रामबाबू को आकर देखते ही सुरेश कुछ कहना चाह रहा था, कि वे व्यस्त होकर बोल उठे-बातचीत फिर होगी सुरेश बाबू, मैं भागा नहीं जा रहा हूँ! पहले आप कपड़े बदल आयें।

सुरेश ने हँसकर कहा-कुछ नहीं हुआ! और एक कुर्सी खींचकर बैठने जा रहा था। अचला ने नजर उठाकर देखा-चाचाजी जो कह रहे हैं, सुनने में दोष क्या है? महीना-भर भी नहीं हुआ, तुम इतनी बड़ी बीमारी से उठे हो-बार-बार मुझे कितनी सजा देना चाहते हो?

उसके कहने और देखने में इतना बड़ा व्यवधान था, कि दोनों ही विस्मित हुए। लेकिन विस्मय की यह धारा बहने लगी, उल्टी तरफ को। सुरेश बिना कुछ बोले ही हुक्म-बजाने चला गया। और रामबाबू बाहर की ओर देखने लगे।

बाहर वर्षा का विराम नहीं-रात जितनी बढ़ती गयी, वर्षा का प्रकोप उतना ही बढ़ता गया। बहुत दिनों के आकर्षण से धरती लगभग सूख गयी थी। उसकी सारी दीनता, सारे अभावों को एक ही रात में भर देने के लिये विधाता मानो कसम खा चुके हों।

रामबाबू की घबराहट को गौर करके अचला ने हौले-हौले कहा-लौटने में बड़ी तकलीफ होगी? वे हँसे। मन की चंचलता को दबाकर कहा-तकलीफ के लिये न सही, इस आफत में, नयी जगह में तुम लोगों को छोड़कर मैं नहीं जाता! लेकिन सवेरे ही तो वे लोग आ रहे हैं,

रात ही गये बिना कैसे चले सुरमा। लेकिन लगता है, ऐसा ही न रहेगा! घण्टे-भर में थम जायेगा पानी। उतनी देर रुक जाऊँ!

जो लोग आ रहे हैं, उस प्रसंग में बात शुरू हुई। और संसार, समाज, धर्म, अधर्म, पाप-पुण्य, इहलोक-परलोक-धीरे-धीरे जाने कितनी तरफ फैल गयी। दोनों इतने मशगूल हो गये कि कितनी देर हुई, रात कितनी बढ़ी, कोई पता न रहा। बाहर मेघों का गरजना और बरसना कितना भयानक, अँधेरा कितना गाढ़ा हो उठा-यह भी किसी ने नहीं देखा। रामबाबू में जो ज्ञान, जो दर्शन, जो भक्ति संचित थी-अपने परम स्नेह की उस पात्री के आगे उसे उड़ेलने का मौका पाकर, महज दो जनों की उस बैठक को उन्होंने माधुर्य से भर दिया। अचला को सिर्फ इतनी ही चेतना रही, कि वह एक ऐसे व्यक्ति के हृदय की सत्य अनुभूति से परिचित हो रही है-जो निष्पाप है, जिनकी श्रद्धा और स्नेह को उसने पाया है।

अचानकर पैरों की आहट से दोनों ने मुड़कर देखा-नौकर खड़ा है। वह बोला-माँजी रात काफी हो चुकी, बारह बज रहे हैं, खाना भेजवा दें?

अचला ने चौंककर पूछा-बारह बज रहे हैं! और बाबू?

-अभी-अभी वे खाकर सोने चले गये।

सुरेश वहीं जो गया, फिर नहीं लौटा-अब ख्याल आया। गर्दन बढ़ाकर अचला ने देखा-पर्दे के अन्दर से रोशनी दिखाई पड़ रही है। क्षुब्ध और लज्जित होकर रामबाबू बार-बार कहने लगे-मुझसे बड़ी भूल हो गयी बिटिया, बड़ी भूल हो गयी। तुम्हें मैंने छेंक लिया, कि यह भी नहीं देख पायी कि उनका खाना भी हुआ या नहीं। खैर, अब तुम खाने जाओ...

अचला ने शायद इस पर कान नहीं दिया। नौकर से पूछा-कोचवान समय पर गाड़ी क्यों नहीं ले आया?

नौकर ने कहा-घोड़ा नहीं है, इस झड़ी-पानी में निकालने का साहस न हुआ। -तो फिर कोई दूसरी सवारी क्यों नहीं लाया? नौकर चुप रह गया। लेकिन इसका मतलब गलती कबूल करना नहीं, प्रतिवाद करना था कि इसके लिये तो कहा नहीं गया।

रामबाबू उत्कण्ठा के बजाय लज्जा से ही बार-बार कहने लगे-गाड़ी की जरूरत नहीं, और न जायें तो भी चल जायेगा, सिर्फ अगली सुबह स्टेशन पर हाजिर हो जाना चाहिए। मैं रात को कुछ खाता नहीं, यह झमेला भी नहीं है; सिर्फ तुम कुछ खाकर सो रहो, बातों में बड़ी रात हो गयी, बड़ी गलती हो गयी! और एक प्रकार से जबर्दस्ती खाने के लिये उसे नीचे भेज दिया। पन्द्रह मिनट की भी देर न करो; सोने जाओ तुम! मैं बेंत के सोफे पर मजे में सो रहूँगा-कोई तकलीफ, कोई असुविधा न होगी। बस, तुम चल दो। मैं देखूँ!

उनके बार-बार के आग्रह-निवेदन ने अचला को कैसा तो आच्छन्न-सा कर दिया। जो झूठा सम्मान, स्नेह और श्रद्धा वह अपने इस हितू बाप-सरीखे बूढ़े आदमी से अब तक केवल धोखे से ही करती आ रही है, वे ही उसके इस निहायत समय में, गला दबाकर उसे सुरेश के सूने शयन-कक्ष की ओर ढकलने लगे। उसे याद आया-ऐसी ही एक झड़ी-बदली की रात ने उसे स्वामी-विहीन किया था, आज फिर वैसे ही दुर्दिन का अभिशाप, उसे सदा के लिये अपार अन्धकार में गर्क करने को तैयार है। कल असह्य अपमान से, लाज की गहरी कीचड़ में उसका गला तक डूब जायेगा-यह वह साफ देखने लगी; लेकिन तो भी आज की उस झूठ की ही जय-माला ने उसे किसी भी तरह सत्य को जाहिर न करने दिया। जीवन के इस चरम-क्षण में मान और मोह ही चिरजयी बना। उसने बाधा न दी, कुछ कहा नहीं; पीछे पलटकर देखा तक नहीं-चुपचाप धीरे-धीरे सुरेश के सोने के कमरे में जाकर दाखिल हो गयी।

बाहर की उन्मत्त प्रकृति वैसी ही मत्त बनी रही, गाढ़े अँधेरे में बिजली हँस उठने लगी, रात-भर में कभी भी इसका कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ।

नई जगह में रामबाबू को अच्छी नींद नहीं आयी; खास करके मन में फिक्र रहने के कारण तड़के ही उनकी नींद टूट गयी। बाहर निकलकर देखा-बारिश थम जरूर गयी है, लेकिन घटाटोप है। नौकर-चाकर कोई जगा या नहीं, यह देखने के लिये बरामदे के एक छोर पर जाकर सहसा चौंक उठे कौन तो मेज पर सिर टेके, कुर्सी पर बैठी है। करीब जाकर अचरज से बोल उठे-तुम? इतना सवेरे क्यों जगीं बिटिया?

सुरमा ने एक नजर देखकर ही फिर मेज पर सिर रख दिया। उसका चेहरा शव-जैसा सफेद, दोनों आँखों के नीचे कालिमा, और काले पत्थर में से जैसे झरना फूट निकलता है-ठीक उसी तरह उसकी आँखों से आँसू बह रहा था।

एक अस्फुट शब्द करके, रामबाबू उस अधमरी नारी को एकटक देखते रहे; गले से कोई शब्द ही बाहर नहीं निकला।

(38)

सुबह गर्म-गर्म मुरमुरे के साथ चाय पीकर केदार बाबू ने तृप्ति की साँस ली। जूठे बर्तन लेने के लिये मृणाल कमरे में आयी; तो बोले-तुम्हारे इस गर्म मुरमुरे और पत्थर के प्याले की चाय में कौन-सा अमृत है, पता नहीं; लेकिन एक महीना हो गया, यहाँ से हिल न सका!

अचला के नाते मृणाल उन्हें बाबूजी कहने लगी थी। बोली-आप यहाँ से चले जाने को क्यों परेशान होते हैं बाबूजी, आपकी यह-मैं क्या सेवा करना नहीं जानती? आपकी यह लड़की क्या-मृणाल असावधानी से यही कहने जा रही थी, लेकिन दबाकर उसे इस तरह से जाहिर किया। इसीलिये शायद समझते हुए भी केदार बाबू ने इसे नहीं समझना चाहा। लेकिन आवाज उनकी एकाएक करुण हो गयी। बोले-भागने को अब परेशान कहा हूँ बेटी! तुम्हारे हाथ की चाय, तुम्हारे हाथ का भोजन, तुम्हारे इस माटी के घर को छोड़कर मुझे स्वर्ग जाने की भी इच्छा नहीं होती! उस छोटी-सी खिड़की के सामने बैठकर मैं बहुत बार सोचा करता हूँ-मृणाल, भगवान की दया से दो साल बच जाऊँ, तो तमाम जिन्दगी कलकत्ते में जो नुकसान उठाया है, उसका रत्ती-रत्ती पूरा कर लूँ! और जिसमें वही पूँजी लेकर उनके आगे जाकर खड़ा हो सकूँ।

कितनी बड़ी वेदना से उन्होंने यह बात कही और कैसी मार्मिक लज्जा से कलकत्ते के जीवन-भर के घर-मुहल्ले को छोड़कर, सदा के समाज को त्यागकर इस जंगल के झोंपड़े में बाकी दिन बिताने की अभिलाषा जाहिर की-इसे मृणाल ने समझा; इसीलिये कोई जवाब न देकर, चाय का प्याला लेकर धीरे-धीरे चली गयी।

यहाँ पर जरा शुरू की बात बता देना जरूरी है। करीब एक महीना पहले केदार बाबू यहाँ आये, और तब से लौटकर नहीं जा सके। महिम की बीमारी के समय, कलकत्ते में सुरेश के यहाँ इससे उनका परिचय हुआ था, मगर वहाँ उसके अपने घर में आकर उसका जो परिचय मिला, उससे उनका तन-मन सोने की जंजीर में बँध गया। उसी बन्धन से वे अपने को किसी भाँति छुड़ा नहीं पा रहे थे, जोकि बाहर कितना काम उनका बाकी पड़ा था।

महिम से उनकी भेंट नहीं हुई। इनके आने की खबर मिलते ही वह जल्दी-जल्दी चला गया। जाते समय मृणाल ने रोकने की जिद न की, क्योंकि छुटपन से ही वह संयम और सहिष्णुता, बुद्धि-विवेचना के प्रति उसका ऐसा अगाध विश्वास था, कि उसने यह निश्चित रूप से समझ लिया कि अचला से भेंट करना इस समय उचित नहीं, इसीलिये महिम चम्पत हो रहा है। उसने सोचा था-उसका पत्र पाकर, बेटी-दामाद का बीच-बचाव करने के लिये, केदार बाबू अचला को साथ लिये दौड़े आ रहे हैं। मगर आये अकेले।

सुलझा आज तक भी कुछ नहीं, केवल संशय के बोझ से दिन-दिन भारी होने वाले दिन एक-एक कर निकाल रहे थे। सिर्फ ऊपर की ओर देखकर इतना समझ में आया, कि आसमान में दुर्भेद्य बादलों की परतें कभी कटें तो कट सकती हैं-पर उसके पीछे अँधेरा ही है, चाँदनी नहीं है।

सुरेश की फूफी ने लापता सुरेश के लिये अकुलाकर मृणाल को चिट्ठी लिखी थी, वह चिट्ठी केदार बाबू के हाथ आयी। महिम ने किसी बड़े जमींदार के यहाँ गृह-शिक्षक की नौकरी करने की खबर भेजी है, केदार बाबू उसे भी बार-बार पढ़ गये; पर उनकी बेटी का जिक्र तक किसी में नहीं। मगर दोनों पत्रों की एक-एक पंक्ति, एक-एक हरूफ ने अभागे पिता के कानों एक ही बात सौ बार कही है-जिसे समझने की शक्ति ही उन्हें नहीं।

अचला उनकी इकलौती बेटी थी, बात इतनी ही नहीं; जबसे उसकी माँ मरी, तब से उन्होंने ही माँ की तरह उसे गोदी में पाल-पोसकर इतनी बड़ी किया। उस लड़की के भारी अमंगल की आशंका से, उनका शरीर दिन-दिन दुबला और तपे सोने-सा रंग काला होता जा रहा था; अथच अमंगल जिस रास्ते का इशारा कर रहा था, वह रास्ता सभी पिताओं के लिये संसार में सबसे ज्यादा निषिद्ध है।

गाँव के दो-चार बूढ़े पड़ौसी कभी-कभी उनसे गप-शप करने आते लेकिन संकोच से वे कभी किसी के यहाँ नहीं जाते। मृणाल अनुरोध करती तो कहते-जरूरत क्या है बेटी, मेरे जैसे म्लेच्छ का किसी के यहाँ न जाना ही अच्छा है!

मृणाल ने कहा-तो वही क्यों आयेंगे? इसका कोई जवाब न देकर, छाता लिये वे खेतों की ओर निकल पड़ते। खेतिहरों से मिल-मिलकर बातें करते-उनके सुख-दुःख, घर-गिरस्ती, न्याय-अन्याय, पाप-पुण्य की बात-ऐसी कितनी ही तरह की बातें करते-करते, जब बेला बढ़ जाती, तो घर आते। सुबह चाय पीने के बाद यही उनका रोज का काम था।

जन्म से ही वे कलकत्तावासी थे। शहर से बाहर जो असंख्य गाँव हैं, उनसे उनका नाता ही टूट गया था। धर्म बदलने के बाद अपने-सगे भी न रहे, अतएव ज्यादातर नागरिकों के समान, बिना जाने ही ये भी इन लोगों के बारे में अजीब ख्याल रखते थे, यह कुछ अनोखी बात नहीं। जो अपढ़ अनगिनती किसान दूर गाँव में ही सारी जिन्दगी काट देते हैं-शहर का मुँह देखना भी जिन्हें शायद ही नसीब होता है, ऐसों को वे एक प्रकार से जानवर ही समझा करते थे; लेकिन बदनसीबी ने आज जब अपने दो विषदाँत उनके मार्ग में चुभा कर उनके मन को ही समाज से फेर दिया, तो जितना ही इन अनपढ़-गरीब किसानों से उनका परिचय होने लगा, उतनी ही उनकी श्रद्धा और स्नेह उनकी तरफ उमड़-पड़ने लगा। दूसरी ओर अपने समाज, उसके आचार-विचार, शिक्षा-संस्कार, धर्म, उसकी सभ्यता और कायदे-कानूनों के खिलाफ उनका हृदय विद्वेष और वितृष्णा से भर-उठने लगा।

उन्हें स्पष्ट मालूम होने लगा-कि अपढ़ होते हुए भी वे अशिक्षित नहीं हैं। बहुत पहले की प्राचीन सभ्यता उनकी अस्थि-मज्जा में घुली-मिली है। नीति की मोटी बातों को वे जानते हैं। किसी धर्म से उन्हें बैर नहीं, क्योंकि संसार के सारे ही धर्म मूलतया एक हैं, और सैंतीस करोड़ देवी-देवताओं को स्वीकार न करते हुए भी एकमात्र ईश्वर को माना जा सकता है-इसका ज्ञान उन्हें है-और किसी से भी कम नहीं है! हिन्दू के राम और मुसलमानों के अल्लाह एक ही हैं-यह सत्य भी उनका अजाना नहीं।

लज्जित होकर उनका हृदय बार-बार कहता-हमसे ये किस बात में छोटे हैं? मैं इनसे कौन-कौन-सी बात ज्यादा जानता हूँ? इनके समाज, इनके सम्पर्क को छोड़कर हम लोग

क्यों दूर चले गये हैं? और वह दूरी इतनी ज्यादा, कि अपनों के आगे भी म्लेच्छ बन गया हूँ।

मन की ऐसी ही स्थिति में जब वे घर लौटे, तो दस बज रहे थे। मृणाल बोली-कल आपकी तबीयत ठीक नहीं थी बाबूजी, आज फिर तालाब में नहाने न चले जाइए! आपके लिये मैंने पानी गर्म करके रक्खा है।

करके रक्खा है?-कहकर वे मृणाल की ओर देखने लगे।

नहाकर मृणाल पूजा कर रही थी, उनकी आवाज पाकर उठ आयी। गीले बाल पीठ पर बिखरे थे, टशर का कपड़ा, खिला मुखड़ा-उसके अंग-अंग में जैसे गहरी पवित्रता विराज रही हो। उसको देखते हुए बूढ़े ने फिर पूछा-आखिर तुमने इतना कष्ट क्यों किया बिटिया, जरूरत तो नहीं! जरा थम कर बोले-कलकत्ते का रहने वाला हूँ, नल के पानी में ही नहाने का आदी हूँ! लेकिन तुमने मुझे ऐसी पनाह दी मृणाल, कि तुम्हारा तालाब भी मेरी खातिर करता है। उसके पानी से कभी मेरी तबीयत खराब नहीं होती। वहीं नहाने जाऊँगा, बिटिया!

मृणाल ने सिर हिलाकर कहा-यह नहीं होगा! कल आपकी तबीयत खराब थी, मैं जानती हूँ! मैं पानी लिये आती हूँ, आप तेल मलिये। कहकर वह जाने लगी कि केदार बाबू बोल उठे-खैर, वही सही! मगर एक बात तो बताओ मुझे, दूसरे का इतना जतन करना, इतनी कम उम्र में तुमने किससे सीखा? मैंने तो ऐसा कहीं नहीं देखा!

लाज से मृणाल का चेहरा तमतमा उठा, मगर जबर्दस्ती हँसकर बोली-मगर आप क्या मेरे विराने हैं बाबूजी?

केदार बाबू बोले-नहीं, विराना नहीं हूँ! मगर यों टालने से काम नहीं चलने का। जवाब देकर जाना पड़ेगा!

मृणाल ने वैसी ही लाजभरी हँसी के साथ कहा-यह कौन-सा ऐसा कठिन काम है कि कोशिश करके सीखना पडे! यह तो जन्म से ही हम सीखे होते हैं। लेकिन पानी आपका ठण्डा हो रहा है...

होने दो!-कहकर केदार बाबू गम्भीर होकर बोले-मैं कुछ दिनों से ठीक यही सोच रहा हूँ मृणाल! मनुष्य सीखता है, तब तैरता है; पर जो चिड़िया जल पर है, वह जनमते ही तैरती है। यह सीखना उसे कोई सिखा जरूर नहीं सकता, पर काम को उड़ाकर तो फल नहीं पाया जा सकता! यह तो भगवान का नियम नहीं!! कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी प्रकार सीखने का झमेला उसे झेलना ही पड़ेगा!!! इसीलिये उस जलचर पक्षी की नाईं, तुमने जो बसेरे में ही, जन्म से अनायास ही इतनी बड़ी विद्या हासिल कर ली-सो मैं तुम लोगों के उस विराट् समाज-बसेरे की ही बात रात-दिन सोच रहा हूँ। सोचता हूँ...

-मगर आपका पानी तो...

-पानी को छोड़ो भी बिटिया! तालाब तो सूखा नहीं जा रहा है। मैं यही सोच रहा हूँ कि यह बूढ़ा आदमी, नन्हे-नादान की तरह चुपचाप तुमसे कितना-कुछ सीख रहा है, इसकी तो तुम्हें खबर नहीं! ठाकुर-देवता, तंत्र-मंत्र पर अभी भी विश्वास नहीं हुआ, लेकिन तो भी जभी बिटिया को देखता हूँ, कि नहाकर फीका-फीका मटके का कपड़े पहने आन्हिक को जा रही है, तभी जी में आता है कि फिर से गले में जनेऊ डालकर मैं भी पूजा पर बैठ जाऊँ!

मृणाल ने कहा-आप अपने समाज, अपने आचार को छोड़कर दूसरों का आचार क्यों पालेंगे? उसी को कौन दोष दे सकता है?

केदार बाबू बोले-कोई दे सकता है या नहीं-और बात है, मगर मैं उसकी हेठी नहीं कर सकता! अच्छा हो या बुरा, बुढ़ापे में उसे त्यागने की सामर्थ्य नहीं है, बदलने की कोशिश भी नहीं! यही राह पकड़कर जीवन की शेष सीमा तक चलना है! लेकिन जब तुम्हें देखता हूँ-इसी छोटी उम्र में इतना बड़ा आत्म-त्याग, जो स्वर्ग गये उनके प्रति ऐसी निष्ठा, उन्हीं की माँ को माँ मानकर-खैर छोड़ो, और न कहूँगा-परन्तु मैं जिसमें रहकर बड़ा हुआ, मन-ही-मन उसकी तुलना किये बिना भी तो नहीं रह सकता! समाज से अलग जो धर्म है, उसके लिये तो अब आस्था नहीं रख पाता, मृणाल!

मृणाल मन-ही-मन क्षुण्ण हुई। उसके व्यक्तिगत जीवन की बदनसीबी को यों अपनी सामाजिक शिक्षा-दीक्षा पर आरोपित करना, उसे अविचार लगा। बोली-बाबूजी, जब आप

ठीक इसी तरह से हमारे समाज को भी देखेंगे-तो उसमें भी बहुत से दोष नजर आयेंगे! तब देखेंगे कि हम भी अपने दोष समाज के मत्थे ही मढ़ देने को अमादा हैं। हम भी...

लेकिन बात पूरी होने के पहले ही केदार बाबू ने बाधा दी। बोले-मगर मैं तो आमादा नहीं हूँ बिटिया! तुम्हारे समाज में खामी हो, खराबी हो, मगर तुम तो हो! सिर पीटकर मैं मर भी जाऊँ, तो यह वहाँ नहीं मिलने की...

मृणाल का मुँह फिर शर्म से लाल हो उठा। बोली-मैं कहे देती हूँ बाबूजी, बार-बार मुझे इस तरह से लजायेंगे, तो ऐसी भागूँगी मैं कि फिर आप मुझे खोज कर पायेंगे नहीं!

बूढ़े तुरन्त कुछ बोल न सके, सिर्फ चुपचाप उदास हो उसे देखते रहे; उसके बाद धीरे-धीरे बोले-मैं भी तुम्हें कहे देता हूँ, तुम्हें यह हरगिज नहीं करने दूँगा मैं! तुम मेरी आँखों की पुतली हो, मेरी एक अकेली पनाह!! इस निकम्मे-अनाथ बूढ़े के भार से जिस दिन तुम्हें मुक्ति मिलेगी वह दिन ज्यादा दूर नहीं; पर मैं खूब जानता हूँ, वह मुझे इन आँखों देखना न पड़ेगा!!! कहते-कहते उनकी आँखों के कोने गीले हो आये।

आस्तीन से आँखें पोंछते हुए बोले-मेरा एक काम अभी बाकी रह गया है, वह है महिम से भेंट करना। मैं उससे साफ-साफ पूछना चाहता हूँ-कि वह इस तरह भागा-भागा क्यों चलता है? ऐसा भी हो सकता है कि वह जिन्दा नहीं है! -आप नाहक ऐसा क्यों डरते हैं बाबूजी?

डर?-बूढ़े के मुँह से एक दीर्घ निश्वास निकल गया। बोले-सन्तान का मरना ही बाप के लिये सबसे बड़ा डर नहीं है, बिटिया!

(39)

इकलौती बेटी की मौत से भी बड़ी दुर्गति-पिता की नजरों में बड़ी हो उठी है, उसके आभास मात्र से मृणाल लज्जित और कुण्ठित होकर खिसक पड़ी-और उस साध्वी विधवा की वह लज्जा, ठीक मुद्‌गर के समान केदार बाबू की छाती पर आ लगी। बड़ी देर तक वे अकेले चुपचाप अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते रहे, उसके बाद लम्बा निश्वास छोड़कर तेल के कटोरे को अपनी ओर खींच लिया।

आज सवेरे आसमान साफ था, लेकिन दोपहर के कुछ बाद से ही बदली घिरने लगी। केदार बाबू बिस्तर पर से अभी-अभी उठकर, पश्चिम तरफ की खिड़की को खोलकर बाहर देख रहे थे। सामने एक अमरूद का पेड़ फूलों से लद गया था, और उस पर अनगिनती मधु-मक्खियों के हर्ष कलरव का अन्त नहीं था। थोड़ी ही दूर पर लम्बी रस्सी से बँधी, मृणाल के अपने हाथों धोई-पोंछी मोटी-ताजी गाय चर रही थी, जिसकी पीठ पर से गाँव की राह का थोड़ा हिस्सा दिखाई दे रहा था।

-आपकी चाय अब ले आऊँ बाबूजी?

केदार बाबू ने उलटकर देखा-अभी ही ले आओगी?

-वाह, बेला थोड़े ही रह गयी है।

हँसकर तकिये के नीचे से घड़ी निकालकर बोले-लेकिन तीन भी तो नहीं बजे बिटिया!

मृणाल बोली-बला से ना बजे, पर आपने तो दिन में ठीक से खाया भी नहीं है!

केदार बाबू मन-ही-मन समझ गये-इंकार बेकार है। बोले-खैर, ले आओ! मृणाल जरा देर स्थिर रहकर बोली-अच्छा, आप तो कहा करते हैं मुझे चावल बहुत अच्छे लगते हैं।

-गलत तो नहीं कहता बेटी!

-तो थोड़ा-सा वह भी ले आऊँ?

वह भी? अच्छा, लाओ-कहकर उसे देखते हुए जबर्दस्ती जरा हँसे। मृणाल के चले जाने पर फिर उस झरोखे से बाहर देखा-तमाम धुँधला हो गया है, और तुरन्त आँसू की पाँच-छः बूँदें उनकी आँखों से चू पड़ीं। झटपट आँसू की रेखा को पोंछकर, अपने चेहरे को शान्त और सहज बनाने के ख्याल से इमर्सन की खुली पड़ी किताब को देखने लगे।

किताब के पन्नों में चाहे जो हो, मन में ऐसी बात की छाप पड़ने लगी कि यह सृष्टि कितनी अज्ञेय और अनोखी है! दुनिया में दिन जब लेखे के अन्दर आ रहे, तभी क्या इस लम्बे

जीवन की पिछली अभिज्ञता, पिछले आयोजन को रद्द करके, फिर से नई कमाई की जरूरत हो गयी? मैं खूब देख रहा हूँ कि मानव-जन्म का सारा अतीत ही बेकार गया, और यह समझना भी बाकी न रहा, कि इस लम्बी फाँकी को भर लेने में यह एक महीना ही काफी हुआ।

द्वार पर पैरों की आहट हुई। उन्होंने सिर उठाकर देखा। पत्थर के कटोरे में चाय, और तश्तरी में भुने चावल लेकन मृणाल आयी। दोनों हाथ बढ़ाकर उन चीजों को लेते हुए बोले-अब पता चल रहा है कि आज दिन में ठीक से भोजन नहीं हुआ। लेकिन देखो...

-नहीं-नहीं, आप बात करेंगे, तो सब ठण्डा हो जायेगा।

केदार बाबू ने चुपचाप चाय के प्याले को होंठों से लगाया, और उतारकर रखते हुए एक निश्वास के साथ बोले-मैं यही कामना करता हूँ मृणाल, अगले जन्म में तुम मेरी बेटी होकर पैदा हो! कलेजे से लगाकर पालना मुझे खूब आता है बिटिया, जिसमें उस कला को जी-भर काम में ला सकूँ!!

आखिरी शब्द पर उनका गला काँप गया। मृणाल ऐसी ही चर्चा को सबसे ज्यादा डरती थी। इसलिये उनके उस आवेग की ओर ख्याल किये बिना ही बोली-वाह, ठीक तो है, आपकी दूसरी सन्तानों में जिसमें एक मैं भी होऊँ! केदार बाबू तुरन्त सिर हिलाकर बोल उठे-नहीं-नहीं, दूसरी नहीं, दूसरी नहीं। अकेली तुम-मेरी इकलौती बेटी! अकेली तुम्हीं मेरा कलेजा भरे रहोगी! अबकी जो कुछ तुमसे सीखकर जा रहा हूँ, वह सब एक-एक करके अपनी बेटी को सिखाकर, फिर इसी तरह उससे बुढ़ापे में सब वापस लेकर उस लोक की यात्रा करूँगा। कहकर उन्होंने छिपे-छिपे एक बार अपनी आँख में हाथ लगाया।

मृणाल ने दुःखी होकर कहा-आप नाहक ही मुझे बार-बार अप्रतिभ करते हैं बाबूजी! मैं जानती क्या हूँ?

-मेरा भोजन ठीक नहीं हुआ, यह मैं नहीं जानता था, तुम जानती थी!

-यह ऐसा क्या जानना हुआ? जिसके आँख है वही देख सकता है!

लेकिन वही आँख ही तो सबके नहीं होती, मृणाल!-थोड़ा रुककर बोले-लेकिन मैं सबसे ज्यादा हैरान इस पर हूँ मृणाल, कि ईश्वर कहाँ, कब और किस उपाय से मनुष्य के वास्तविक अपने जन से मिला देते हैं-यह कोई नहीं जानता! इनमें न तो कोई आडम्बर है, न रिश्ते की कोई बला, और न समय का कोई हिसाब! पल में कहाँ से क्या हो जाता है-केवल जब उसे कलेजे में पाता हूँ तो जी में आता है-अब तक इतने बड़े फाँक को झेल कैसे रहा था?

मृणाल ने धीरे-धीरे कहा-यह ठीक है बाबूजी, वरना आपकी एक बेटी इस जंगल में पड़ी है, अब तक तो कभी उसकी खोज-पूछ नहीं की!

केदार बाबू बोले-अपनी क्या मजाल, जब तक वे हुक्म न दें! और जब उनका हुक्म हो गया, तनिक भी अड़चन न आयी-कहाँ से कौन तो खींच लाया। आज लोग देख रहे हैं, बस, महीने-भर की तो जान-पहचान! मगर मुझे मालूम है, यह तो कोई किराये के मकान का हिसाब नहीं, कि कागज के पन्ने से माहवारी लेखा लगेगा। यह तो जैसे कितने युगों से तुम्हारी छाया में ही बैठा हूँ-इसका दिन, महीना और बरस क्या? कहकर वे फिर थोड़ा रुके। मृणाल खुद भी कुछ कहने जा रही थी, पर एकाएक उनके मुँह की ओर देखकर अवाक् रह गयी। उसे लगा-इस बूढ़े के कलेजे के अन्दर इतने दिनों से दुःख की जो चिता जल रही थी, वह जाने कैसे तो बुझने को आयी, और उसी की अन्तिम आभा ने उनके चेहरे को जो जरा-सा दमका दिया है, उसी की मन्द जोत में कौन-सा गहरा स्नेह, मानो असीम करुणा से घुल-मिलकर निखर आया है।

कुछ देर तक कोई कुछ न बोला-मृणाल की झुकी नजर फर्श पर वैसी ही टिकी रही। यह नीरवता केदार बाबू ने ही भंग की। बोले-मृणाल, मैंने एक धर्म छोड़कर दूसरे की दीक्षा ली हैं; ऐसे में औरों के आगे न सही, कम-से-कम अपने आगे जवाबदेही का दायित्व है! अब तक उसे टालता गया हूँ, पर अब नहीं। धर्म के बारे में अब यदि यह बात समझ पाऊँ...

लमहे के लिये मृणाल ने नजर उठायी, कि केदार बाबू बोल उठे-डरो मत बिटिया, बार-बार तुम्हारा नाम लेकर अब मैं तुम्हें संकोच में नहीं डालूँगा; परन्तु इतने दिनों के बाद इस

सत्य को मैं समझ पाया हूँ, कि लड़-झगड़ कर और चाहे जो कुछ मिले, धर्म नहीं मिल सकता!

उनके वाक्य के मर्म को समझ कर मृणाल धीरे-धीरे बोली-यह सच हो सकता है, पर जिस धर्म को मैंने अच्छा समझा, उसे अपनाने के लिये लड़ना-झगड़ना ही पड़ेगा; ऐसा तो मैं कुछ नहीं देखती!

केदार बाबू बोले-मैंने भी वास्तव में कभी पाया था-यह नहीं, लेकिन जरूरत तो हो जाती है बिटिया! किसी भी चीज का परित्याग तो हम प्रेम से, प्रीति से नहीं करते। जिसे छोड़ जाते हैं, उसके लिये मन सदा छोटा बना रहता है, वह फिर मिटता नहीं; इसीलिये तो आज कैफियत का भागी बन गया हूँ। लेकिन तुम्हें जन्म से जो मिला है, वह बुरा हो या भला, उसी को आधार किये चलती हो। दोनों का फर्क सोच देखो जरा!

मृणाल मौन ही रही, कोई जवाब न सूझा। केदार बाबू भी कुछ देर चुप रह कर बोले-आज जमाने की भूली बातें भी धीरे-धीरे जग रही हैं बिटिया, मगर इतने दिनों तक ये कहाँ छिपी थीं!

मृणाल ने नजर उठाकर पूछा-किसकी बात, बाबूजी? केदार बाबू बोले-अपनी बात! बडे होने लायक भगवान ने अक्ल नहीं दी, बड़ा हो भी कभी नहीं पाया। मैं मामूली आदमी हूँ, लोगों से मिल-जुलकर ही काल काटा; लेकिन हममें जो बड़े हैं, जो समाज के शिरोमणि हैं, समाज के आचार्य हो गये हैं, उन्हीं के उपदेशों को सदा भक्ति से, श्रद्धा से मानता आया हूँ। उन्हीं के जाने कब के भूले हुए वाक्य मुझे याद आ रहे हैं। तुम कह रही थीं मृणाल, धर्म बदलने में, अच्छे को चुन लेने में झगड़ने की नौबत क्यों आयेगी, झगड़े की जरूरत ही क्यों पडेगी? मैं भी तो अब तक यही समझता रहा, यही कहता फिरा। लेकिन आज पता चला-जरूरत थी। आज देख पाया कि हिन्दुओं में जो लोग आज यह शिकायत करते हैं, कि देश-विदेश में उनका सिर जितना हमने नीचा किया है, उतना ईसाई पादरियों ने भी नहीं किया-उनकी शिकायत को आज झूठ कहकर तो नहीं उड़ा सकता! वास्तव में विदेशी-विधर्मियों के साथ हम जैसे विभीषण तो दूसरे नहीं।

मृणाल बहुत चंचल हो उठी, मगर उन्होंने उसका ख्याल ही नहीं किया; कहने लगे-चिढ़-झगड़े की बात अगर नहीं होतीं, तो हममें से जो सब बातों में आदर्श हैं, यहाँ तक कि जो मनुष्य में ही आदर्श कहाने योग्य हैं, उनके मुँह में, धर्म-मन्दिर में, धर्म की वेदी पर खड़े होकर राम के लिये रेमो, हरि के लिये होरी, नारायण के लिये नारेन क्यों निकलता? तो फिर सबको पुकारकर जोरदार गले से यह क्यों कहते, कि ये अभागे अगर बेमौत नहीं मरना चाहते हैं, तो हमारे इस बँधे घाट पर आयें! धर्मोपदेशकों की इस ताल-ठोंकाई से, समाज के सारे लोगों का लहू जैसा भक्ति से गर्म, वैसे ही श्रद्धा से रूखा हो उठता; आलोचना के उत्साह की मात्रा भी कहीं तिल भर कम नहीं होती; लेकिन आज, जीवन की सीमा पर पहुँचकर समझ रहा हूँ, कि उसमें उपदेश कुछ भी हो तो हो, धर्म के रहने की गुंजाइश न थी!

मृणाल ने दुःखी होकर कहा-यह सब आप मुझे क्यों सुना रहे हैं बाबूजी? वे सभी तो मेरे पूज्य हैं, नमस्य हैं! कहकर उसने हाथ जोड़कर कपाल से लगाया। उस भक्तिमती तरुणी के विनम्र मुखड़े की ओर देखकर मानो वे विभोर हो रहे, और थोड़ी देर में नौकरानी के बुलाने पर मृणाल के चले जाने पर भी, वे वैसे ही स्थिर बैठे रहे।

सास क्या कह रही थी-मृणाल यह सुनकर जब लौटी, तो अकस्मात् आवेग से दोनों हाथ फैलाकर केदार बाबू बोल उठे-तमाम जिन्दगी मेरी क्या इसी तरह, औरों की खामी-खराबी की शिकायत करते ही बीतेगी? इससे क्या कभी छुटकारा नही पाऊँगा?

मृणाल ने कहा-आपकी मच्छरदानी का कोना जरा फट गया है, थोड़ा खिसक जाइए न, सिलाई कर दूँ! मृणाल ने ताख पर से सिलाई का छोटा-सा डिब्बा उतारा। केदार बाबू उतर कर एक मोढ़े पर बैठ गये, और काम में लगी हुई मृणाल के झुके मुखड़े की ओर एकटक ताकते रहे। वह बिना किसी ओर देखे-सुने अपना काम करने लगी; लेकिन उसे देख-देखकर केदार बाबू की आँखें अकारण ही भर आने लगीं, और बार-बार धोती के छोर से वे उन्हें पोंछने लगे।

सिलाई खत्म करके डिब्बे को जगह पर रखकर मृणाल ने पूछा-रात आप क्या खायेंगे?

इस सवाल से केदार बाबू ने अचानक जोरों का एक निश्वास फेंककर, अपने अश्रु-करुण होंठों पर हँसी लाते हुए कहा-रात के भोजन के लिये अभी अकुलाने की जरूरत नहीं बिटिया, वह उसी समय सोचा जायेगा! मगर तुम जरा थिर होकर बैठो तो! जरा रुककर बोले-इस अपराध का यहीं अन्त है। मेरे मुँह से अब किसी की शिकायत नहीं सुनोगी! थोड़ा रुककर फिर बोले, मगर मुझसे खीझना मत बेटी, मैंने ठीक इसी के लिये यह प्रसंग नहीं उठाया!

उनके गीले कण्ठ-स्वर से चकित होकर मृणाल बोली-अपने यह क्यों कहा बाबूजी, मैं आपसे कभी खीझी हूँ?

जोर से सिर हिलाकर केदार बाबू कहने लगे-कभी नहीं बिटिया, कभी नहीं! तुम बिटिया हो न मेरी, इसीलिये मेरा सब अत्याचार-उपद्रव हँसकर ही सहती आयी हो। लेकिन कलेजे का खून देकर, इतने दिनों में जिस सत्य को पाया है, महज वही दिखाना चाह रहा था तुम्हें-पराई निन्दा-शिकायत की नीयत नहीं थी। आज मैंने समझा कि कभी जिस प्रकार जमात बनाकर, मनसूबा गाँठकर हमने धर्म को पकड़ना चाहा-धर्म वैसे हर्गिज नहीं पकड़ा जा सकता! वह अगर खुद पकड़ाई न दे, तो शायद पकड़ ही में न आये। परम दुःख की मूर्ति धारण कर, जिस दिन वे मनुष्य की चरम वेदना पर पाँव रक्खे, अकेले आकर खड़े होते हैं, उस समय उन्हें पहचान पाने की जरूरत है। जरा भी भूल-भ्रान्ति की गुंजाइश नहीं, मुँह फेरकर चले जाते हैं वे।

जिस प्रसंग को मृणाल टालकर बार-बार कतराती जा रही है, यह उसी का इशारा है-यह समझकर उसके संकोच और पीड़ा का अन्त न रहा; लेकिन आज कोई बहाना बनाकर उसने भागने की कोशिश न की, चुपचाप बैठी रही।

बार-बार बाधा पाकर इधर केदार बाबू की निगाह भी पैनी हो गयी थी, आज लेकिन उन्होंने भी कोई ख्याल नहीं किया; कहते गये-बिटिया, एक बात बार-बार कहकर भी मेरा जी नहीं भर रहा है, कि इतनी बड़ी दुनिया में एक तुम्हारे सिवा, मेरा अपना जन और कोई-कभी न था; इसीलिये नहीं जानता कैसे मेरे अन्तिम दिनों का सारा बोझ, सब बुरा-भला तुम्हारे ही ऊपर आकर टिका है। जो भी विधि-व्यवस्था के मालिक हैं, यह व्यवस्था उन्हीं की है! चूँकि

मैंने इसे निस्सन्देह समझ लिया है, इसीलिये मुझे कोई शर्म, कोई झिझक नहीं। पहले मन में कैसा तो लग रहा था कि मैं आ टपका; मगर आज वह सब बला मेरे मन से निकल गयी है।

मृणाल सिर उठाकर जरा हँसी। थोड़ा आगा-पीछा करके केदार बाबू फिर बोले-फिर कैसा तो लगता है, फिर भी गले से बात बाहर नहीं होना चाहती!

-तो छोड़िए, न ही कहो वैसी बात तो क्या!

केदार बाबू गर्दन हिलाकर बोले-उँहूँ, अब नहीं रहने की, नहीं-मेरा ख्याल है, वह सुरेश ही के साथ...

मृणाल को भी यह धोखा होता रहा है, इसीलिये वह सिर हिलाकर झुकाये, बैठी रही, बोली नहीं। कुछ देर सन्नाटा-सा रहा। बड़ी कोशिशों से खुद-ब-खुद को पराजित करके मानो वे बोले-एक बार महिम के पास जाना चाहता हूँ मृणाल, एक बार उसके मुँह से सुनना चाहता हूँ-बस इसलिये मेरी छाती धू-धू जल रही है! मगर अकेले उसके सामने जाकर मैं खड़ा कैसे हूँगा?

मृणाल ने तुरन्त अपनी करुणाभरी आँखें अभागे बूढ़े के शर्माए और भयभीत चेहरे पर टिकाकर कहा-आप अकेले क्यों जायेंगे? जाना ही पड़ेगा तो हम दोनों साथ चलेंगे!

-सच, चलोगी?

-बेशक चलूँगी! इसके सिवा, आपको अकेले मैं छोड़ ही कैसे सकती हूँ? आप चाहे जहाँ जायें, मैं साथ गये बिना न मानूँगी, कहे देती हूँ! मुझे कोई साथ नहीं ले जाता बाबूजी; मैं कहीं जरा घूम-घाम नहीं पाती!!

केदार बाबू ने कोई जवाब नहीं दिया, दोनों हथेलियों से गाल का सहारा लिये, जाँघ पर कुहनी टिकाकर झुक गये, और देखते-ही-देखते नजर आया-भीतर के घुमड़ते आवेग से, उनके सूखे-दुबले शरीर का एक-से-दूसरा छोर तक थर-थर काँपने लगा।

मृणाल चुप उनके सिरहाने के पास बैठी रही; कोई बात, सान्त्वना का एक शब्द तक न कहा। इकलौती बेटी की घिनौनी दुर्गत से जिस पिता का हृदय छिद रहा हो, उसे दिलासा देने योग्य उसे था भी क्या।

काफी देर इसी तरह बीती, उसके बाद अपने को सम्हालकर केदार बाबू ने कहा-बिटिया!

उनकी शक्ल देखकर मृणाल का कलेजा मानो टूक-टूक हो गया, मगर आँसू जब्त करके बोली-क्या बाबूजी?

-दुनिया में वेदना की मात्रा इतनी भी हो सकती है, यह तो मैंने कभी सोचा तक नहीं, मृणाल! इससे छुटकारे की क्या कोई राह नहीं? कोई नहीं बता सकता?

-लोग तो लेकिन मौत की यंत्रणा भी सह सकते हैं!

केदार बाबू बोले-मेरे लिये वह मर चुकी, तुम यही तो कहा चाहती हो बिटिया! बहुत हद तक वही है! बहुत बार मेरे जी में भी आया है-लेकिन मृत्यु का शोक जितना बड़ा होता है, उसकी शान्ति, उसका माधुर्य भी उतना ही बड़ा होता है!! लेकिन इस सान्त्वना की गुंजाइश कहाँ है मृणाल? यह असह ग्लानि, यह बेहद शर्म मेरे कलेजे की राह रोके इस तरह अड़ी है, कि उन्हें खिसका सकूँ, ऐसी जरा भी जगह नहीं! इतना कहकर वे चुप हो गये, और छाती पर हाथ रखकर फिर धीरे-धीरे बोले-सन्तान को जो मौत देते हैं, उनको हम यही कहकर क्षमा करते हैं कि उनके कार्य-कारण को हम नहीं जानते! हम...

बीच में ही टोककर मृणाल बोल उठी-तो हम भी वही कर सकते हैं बाबूजी! चाहे कोई हो, जिसका कार्य-कारण हमें मालूम नहीं, उसे माफ न भी कर सकें, कम-से-कम मन-ही-मन उसका विचार करके उसे अपराधी तो न बनायेंगे!

बूढ़े ठीक जैसे चौंक उठे, और दोनों आँखों की तेज नजर उस पर टिकाकर बुत-जैसे बैठे रहे।

मृणाल ने कहा-और सँझले दादा से मैंने यह सुना है कि दुनिया में ऐसे अपराध कम ही हैं, जिन्हें माफ नहीं किया जा सकता! जोश में केदार बाबू तनकर बैठ गये। बोले-इस अपराध को भी कभी-कोई माफ कर सकता है, मृणाल?

मृणाल चुप रही, वे वैसे ही ओज से कहने लगे-हर्गिज नहीं, हर्गिज नहीं! बाप होकर उसके इस बुरे गुनाह को मैं माफ नहीं कर सकता, किसी भी तरह नहीं!! वह क्षमा योग्य नहीं, उसे क्षमा करना उचित नहीं-यह मैं तुमसे साफ कहे देता हूँ!

मृणाल धीरे-धीरे बोली-योग्य-अयोग्य तो विचार की बात है बाबूजी, उसे क्षमा नहीं कहते! फिर क्षमा का फल क्या केवल अपराधी ही पाता है-जो क्षमा करता है, वह कुछ नहीं पाता?

बूढ़े को जैसे काठ मार गया। उसकी शान्त-स्निग्ध बातों ने उन्हें मानो अभिभूत कर दिया। जरा देर सन्न-से रहकर अचानक बोल उठे-मैंने इस ढंग से तो कभी सोचा नहीं मृणाल! तुमसे आज मानो मैंने एक नया तत्त्व सीखा। ठीक तो! जो लेता है, उसी के हिसाब में सोलहों आना वसूल देकर, दादा के खाते शून्य का आँकड़ा रखना होगा? यह हर्गिज सत्य नहीं हो सकता! ठीक है, किसका गुनाह कितना बड़ा है-इसका फैसला जो चाहे सो करे, मैं सिर्फ अपनी ओर देखते हुए क्षमा करूँगा! यही तुम्हारा कहना है न?

-आप यह कहकर मेरा अपराध क्यों बढ़ाते हैं, बाबूजी?

-तुम्हारा अपराध? संसार में इसकी भी जगह है बेटी?

मृणाल एकाएक उठ खड़ी हुई। बोली-माँजी मुझे आवाज दे रही हैं शायद, मैं आयी! और वह तेजी से कमरे से बाहर चली गयी।

(40)

मृणाल उठकर चली गयी, परन्तु केदार बाबू ने इसका ख्याल ही नहीं किया। वे अपनी बात के ही आनन्द में मगन हो कहते गये-मैं जी गया! जी गया मैं! तुमने मुझे बचा दिया, बिटिया! दुर्गति के दुर्गम जंगल में जब आँखें मेरी चौंधिया गयीं, मौत के सिवा जब सारे रास्ते बन्द पड़े थे-ऐसे में बगल में ही मुक्ति का इतना चौड़ा रास्ता खुला पड़ा है-यह तुम्हारे अलावा कौन बता सकता था! क्षमा करने की तो मैंने सोची ही न थी। कभी जी में आयी भी, तो जबरन उसे हटाकर मैंने यही सोचा-नहीं, हर्गिज नहीं! जब बेटी होकर उसने इतना बड़ा पाप किया, तो बाप के नाते उसे इतना बड़ा दान मैं नहीं दे सकता! मगर अरे मूढ़, ऐ अन्धे,

अरे रे कृपण! जब तू बाप होकर यह नहीं दे सकता, तो और कोई कैसे देगा भला? फिर वह तुम्हारा ले कितना-सा जायेगी? तेरी मुआफी का सब तो तेरे ही घर वापस आयेगा? अपनी मृणाल बिटिया के इस तत्त्व को जरा आँख खोलकर देख! इसके बाद मानो कुछ देखने के लिये, उन्होंने आँखें फाड़कर बादल-घिरे आसमान की तरफ देखा, और जी-जान से मन-ही-मन कहने लगे-मैंने माफ कर दिया, माफ कर दिया! सुरेश, तुमको मैंने क्षमा किया! अचला, तुमको भी क्षमा किया!! पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, जो जहाँ हो, मैंने आज सबको क्षमा किया! आज से मुझे किसी से कोई शिकवा नहीं, किसी से कोई शिकायत नहीं-मैं आज मुक्त हूँ, स्वाधीन हूँ, परमानन्द हूँ! कहते-कहते एक अनिर्वचनीय आनन्द से उनकी दोनों आँखें मुँद आयी। दोनों हाथ मिलाकर गोद पर रखते रही, मुँदी आँखों की कोर से पिता का स्नेह मानो झर-झर झरने लगा। उनके होंठ काँपने लगे, अस्फुट स्वर में कहने लगे-तू कहाँ है बेटी, एक बार लौट आ! मैं तुझे इस दुनिया में लाया हूँ, मैंने तुझे कलेजे से लगाकर बड़ा किया है-तू अपने सारे कसूर, अपने सारे अपमान के साथ ही अपने पिता की गोद में लौट आ-मैं अपने हृदय से तेरे सारे जख्म, सारी जलन धो-पोंछकर, तुझे कलेजे से लगाकर रक्खूँगा। हम घर से बाहर नहीं निकलेंगे, लोगों से नहीं मिलेंगे-बस, तू और मैं...

-बाबूजी!

उन्होंने मुड़कर मृणाल को देखा, शायद अपने को संयत करने की भी एक बार कोशिश की; पर दूसरे ही क्षण फर्श पर लुढ़ककर, बच्चे की नाईं आत्र्तस्वर में रो उठे-बिटिया, मेरा कलेजा टूक-टूक हो गया! सभी उसे जाने कितना कष्ट दे रहे हैं। मैं तो अब सह नहीं पाता!

मृणाल कुछ न बोली, सिर्फ उनके जमीन पर लुढ़के माथे को चुपचाप अपनी गोद में रखकर, सहलाने लगी। उसकी भी आँखों से आँसू बहने लगे।

फागुन का यह मेघ-घिरा दिन शायद यों ही बीत जाता, पर केदार बाबू चट उठ बैठे। बोले-अच्छा मृणाल, महिम को पत्र दें तो जवाब नहीं मिलेगा?

-क्यों नहीं? मेरा ख्याल है, कल-परसों ही मिल जायेगा।

-तुमने क्या उन्हें कुछ लिखा है?

मृणाल ने सिर हिलाकर कहा-हाँ।

संकोच से बूढ़े ने यह नहीं पूछा कि क्या लिखा है। बाहर की ओर देख कर बोले-बेला अभी है थोड़ी-सी, मैं जरा घूम आऊँ! उन्होंने बदन पर चादर ली, उठायी, लेकिन दो-एक कदम बढ़ते ही ठिठक गये। कहा-देखो बिटिया-

-जी, बाबूजी!

-मैं डर रहा हूँ, डर ठीक नहीं-लेकिन सोचता हूँ...

-काहे की बाबूजी...

-बात यों है; मैं सोचता हूँ, अच्छा तुम्हारा क्या ख्याल है, हम जाना चाहें, तो महिम एतराज करेगा?

मृणाल को यही डर था, चिन्ता थी, और मन में उसने इसका जवाब भी एक प्रकार से ठीक कर रक्खा था। इसीलिये तुरन्त बोली-अभी इसकी फिक्र से क्या लाभ? उनका पता चले, हम लोग चले चलेंगे! उस समय जब सँझले दादा मुझे निकाल देंगे, तो दुनिया की बहुत-सी बातें अपने-आप मालूम हो जायेंगी। फिर किसी से पूछना ही नहीं पड़ेगा...

केदार बाबू ने पूछा-तो सच ही तुम मेरे साथ चलोगी?

मृणाल ने कहा-सच! लेकिन मैं तो आपके साथ नहीं चलूँगी, आप मेरे साथ चलेंगे!!

बूढे फिर कुछ जवाब देना चाह रहे थे, लेकिन एक बार उसकी ओर देखकर ही चुप हो रहे।

+ + +

फागुन के एक ही दिन, तीसरे पहर, बंगाल के बाहर और भी दो नर-नारी के आँसू ऐसे ही बेताब हो उठे थे। सुरेश ने मुहर मारा हुआ बड़ा लिफाफा अचला को देते हुए कहा-दूँ-दूँ करते-करते भी यह कागज तुम्हें देने का आज तक साहस नहीं हुआ, मगर आज तो दिये बिना उपाय नहीं!

अचला ने लिफाफा लेकर दुविधा से पूछा-मतलब?

सुरेश जरा हँसकर बोला-मुझे साहस नहीं होता, ऐसी कौन-सी भयंकर चीज हो सकती है-यही तो सोच रही हो तुम? सोच सकती हो-मैंने भी बहुत सोचा है! इसका कुछ मतलब है तो कभी-न-कभी प्रकट होगा ही। लेकिन बहुत अपमान, बहुत दुःख का बोझा तुमने मतलब समझे बिना ही मुझसे लिया है अचला-इसे भी उसी तरह लो!

अचला ने सहज भाव से पूछा-इसमें क्या है?

सुरेश ने हाथ जोड़कर कहा-तुमसे मैंने आज तक जो कुछ भी पाया है, डकैत के समान छीनकर ही पाया है। लेकिन आज तुमसे मैं एक भीख माँगता हूँ-इसे तुम जानना मत चाहो!

अचला चुप रही। सोच न सकी-इसके बाद क्या कहे।

पर्दे के बाहर से बैरे ने कहा-बाबूजी, इक्का वाला कह रहा है-और देर करेंगे तो पहुँचने में रात हो जायेगी। रास्ते में झड़ी-पानी की भी सम्भावना है।

अचला ने चकित होकर पूछा-आज कहाँ जाओगे? ऐसे दिन में?

सुरेश ने हँसकर सुधार दिया-यानी ऐसे दुर्दिन में, मझोली जा रहा हूँ। प्लेग का कोई डॉक्टर नहीं मिल रहा है-गाँव-का-गाँव मसान होता जा रहा है! अबकी वहाँ पाँच-सात दिन रहना पड़ेगा, और कौन जाने, रही जाना पड़े! कहकर वह जरा हँसा।

अचला उसकी तरफ देखती रह गयी। उसे भी थोड़ी-बहुत खबर थी, कि सात-आठ कोस पर की कुछ बस्तियाँ प्लेग के मसान बनती जा रही हैं-और शहर से इतनी दूर, इस भयंकर महामारी में चिकित्सकों की कमी होगी, इसमें ताज्जुब क्या? उसे यह भी पता चल गया था कि सुरेश छिपाकर, काफी रुपयों का दवा-दारू जहाँ-तहाँ भेज रहा है, खुद ही तड़के उठकर कहीं-न-कहीं चला जाता है, लौटने में कभी साँझ हो जाती है, कभी रात। परसों तो घर लौटा ही नहीं। इतने पर भी वह यह नहीं सोच सकी थी कि सुरेश घर छोड़कर, कुछ दिनों के लिये एकबारगी मौत के मुँह में ही जाकर रहेगा। इसीलिये यह प्रस्ताव सुनकर वह उसकी ओर ताकती रह गयी। जो महापापी भगवान् को नहीं मानता, पाप-पुण्य नहीं

मानता; अपने दोस्त और उसकी बेकसूर स्त्री का जिसने इतना बड़ा सत्यानाश कर दिया, हिचका नहीं-उसकी ओर जब-जब भी अचला ने देखा, तभी उसका मन उसके प्रति जहरीला हो उठा है। पर आज उसकी ओर ताककर उसका जी विष से नहीं, विस्मय से भर गया। सुरेश के होंठ के कोने पर अभी भी हँसी की लकीर खिंची थी, बड़ी फीकी-सी; परन्तु उसी जरा-सी हँसी में अचला ने सारे संसार के वैराग्य को भरा देखा। चेहरे पर उसके उद्वेग नहीं, उत्तेजना नहीं; मौत बीच जाकर खड़ा होगा, मगर चेहरे पर जरा भी शंका नहीं। तो क्या इस नास्तिक और ऐसे महास्वार्थी के लिये भी, उसकी अपनी जान इतनी सस्ती है? भोग के सिवा जिसे और कुछ नहीं आता, भोग के सारे साधनों में डूबे रहकर भी उसका जीवित रहना इतना तुच्छ, ऐसी उपेक्षा की वस्तु है कि इस आसानी से सब कुछ को छोड़ जाने के लिये एक पल में तैयार हो गया? शायद न भी लौटूँ! यह और चाहे जो हो, मजाक नहीं है। मगर यह कहना क्या इतना आसान है?

भीतर के धक्के से वह चंचल हो उठी। हाथ का लिफाफा देखकर पूछा-तो यह क्या तुम्हारी वसीयत है?

सुरेश ने भी सवाल ही किया-अभी-अभी तुमने जो भीख दी, उसे लौटा लेना चाहती हो?

अचला कुछ क्षण चुप रही; बोली-खैर, मैं वह नहीं जानना चाहती, लेकिन तुम्हें मैं जाने न दूँगी?

-क्यों?

जवाब में उस लिफाफे को फिर से उलट-पुलट कर अचला ने कहा-तुमने मेरा चाहे जो भी किया, फिर भी मैं अपने लिये तुम्हें मरने नहीं दूँगी!

सुरेश ने जवाब नहीं दिया। अपनी बात पर जरा शरमा कर, उस बात को कुछ हलकी करने के ख्याल से वह बोली-तुम कहोगे कि मैं तुम्हारे लिये क्यों मरने लगा, मैं तो जा रहा हूँ गरीबों के लिये जान देने-मगर मैं वह भी न करने दूँगी!

यह सुनते ही सुरेश को महिम याद आ गया और कलेजे के भीतर से एक निश्वास उमड़ कर निस्तब्ध कमरे में फैल गया। इसीलिये कि जीवन की ममता कितनी नाचीज है, और किस आसानी से वह उसे गँवाने को तैयार हो सकता है। इसका एक ही गवाह आज भी है, और वह है महिम। उसकी आज यात्रा ही यदि उसकी महायात्रा हो, तो सिर्फ वही संगीहीन और निरा मौन आदमी ही मन-ही-मन समझेगा कि सुरेश ने लोभ से नहीं, क्षोभ से नहीं, घृणा से नहीं, इहकाल-परकाल कुछ के लिये नहीं, उसने सिर्फ इसीलिये जान दी कि उसकी मौत आयी थी।

उसकी आँखों में आँसू भर आना चाहने लगे, पर उसने रोका। बल्कि सिर उठाकर हँसने की कोशिश करते हुए कहा-मैं किसी के लिये भी मरना नहीं चाहता, अचला! चुपचाप घर में बैठे रहना अच्छा नहीं लगता, इसीलिये जरा घूमने जा रहा हूँ। मैं मरने क्यों लगा, नहीं मरूँगा?

-फिर यह वसीयत क्यों?

-यह वसीयत है, यह तो साबित नहीं हुआ है।

-न हो, पर मुझे अकेली छोड़कर चले जाओगे तुम?

-चला ही जाऊँगा; और अब लौटूँगा नहीं, यह भी तो तै नहीं हो गया है।

-नहीं हुआ है? इस परदेश में मुझे बिल्कुल बेपनाह करके-अचला रो पड़ी।

सुरेश उठते-उठते भी बैठ गया। जीवन में आज पहली बार, एक अदम्य आवेग को रोककर वह शान्त स्वर में बोला-मैं तो तुम्हारा संगी हूँ नहीं, अचला! आज भी तुम अकेली हो, और वह दिन अगर सच ही आ जाये, तो भी तुम्हें उससे ज्यादा बेपनाह न होना पड़ेगा!!

अचला के आँसू बह रहे थे, उन्हीं आँसूभरी आँखों को सुरेश पर टिकाकर उसने देखा, लेकिन उसके होंठ थर-थर काँपने लगे। उसके बाद दाँत से होंठ दबाकर उस कम्पन को रोकने की चेष्टा करती हुई वह रो पड़ी-मुझसे तुम और क्या चाहते हो, मेरे और क्या है?-कहते-कहते मुँह को आँचल से दबाये वहाँ से भाग गयी।

बैरे ने आकर कहा-जी, इक्का वाला...

-उसे सब्र करने को कहो जरा!

उसी समय कोचवान ने बताया-गाड़ी बड़ी देर से तैयार खड़ी है।

-गाड़ी क्यों?

कोचवान ने कहा-माँजी ने हुक्म दिया था, वे उस डेरे में जायेंगी, मगर नौकरानी ने कहा-उनका कमरा बन्द है। बहुत पुकारा, कोई जवाब नहीं आता। तो घोड़े खोल दिये जायें?

-अच्छा, ठहरो!

इस कमरे वाला दरवाजा अन्दर से खुला ही था, उसी का पर्दा हटाकर सुरेश चुपचाप सोने के कमरे में चला गया, और पास ही एक कुर्सी पर बैठ गया। कमरा यह दोनों ही का था, उसने अनाधिकार प्रवेश नहीं किया। लेकिन सामने की साफ-सुथरी मेज पर वह जो सुन्दरी औंधी पड़ी सो रही थी, उसकी किसी बात ने आज उसे आकर्षित नहीं किया, बल्कि उसे दुखाकर पीछे ही हटा देने लगी। अचला को उसके आने की खबर नहीं हुई, वह रोती रही, और उसे एकटक देखता हुआ सुरेश सोचता रहा। इधर कुछ दिनों से अपनी गलती उसे महसूस होने लगी थी, पर इस लोटती हुई देहवल्लरी ने, उस वेदना ने-उनके सम्मिलित माधुर्य ने उसकी आँखों पर की पट्टी को नोच फेंका। उसे लगा-प्रातः किरणों में पत्ते की नोंक पर ओस की जो बूँद हिलती रहती है, जो लोभी उसके अपार-अनुपम सौन्दर्य को हाथ में उठाकर उपभोग करना चाहता है, उसने ठीक वैसी ही भूल की है। वह नास्तिक है, आत्मा को नहीं मानता; जिस झरने से अनन्त सौन्दर्य झरता रहता है-वह असीम उसके लिये झूठा है; इसीलिये सारी चेतना उस स्थूल पर एकाग्र करके, उसने निस्सन्देह समझा था कि इस सुन्दर शरीर पर कब्जा कर लेने से ही मैं पा जाऊँगा-आज उसकी भूल की वह आकाश चूमती इमारत चकनाचूर हो गयी। प्राप्ति की उस अदृश्य पकड़ से अलग होकर पाना कितना बड़ा बोझा है, कितनी बड़ी भूल है-यह तथ्य आज उसके हृदय में जाकर गड़ा। अचला को देखकर उसे आज इसी सत्य की प्रतीति होने लगी, कि ओस की बूँद मुट्ठी में आकर देखते-ही-देखते

किस प्रकार पानी की बिन्दु-सी सूख जाती है। हाय, पल्लव की कोर ही जिसके लिये विधाता की दी हुई जगह है, उसे इस मरुभूमि से किस तरह बचाकर रक्खे?

अजानते ही उसकी आँखों में पानी भर आया। पोंछकर उसने आवाज दी-अचला!

अचला चौंक उठी, पर वैसी ही चुप पड़ी रही। सुरेश ने कहा-तुम्हारी गाड़ी तैयार है, आज रामबाबू के यहाँ घूमने जाओगी?

फिर भी अचला का कोई जवाब न मिला, तो वह बोला-जी न चाहे आज, तो घोड़ों को खोल दें। मैं भी शायद नहीं जा पाऊँगा। इक्के को लौटा देता हूँ! कहकर वह बैठक में चला गया।

वहाँ दस-पन्द्रह मिनटों तक वह क्या सोचता रहा, उसी को नहीं मालूम। इतने में साड़ी की खसखसाहट हुई। चौंककर देखा-सामने ही अचला खड़ी थी। उसने भरसक आँख की लाली को पोंछ डाला था, और एक धनी की पत्नी के योग्य पोशाक में ही आयी थी। बोली-उनके यहाँ आज जाना ही पड़ेगा!

अचला की यह पोशाक उसके लिये नहीं, बल्कि वहाँ के राज-अतिथियों के लिये है-सुरेश ने यह समझा; तो भी जड़ाऊ गहनों से सजीगुजी उस नारी ने जरा देर के लिये उसे मोहित कर दिया। ताज्जुब में आकर पूछा-जाना ही पड़ेगा, ऐसी क्या बात?

-राक्षसी बुखार लिये ही कलकत्ते से लौटी है। यह भी पता चला कि कल से चाचाजी को बुखार आ गया है!

-जब से आयी हो; तब से क्या तुम कभी उनके यहाँ गयीं?

-नहीं।

-उनके यहाँ से भी कोई नहीं आये?

सिर हिलाकर अचला ने कहा-नहीं!

-रामबाबू भी नहीं।

-नहीं।

यहाँ आने के बाद से प्लेग वालों के लिये सुरेश इस कदर हैरान रहा, कि घर-गिरस्ती और आपसी-विरानों के बारे में इन छोटी-मोटी भूलों पर ध्यान ही न दे सका। सो सुनकर वह हैरान हुआ। बोला-गजब! अच्छा, जाओ!

अचला ने कहा-सचमुच अपनी ओर से गजब ही हुआ! एक को बुखार और एक जने खुद खाट न पकड़ लेने तक मेहमानों की खातिरदारी में परेशान रहे। उचित हम लोगों का ही जाना था!

-अच्छा जाओ। जरा जल्दी लौट आना!

अचला जरा देर चुप रहकर बोली-तुम भी साथ चलो।

-मुझे क्यों घसीट रही हो?

अचला नाराज होकर बोली-अपनी बीमारी की बात याद न हो चाहे, मगर डॉक्टर के नाते चलो!

अच्छा, चलो-सुरेश कपड़े बदलने के लिये बगल के कमरे में चला गया।

इक्के वाले को कोई जवाब नहीं मिला था, इसलिये वह तब भी खड़ा था।

अचला ने नीचे उतर कर देखा। खामखाँ रंज हो उठी वह। बैरे से इसकी कैफियत तलब करती हुई, पैसे देकर उसे लौटा देने का हुक्म दिया। बैरे ने सुरेश की ओर ताकते हुए, डरते-डरते पूछा-जी... कल...

जवाब अचला ने दिया। कहा-नहीं। बाबू नहीं जायेंगे! इक्के की जरूरत नहीं।

सुरेश गाड़ी पर सामने वाली जगह में बैठने जा रहा था। उसके कुरते का छोर खींचकर अचला ने बगल में बैठने का इशारा किया। गाड़ी चल पड़ी। दोनों चुप। अगल-बगल बैठने के बावज़ूद दोनों, दोनों तरफ की खिड़की से बाहर की ओर देखते रहे।

गाड़ी जब बगीचे का फाटक पार करके सड़क पर जा निकली, तो सुरेश ने धीमे-धीमे कहा-अचला!

-क्या है?

-जानती हो, आजकल मैं क्या सोचता रहता हूँ?

-नहीं।

-आज तक जो सोचता आया हूँ, ठीक उसका उल्टा! उस समय सोचा करता था-तुमको कैसे पाऊँ, और अब सोचता हूँ-तुम्हें छुटकारा कैसे दूँ!! तुम्हारा भार अब मानो ढोया नहीं जाता!!!

इस अनसोचे और बेहद कठोर आघात से, अचला का देह-मन मानो जरा देर के लिये पंगु बन गया। यह नहीं कि उसे इस पर सच ही यकीन न आया, फिर भी अभिभूत-सी बैठी रही। बोली-मैं जानती थी, पर यह तो...

सुरेश ने कहा-हाँ, गलती मेरी ही है-तुम लोग जिसे पाप का परिणाम कहती हो! फिर भी बात यह सही है। मन-विहीन शरीर का बोझा ऐसा दुर्वह होता है, यह मैंने ख्वाब में भी नहीं सोचा था!

अचला ने नजर उठाकर पूछा-तुम क्या मुझे छोड़कर चले जाओगे?

सुरेश ने बिना झिझके कहा-खैर, वही समझ लो!

इस बेखटके जवाब को सुनकर अचला एकबारगी चुप हो गयी। उसके रुँधे जी को मथकर केवल एक ही बात चारों ओर घुमड़ने लगी-यह वही सुरेश है! यह वही सुरेश है! आज उसी के लिये वह दुर्वह बोझ है। आज वही उसे छोड़ जाना चाहता है। जबान से ऐसा कहते भी आज उसे हिचक न हुई।

मगर सबसे बड़ा गजब यह कि वही उसके अपार दुःख की जड़ है। कल तक भी इसकी हवा से सारी देह जहरीली होती रही है।

बादल घिरे तीसरे पहर के आसमान के नीचे, सूनी सड़क पर प्रतिध्वनि जगाती हुई गाड़ी तेजी से दौड़ रही थी, और उसी के अन्दर बैठे ये दोनों जने बिल्कुल मौन। सुरेश क्या सोच रहा था-वही जाने; पर उसके मुँह से निकले शब्दों की कल्पनातीत निष्ठुरता को पार करके भी, आज एक नये भय से अचला का मन भर गया। सुरेश नहीं है-वह अकेली है। यह अकेलापन कितना बड़ा है, कैसा भयावना-लमहे में बिजली की नाईं उसके मन में कौंध गया। दुर्भाग्य से वह जो नाव लिये संसार-समुद्र में बह चली है, वह निश्चित मृत्यु में ही तिल-तिल डूब रही है-इस बात को उससे ज्यादा कोई नहीं जानता। तो भी इस जाने-चीन्हे भयावने आश्रय को छोड़, वह ओर-छोरहीन समुद्र में पड़ी है-यह ख्याल आते ही उसका सारा शरीर बर्फ-जैसा ठण्डा हो गया। उसका अब कोई नहीं-उसे प्यार करने को, घृणा करने को, रक्षा करने को, मार डालने को-कहीं-कोई नहीं, संसार में वह निरी अकेली है। इसकी याद से उसका दम घुटने लगा।

अचानक उसका अवश-विवश दायाँ हाथ सुरेश की गोद में जा रहा, कि उसने चौंककर देखा। जी-जान से उद्वेगहीन कण्ठ को साफ करके अचला ने कहा-अब क्या तुम मुझे प्यार नहीं करते?

उसके हाथ को जतन से अपने हाथ में लेकर सुरेश ने कहा-इसका उत्तर वैसे बेखटके तो नहीं दे सकता अचला, लगता है-हो चाहे जो, पर इतना तो सही है कि यह भूत का बोझा ढोते चलने की ताकत मुझ में नहीं।

अचला फिर जरा देर मौन रहकर, धीमे और करुण स्वर में बोली-तुम और कहीं ले चलो...

-जहाँ कोई बंगाली न हो?

-हाँ, जहाँ शर्म मुझे हर पल बेधती न रहे...

-वहाँ क्या तुम मुझे प्यार कर सकोगी, अचला? सच?-उसने आवेश में उसका सिर छाती में खींचकर होंठों को चूम लिया।

अपमान से आज भी अचला का चेहरा लाल हो उठा, होंठ वैसे ही जल उठे-जैसे बिच्छू ने डंक मारा हो; तथापि गर्दन हिलाकर उसने हौले-हौले कहा-हाँ, कभी मैं तुमको प्यार करती थी। नः छिः-छिः, कोई देख लेगा! यह कहकर उसने अपने को सुरेश से छुड़ा लिया और सीधी होकर बैठी। लेकिन जिसके हाथ में उसका हाथ पड़ा रहा, उसने स्नेह से उसे जरा दबाकर एक गहरा-लम्बा निश्वास त्यागा।

गाड़ी चौड़ी सड़क छोड़कर रामबाबू के बंगले के बगीचे में घुसी और देखते-ही-देखते विशाल वेलर की जोड़ी-गाड़ी बरामदे में जाकर रुक गयी।

चटकदार नई पोशाक वाले साईसों ने दरवाजा खोल दिये, और सुरेश ने उतरकर खुद अचला को हाथ पकड़कर उतारा। अचला की नजर ऊपर के छज्जे पर थी। वहाँ और स्त्रियों के साथ राक्षसी भी दौड़ी-दौड़ी आकर खड़ी थी-बहुत दिनों के बाद चार-आँखें हो जाने से, दोनों ही सखियों के होंठों पर हँसी फूट पड़ी। रामबाबू नीचे ही थे। खुशी और स्नेह से बदन की चादर फेंककर उन्होंने कहा-आओ, आओ बिटिया!

इस अपरिचित स्वर की व्यग्र-व्याकुल पुकार से, उसकी हँसती हुई आँखों की निगाह पलक-मारते बूढ़े की ओर गयी, लेकिन उनके बगल में खड़ा था महिम, और उसी को देखकर वह मानो पत्थर हो गयी थी। आँखें-चार हुईं, परन्तु पलक न गिरी। अचला के अंग-अंग का मणि-मुक्ता झलमला उठा, हीरा-मोती की चमक जरा भी मन्द न हुई, लेकिन उन्हीं के बीच का खिला हुआ कमल मानो मुरझा गया।

मगर साँझ के झुटपुटे में बूढ़े को भूल गयी। एक अजनबी सज्जन के सामने उसे लाज से मालिन और मुश्किल में पड़ी समझकर, उन्होंने व्यस्त होकर दोनों हाथों उसके ललाट को पकड़कर कहा-छोड़ो भी बिटिया, तुम्हें चरणों की धूल नहीं लेनी होगी; ऊपर जाओ...

अचला कुछ नहीं बोली, लड़खड़ाती हुई चली गयी।

रामबाबू ने कहा-सुरेश बाबू ये...

सुरेश ने कहा-गजब! हम तो एक क्लास में-छुटपन से साथ-साथ-इसके बाद अचानक हँसने की कोशिश से चेहरा बनाकर बोला-अरे, तुम यहाँ महिम...

लेकिन बात पूरी न हो सकी। महिम भागकर कमरे में चला गया।

काठ मारे-से बूढ़े ने सुरेश की ओर ताका-और सुरेश ने भी जवाब में हँसने की चेष्टा की, पर वह भी न हो सका। ऊपर जाने वाले लकड़ी के जीने पर एकाएक जोरों की आवाज होने से दोनों ही ठक् रह गये। शोर मचा। रामबाबू दौड़े। जाकर देखा-अचला औंधी पड़ी है। वह दो-ही-तीन सीढ़ियाँ चढ़ पाई थी; उसके बाद ही बेहोश हो गिर पड़ी थी।

(41)

लौटते समय गाड़ी के एक कोने में सिर टेककर अचला यही सोच रही थी-आज की बेहोशी, काश दूर न होती! अपने हाथों अपनी जान लेने के घिनौनेपन को वह मन में जगह भी नहीं दे सकती-पर ऐसी ही कोई शान्त, स्वाभाविक मृत्यु! सहसा होश जाता रहे और नींद आ जाये-ऐसी नींद कि फिर न टूटे! मौत को ऐसी आसानी से पाने की क्या कोई तरकीब नहीं? कोई नहीं जानता?

सुरेश ने उसे छूकर कहा-तुमने और कहीं जाने की ख्वाहिश जाहिर की थी। चलोगी?

-चलो।

-कल तो यहाँ मुँह दिखाना दूभर होगा।

-मगर वे तो किसी से कुछ कहेंगे नहीं।

सुरेश के एक लम्बा निश्वास छूट पड़ा। जरा देर चुप रहकर धीरे-धीरे बोला-नहीं, महिम को मैं जानता हूँ! नफरत से वह हम लोगों की निन्दा को जबान पर भी नहीं ला सकता!!

सुरेश ने यह बात बड़ी आसानी से कही, परन्तु अचला का सर्वांग सिहर उठा। उसके बाद जब तक गाड़ी घर जाकर लगी, तब तक दोनों ही चुप रहे। सुरेश ने उसे एहतियात से उतार

कर कहा-तुम जरा सोने की चेष्टा करो अचला, मुझे कई जरूरी चिट्ठियाँ लिखनी हैं। वह अपने कमरे में चला गया।

बिस्तर पर पड़ी-पड़ी अचला सोचने लगी-इक्कीस की तो अपनी उम्र है, इस बीच मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया कि नसीब में यह गत हुई! यह कोई नयी बात न थी, जब-तब वह अपने-आप से यह पूछा करती, और बचपन में जहाँ तक याद आता, याद करने की कोशिश करती। आज उसे अचानक उस तर्क की याद आ गयी, जो मृणाल से एक दिन हुआ था, और उसी सिलसिले में वह एक-एक कर सारी बातों को दुहरा गयी। पति से कभी उसकी पटी नहीं, खटपट में ही बीता। महज अन्तिम दिन उसने रोग-शय्या पर इसे बहुत अपना पाया था। उसके जीवन को जब कोई खतरा नहीं रह गया था, मन जब निर्भय और बेखटका था, तब के स्वच्छ-स्निग्ध आनन्द में जब उसे परायी वेदना बड़ी पीड़ा पहुँचाती थी-ऐसे में एक दिन मृणाल के गले लिपटकर, आँसू रुँधे स्वर में उसने कहा था-ननदजी, तुम कहीं हमारे समाज, हमारे मत की होतीं, तो तुम्हारी तमाम जिन्दगी को मैं यों बेकार नहीं जाने देती!

मृणाल ने हँसकर पूछा था-आखिर क्या करती सँझली दी, फिर से मेरी शादी कर देती?

अचला ने कहा-और क्या? मगर बख्शो बहन, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, शास्त्र की दुहायी तो न दो! यह कुश्ती इतनी लड़ी जा चुकी है, कि उसके होने की सुनते ही मेरी रूह फना हो जाती है!!

मृणाल ने वैसे ही हँसते हुए कहा था-बात डरने की ही है, क्योंकि उनकी टक्करें कब किधर को सख्त हो पडें़, कुछ कहा नहीं जा सकता। लेकिन उसके एक पहलू पर तुमने गौर नहीं किया है सँझली दी, वह यह कि वे लड़ते इसीलिये हैं कि लड़ना उनका पेशा है, इसीलिये कि उनके हाथ में हथियार हैं! नतीजा यह होता है कि जीत-हार महज उन्हीं की होती है, उस लड़ाई से हमारा-तुम्हारा कुछ जाता-आता नहीं। दो में से कोई पक्ष हमें नहीं पूछता!

अचला ने पूछा था-लेकिन पूछता तो क्या होता?

मृणाल ने जवाब दिया-यह तो नहीं बता सकती! यह तो मैं तुम्हारी ही तरह सोचना सीखती, या तो तुम्हारे प्रस्ताव पर राजी होती-तो हो सकता है, ब्याहने वाला कोई जुट भी जाता! कहकर वह हँसी थी।

उसकी हँसी से बेहद कुढ़कर अचला ने जवाब दिया था-मैं यह जानती हूँ-जब भी मेरे समाज की बात आती है, तुम अवज्ञा दिखाती हो! परन्तु हमारे समाज को छोड़ो, जो भी इस पर लड़ते हैं, वे सब-के-सब क्या पेशेवर ही हैं? सच्ची हमदर्दी क्या एक में भी नहीं होती?

मृणाल ने जीभ काटकर कहा था-ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जिन्हें मन में लाना भी पाप है, सँझली दी! मगर यह नहीं, बहन! कल ही सुबह तो चली जा रही हूँ मैं। जाने के पहले कोई मजाक भी नहीं कर सकती? और उसकी आँखों में आँसू भर आये थे। अपने को सम्हालकर उसने गम्भीर होकर कहा था-पर तुम तो मेरी सारी बातें समझ नहीं सकोगी बहन! तुम लोगों के लिये ब्याह महज एक सामाजिक-विधान है-इसीलिये उस पर भला-बुरा विचार किया जा सकता है-तर्क से, दलील से राय बदल सकती है। मगर हमारे लिये यह धर्म है! पति को हम बचपन से इसी रूप में अपनाते आते हैं। यह तो सब तर्कों से परे की चीज है, बहन!

हैरान-सी रही अचला ने पूछा था-खैर, वही सही! मगर मनुष्यों का धर्म क्या नहीं बदलता है?

मृणाल ने कहा था-धर्म के विचार बदलते हैं, भूल को कौन बदल सकता है? यही कारण है कि लड़ाई-झगड़े के बावजूद, यह मूल वस्तु आगे भी सब जातियों में एक-सी है। पति के दोष-गुण का विचार हम सब भी करते हैं, उनके बारे में विचार भी बदलते हैं-आखिर हम भी तो इन्सान हैं! लेकिन अपने लिये पति नित्य हैं, क्योंकि वे धर्म हैं! वे जीवन में भी नित्य हैं, मरण में भी! उन्हें हम बदल नहीं सकते। अचला कुछ देर चुप रह गयी। पूछा-यही ठीक है, तो इतना अनाचार क्यों है? मृणाल ने कहा था-वह चूँकि रहेगा, इसीलिये है! जब धर्म नहीं रहेगा, तब यह भी नहीं रहेगा!! कुत्ते-बिल्लियों में तो अनाचार कुछ नहीं है बहन!!!

अचला को ढूँढ़े कोई जवाब न मिला, सो कुछ देर चुप रहकर उसने कहा था-तुम्हारे समाज की अगर यही शिक्षा है, तो जो लोग शिक्षा देते हैं, उन्हें इतना सन्देह क्यों-फिर क्यों वे लोग इतने सावधान रहते हैं? इतना परदा, इतना छिपाव-बचाव, सारी दुनिया से बचाकर रखने की ऐसी जी-तोड़ कोशिश क्यों? इस जबरन सतीत्व की कीमत तब जानती, जब कसौटी का मौका मिलता!

उसके तुनकने से चौंककर मृणाल ने हँसकर कहा था-यह तो बहन तुम उनसे पूछो जाकर, जो ये कायदे-कानून बना गये हैं। हमने तो जो-कुछ अपने माँ-बाप से सीखा है उसी का पालन करती जा रही हैं! मगर एक बात मैं तुमसे जोर देकर कहूँगी-जिसने यह कबूल कर लिया है कि पति धर्म हैं, परकाल की निधि हैं, उनके पाँवों बेड़ी बाँधों चाहे बेड़ी काट दो, उसके सतीत्व की खुद-ब-खुद कसौटी हो चुकी है! इतना कहकर वह कुछ क्षण रुकी थी, और तब धीरे-धीरे कहा था-मेरे पति को तो तुमने देखा था? बुड्ढे थे, गरीब थे, रूप-गुण भी निहायत मामूली ही था-लेकिन वही मेरे इहकाल थे, वही मेरे परकाल हैं! उसने आँखें मूँदकर शायद मन-ही-मन उनको याद की, और फिर जरा फीकी हँसी हँसकर बोली-मिसाल शायद वह ठीक न होगी, पर बात यह बावन तोले पाव रत्ती ठीक है, कि बाप अपने काने-लँगड़े लड़के पर ही सारा स्नेह उडेल देता है। दूसरे का खूबसूरत लड़का पल को उसके मन में क्षोभ ला सकता है, पर पिता के धर्म को एक तिल आँच नहीं आती! जाते समय अपना सर्वस्व वे कहाँ रख जाते हैं, यह तो तुम जानती हो? लेकिन अपने पितृत्व पर सन्देह के नाते कभी बाप का धर्म अगर टूट जाता है, तो नेह को माफी ढूँढ़े नहीं मिलती! मगर हमारी शिक्षा और विचार का स्रोत जुदा है मेरी बहना, मेरी यह मिसाल या ये बातें तुम शायद ठीक-ठीक समझ न पाओगी; लेकिन मेरी इस बात पर भूले भी अविश्वास मत करना, कि जिस औरत ने पति को धर्म के रूप में हृदय में रखना न सीखा, उसके पैरों में सदा बेड़ी पड़ी रहे या खुली रहे, और अपने सतीत्व के जहाज को वह जितना भी बड़ा क्यों न समझती हो-जाँच की दलदल में पड़ जाने से उसे डूबना ही पड़ेगा! वह परदे में भी डूबेगी, परदे से बाहर भी!!

वह तो होकर रहा। उस घड़ी अचला ने इस सत्य को नहीं समझा था। लेकिन मृणाल की बताई दलदल आज जब उसे जी-जान से रसातल की ओर खींचे ले जा रही थी, तो समझना

बाकी न रहा। उस रोज किस बात को उसने इस तरह से समझना चाहा था। मृत-बद्ध समाज की अबाध स्वाधीनता के आँख-कान को खुला रखकर ही वह बड़ी हुई, स्वयं ही उसने चुनकर जीवन की राह अपनाई-उसे इसी का गर्व था; लेकिन इम्तहान के आड़े-वक्त में यह सब कुछ भी उसके काम न आया। उसकी विपत्ति बड़ी चुपचाप आयी, आयी मित्र के रूप में; बूढ़े चाचा के स्नेह और श्रद्धा का जामा पहन कर आयी। उस एकान्त स्नेहशील, भला चाहने वाले बूढ़े के बार-बार आग्रह करने पर, जिस दुर्योग की रात में वह सुरेश की सेज पर जाकर आत्महत्या कर बैठी-उस दिन उसे जो बचा सकता था, वह था एकमात्र उसका सतीत्व-जिसे मृणाल ने जीवन-मरण में अद्वितीय और नित्य बताना चाहा था। लेकिन उस रोज उसके बाहरी आवरण ने ही बड़ा होकर उसे शिकस्त दी। उसकी जन्मजात शिक्षा और संस्कार, आत्मा को तुच्छ कारागार समझ कर बाहरी जगत् को ही सर्वोपरि मानता रहा है-जो धर्म लीन है, जो धर्म गुफा में सोया है; हृदय का वह धर्म कभी उसके आगे सजीव नहीं हो पाया। इसीलिये बाहर से सामंजस्य बनाये रखने के लिये, भद्र महिला के बाहरी रूप को ही वह लज्जा से जकड़े रही। इस मोह को तोड़ कर, अपने को उधार कर वह हर्गिज न कह सकी, कि चाचा जी, मैं जानती हूँ कि मेरी पर्वत-सी ऊँची हुई इतने दिनों की मिथ्या के ऊपर-संसार में आज मेरे सत्य को कोई सत्य नहीं मानेगा, जानती हूँ कि कल आप घृणा से मेरी शक्ल नहीं देखेंगे। आपकी सती पतोहू का दरवाजा भी कल मेरे लिये बन्द हो जायेगा, और मेरी निन्दा तमाम फैल जायेगी-लेकिन मुझे वह सब बर्दाश्त है, मगर आपका आज का यह खतरनाक स्नेह नहीं सह सकूँगी। बल्कि आप मुझे यह आशीर्वाद करें चाचाजी, कि इतने दिनों के सती के यश के बदले, आपके आगे मेरा आज का यह कलंक ही अक्षय हो सके। लेकिन हाय! यह बात उसके मन से उस दिन हर्गिज नहीं निकल सकी।

आज निष्फल मान और प्रचण्ड आवेश से उसका गला बार-बार सूख जाने लगा, और उसकी उस अखण्ड पीड़ा को महिम की निगाह मानो चाकू से चीरने लगी।

इस तरह आधी रात बीती। लेकिन सभी दुःखों का एक विश्राम होता है, इसीलिये आँसू का सोता भी एक समय सूख गया, और भीगी पलकें भी नींद से मुँद गयीं।

नींद टूटी तो बेला हो चुकी थी। सुरेश के लिये दरवाजा खुला ही था, परन्तु वह अन्दर आया भी या नहीं, पता नहीं चल सका। बाहर निकली तो बैरे ने बताया-बाबूजी तड़के ही इक्के से मझोली चले गये।

-कोई साथ गया है?

-जी नहीं। मैं जाना चाहता था, उन्होंने जाने नहीं दिया। बोले-प्लेग से मरना चाहता है तो चल!

-इसीलिये तुम नहीं गये और कृपा करके इक्का ला दिया? मुझे क्यों नहीं जगाया?

बैरा चुप रहा।

अचला खुद भी कुछ क्षण चुप रही-पूछा-इक्का कौन ले आया? तुम?

सिर झुकाकर बैरे ने कहा-बुलाने की कोई जरूरत नहीं थी। कल शाम ही बाबू ने उसे सुबह आने के लिये कह दिया था।

सुनकर अचला चुप हो गयी। उसने जो सोचा था, हकीकत में वह न था। कल की घटना से इसका कोई लगाव न था। कल वाली बात न भी होती, तो भी वह जाता। सिर्फ उसके डर से कुछ समय के लिये स्थागित कर दिया था।

पूछा-कब आयेंगे, कुछ बता गये हैं?

उसने खुशी से सिर हिलाकर कहा-बहुत जल्दी लौटेंगे, परसों या नरसों, या उसके दूसरे दिन तो जरूर!

अचला ने और कुछ न पूछा-कल उसे सीढ़ी पर गिरने की चोट का ठीक-ठीक पता न चला था, आज लेकिन तमाम बदन में दर्द अवश्य हो रहा था। उस पर रामबाबू कहाँ खोज-पूछ को न आयें-इस आशंका से मन भी मानो काँटे-सा हो रहा। महिम कुछ भी नहीं बोलेगा, इस बात को वह सुरेश से कुछ कम नहीं जानती थी। तो भी जैसे चोट के भय से दर्द की जगह

को अगोरे सारा मन सचेत रहता है-वैसे ही उसकी सारी इन्द्रियाँ बाहरी दरवाजे का पहरा देती रहीं। इस तरह सबेरा गया, दोपहर निकली, साँझ बीती। रात को अब उनके आने की उम्मीद नहीं, इसलिये निश्चिन्त-सी होकर वह बिछावन पर पड़ गयी। पास ही तिपाई पर खाली गुलदस्ते से दबा, किसी कविराजी दवाखाने का सूची-पत्र पड़ा था। उसे खींचकर उसी के पन्नों में नजर गड़ाये, जाने किस एक श्रीमान् महाराज की बीमारी आराम होने की बात से लेकर, ब्राह्मणघाटी मिडिल-स्कूल के तीसरे मास्टर के प्लीहा छूटने का विवरण पढ़ते-पढ़ते, अपना दुखड़ा भूल करके न जाने कब वह सो गयी।

(42)

बैरे ने बताया था-परसों लौटेंगे, नहीं तो नरसों, नहीं तो उसके दूसरे दिन तो जरूर! लेकिन इस दूसरे दिन की निश्चयता को दिन भर बैठकर जाँचने जैसा धीरज अचला को न था। इन तीन दिनों के बीच रामबाबू एक दिन भी नहीं आये। उनके आने की सम्भावना को वह हृदय से डरती रही है, और इस न आने में जो मतलब था-उसकी कल्पना करके भी उसका शरीर मानो काठ हो गया। वे बीमार थे, और इस बीच उनकी बीमारी बढ़ भी सकती है, यह बात उसके मन में नहीं जगी। सिर्फ सबेरे उनका दरबान आया था, लेकिन वह अन्दर नहीं आया, पाण्डेजी से बात करके बाहर से ही लौट गया। वह क्यों आया था, क्या पूछ गया-डर से अचला किसी से भी, कुछ पूछ नहीं सकी। लेकिन उसके बाद से ही उसे ऐसा लगने लगा कि इस मकान, इन लोगों के बीच से भाग निकले तो जी जाय।

बैरे को बुलाकर उसने पूछा-रघुवीर, तुम्हारा घर तो इसी इलाके में है-मझोली कहाँ है जानते हो?

उसने बताया-बहुत पहले मैं एक बार वहाँ बारात में गया था माँजी।

-कितनी दूर है, बता सकते हो?

रघुवीर ने मन-ही-मन अन्दाज लगाकर कहा-छः-सात कोस होगा माँजी।

-तुम मेरे साथ आज चल सकते हो?

रघुवीर ने हैरान होकर कहा-आप वहाँ जायेंगी? वहाँ तो जोरों का प्लेग है?

अचला ने कहा-तुमसे न बने, तो और किसी का राजी कर दे सकते हो? जो माँगेगा, वही इनाम दूँगी!

रघुवीर ने दुखी होकर कहा-आप जायेंगी, और मैं नहीं जा सकता माँ जी? लेकिन रास्ता नहीं है, अपनी गाड़ी से न जा सकेगी! या तो खटोला या फिर इक्का। आप तो इनमें से किसी पर नहीं जा सकेंगी!

अचला ने कहा-जो मिल जाये, मैं उसी पर चलूँगी! मगर अब देर से काम नहीं चलेगा। जो मिले वही सवारी ले आओ!

रघुवीर ने और कुछ न कहा-गया और जल्दी ही एक डोली लेकर आया, और अपनी लाठी में लोटा-कम्बल लटका कर, उसे कन्धे पर रख कर वीर की भाँति चलने को तैयार हो गया। घर की निगरानी का भार नौकर-प्यादों पर सौंपकर, जाने कौन अजानी मझोली बस्ती की ओर जब वह सिर्फ सुरेश के लिये ही चल पड़ी, तो उसे खुद ही यह अनोखी-सी बात लगने लगी। जी में आने लगा-किसे पता था कि इस अजीब दुनिया में कभी ऐसी घटना भी घटेगी!

गर्दन-भरी कच्ची सड़क एक थी, पर कभी तो वह दूर तक फैले बैहार में खो जाती, और कभी सँकरे गाँवों में गायब हो जाती। लोगों की सुविधा और इच्छा के अनुसार कभी वह नदी-किनारे से, कभी घर के सामने से होकर दूसरे गाँव की ओर बढ़ गयी थी। शुरू में कुछ दूर तक, कभी-कभी उसे कौतूहल हो उठता था। बाँसों पर एक लाश को बगल से ले जाते देख, छूत के डर से वह सिकुड़-सी गयी थी। ऐसी इच्छा हो आयी थी कि पूछे-किस रोग से मरा, कितनी उम्र थी इसकी, घर में कौन-कौन हैं? लेकिन राह की दूरी बढ़ती गयी, बेला चुकने लगी; और पास तथा दूर के गाँवों से जितना ही रोना-धोना उसे सुनायी देने लगा; उतना ही उसका मन जाने किस एक जड़ता से झीम उठने लगा। बड़ी देर से उसे प्यास लग रही थी। नदी के किनारे चलते-चलते एक घाट के पास डोली रोककर वह उतरी, और हाथ-मुँह धोकर पानी पीने के लिये उधर बढ़ी, कि नजर आया-दो-एक अध-जले शव थोड़ी

ही दूर पर पडे हैं। उनके घिनौनेपन ने उसके मन पर कोई चोट ही न की। उसने सहज ही वहाँ पानी पिया, और फिर धीरे-धीरे डोली पर जा बैठी। कुछ ही पहले वह यह सोच भी नहीं सकती थी, कि उसके लिये किसी भी हालत में यह सम्भव है।

इसके बाद के गाँव प्रायः खाली पड़े थे। किसी-किसी बड़े ही दुस्साहसी आदमी के सिवा, जिससे जिधर बना भाग गया था। कहीं कोई शब्द नहीं, सुगबुगाहट नहीं-सभी द्वार बन्द, सब घर मैले-कुचैले-लग रहा था, मानो ये झोंपड़े भी मौत को अनिवार्य मानकर, आँखें बन्द किये उसका इन्तजार कर रहे हैं। मौत से रौंदे गये इन गाँवों से गुजरते हुए, रघुवीर तथा डोली ढोने वालों की दबी आवाज और भीत पैरों की आहट हर पल अचला को मुसीबत की सूचना देने लगी; लेकिन उसे डर ही न लगा-जैसे कब से तो इससे उसका परिचय है-ऐसा ही निर्विकार हो गया उसका सारा अन्तर।

पूरी राह तै करके जब वे लोग मझोली पहुँचे, तो बेला डूब चुकी थी। अचला का ख्याल था-वहाँ पहुँचते ही उन सबकी राह की तकलीफ जाती रहेगी। गाँव के एहसानमन्द लोग दौड़कर उनका स्वागत करेंगे, और डॉक्टर साहब के पास लिवा जायेंगे। वहाँ रोगी और उनके अपने-सगों के आवागमन, दवा-दारू बाँटने का जो समारोह चल रहा होगा, उसमें उसका स्थान कहाँ होगा-इसकी तस्वीर उसने मन-ही-मन बना ली थी। लेकिन देखा-उसकी कल्पना निरी कल्पना ही थी, उससे वास्तव का कोई मेल न था। बल्कि जो नज्जारा वह तमाम रास्ता देखती आयी, यहाँ भी वही। यहाँ भी रास्ते पर न आदमी न आदमजाद, घर-घर के द्वार बन्द-कहाँ-किस टोले में सुरेश का डेरा है, खोजकर निकालना ही मुश्किल।

गाँव में आज भी रोजाना पैठ लगती थी, और वह शाम-शाम तक चलती थी; पर इधर समय-काल ठीक न होने से, तीसरे पहर ही बिसात उठाकर लोग जा चुके थे। हाट की निशानियाँ जरूर थीं।

बड़ी छान-बीन के बाद रघुवीर ने एक दुकान का पता लगाया। दुकानदार अपनी दुकान बढ़ा रहा था। उसने कहा-मेरे बाल-बच्चे सब दूसरी जगह चले गये हैं। महज हम दोनों प्राणी, दुकान के मोह से यहाँ रह गये हैं। उसने सुरेश के बारे में इतनी-सी खबर दी, कि डॉक्टर

साहब नन्द पाण्डे के नीम-तले वाले घर में अब तक थे जरूर, पर अब हैं कि महमूदपुर चले गये, पता नहीं।

-महमूदपुर कहाँ है?

-यहाँ से सीधे दो कोस दक्खिन!

-नन्द पाण्डे का घर किधर है?

वह बूढ़ा बाहर निकला। उँगली से एक बड़े-से नीम के पेड़ को दिखाते हुए कहा-बस वहीं जाइए, मिल जायेगा!

थोड़ी ही देर में जब कहारों ने ले जाकर डोली को नीम के नीचे रक्खा, तो सूरज डूब चुका था। मकान बड़ा-सा था। पीछे की ओर दो-एक पक्के-से कमरे दिखाई पड़ रहे थे, लेकिन ज्यादातर खपरैल। सामने दीवार नहीं-खूब खुला। घर वाला गरीब नहीं लग रहा था। पर एक भी आदमी बाहर नहीं निकला। आँगन में बँधे सिर्फ एक टट्टू ने भूख-प्यास से व्याकुल हिनहिनाकर उनका स्वागत किया।

सदर दरवाजा खुला था। हिम्मत करके रघुवीर ने अन्दर झाँका। देखा-बरामदे पर एक चारपाई पर सुरेश पड़ा है, और पास ही एक खम्बे से टिकी, एक बहुत ही बूढ़ी औरत बैठी ऊँघ रही है।

-बाबूजी!

सुरेश ने आँखें खोलकर देखा, और केहुनी के सहारे सिर उठाकर जरा देर गौर करके कहा-कौन? रघुवीर?

सलाम करके रघुवीर उसके सामने जाकर खड़ा हुआ, पर मालिक की लाल आँखें देखकर उसकी जीभ से बात न निकली।

-तुम यहाँ?

रघुवीर ने फिर सलाम बजाया, और बाहर की तरफ इशारा करते हुए कहा-जी, माँजी...

अबकी अचरज से सुरेश ने उठकर बैठते हुए पूछा-माँजी ने तुझे भेजा है?

रघुवीर ने गर्दन हिलाकर कहा-जी नहीं, वे खुद आयी हैं!

सुनकर सुरेश उसकी ओर कुछ इस तरह से ताकता रहा, मानो समझने में उसे देर हो रही है। उसके बाद आँख बन्द करके फिर लेट गया, कुछ नहीं बोला।

अचला जब आकर खाट पर उसके बगल में ही बैठ गयी, तो कुछ देर उसने उसी तरह ताका और मौन हो रहा, शिष्टाचार के अनुसार 'आओ' तक नहीं कह सका। बचपन से बेहद लाड़-प्यार में पलने के कारण वह आवेश और ख्याल पर ही चलता रहा है, उन्हें संयत करने का उसने कभी पाठ ही नहीं पढ़ा। शिक्षा जीवन में पहली बार उसे उसी दिन मिली, जिस दिन उसकी हँसी पर लात मारकर महिम कमरे में चला गया। उस दिन क्षण में उसके जी में कैसी उथल-पुथल मच गयी, इसे सिर्फ अन्तर्यामी ने ही जाना; और आज भी सिर्फ उन्हीं ने देखा कि उस शान्त-स्थिर शरीर के अंग-अंग में कितनी बड़ी आँधी बह गयी। उस दिन उसने महिम के आघात को जिस प्रकार चुपचाप सह लिया था, आज भी उसी प्रकार अपने उन्मत्त आवेग से वह चुपचाप जूझता रहा, उसका कोई भी असर चेहरे पर नहीं प्रकट होने दिया।

कहा नहीं जा सकता-ऐसे और कितना समय बीत जाता, लेकिन कहारों के पुकारने से रघुवीर बाहर चला गया-उसी आहट से सुरेश ने आँखें खोलीं, पूछा-तुम्हें मेरी चिट्ठी मिली?

अचला ने नजर झुकाकर ही कहा-नहीं।

सुरेश ने ताज्जुब के साथ कहा-बिना चिट्ठी पाये ही आ गयी? ताज्जुब है! खैर, अच्छा ही हुआ कि भेंट हो गयी। कुछ देर उसके झुके मुखड़े की तरफ देखकर फिर आप-ही-आप बोला-मेरे लिये तुमको बहुत दुःख उठाना पड़ा। और शायद मरते-दम तक इसका असर नहीं जायेगा। सबसे बड़ी भूल जो हुई, वह यह कि तुम महिम को इतना ज्यादा प्यार करती हो, यह मैं भी नहीं समझ सका, शायद तुम भी कभी नहीं समझ पायी! है न?

मगर जब अचला सिर झुकाये चुप ही बैठी रही, तो वह फिर बोला-इसके सिवा मेरा ख्याल है, मनुष्य में मन नाम की कोई स्वतंत्र चीज नहीं होती। जो कुछ भी है, देह-धर्म ही है! प्रेम भी वही है!! मैंने सोचा था-किसी तरह तुम्हारा शरीर पा जाऊँ, तो प्यार भी दुर्लभ न होगा-कौन जाने, कभी सचमुच ही तकदीर प्रसन्न हो जाती-हो सकता था, मैंने सर्वस्व गँवाकर जो कुछ पाना चाहा था, कभी तुम स्वेच्छा से ही वह भीख मुझे देतीं। मगर अब समय नहीं रहा, इन्तजार करने का मुझे मौका नहीं मिला। इतना कहकर बिस्तर पर केहुनी रोपकर उसने अपना सिर उठाया और दीए की मद्धिम रोशनी में आँखों की निगाह को तेज करके, अचला के झुके चेहरे की ओर देखने लगा।

एक की इस एकाग्र दृष्टि ने दूसरी की झुकी नजर को खींचा, मगर पल-भर के लिये। अचला ने तुरन्त नजरें झुका लीं। शर्माई-सी धीमे-धीमे कहा-इस इलाके के तो सब लोग भाग गये हैं-तुम्हारा यहाँ काम अगर खत्म हो चुका हो, तो घर या और कहीं चलो; कितनी तो जगह है-डिहरी में अब एक घड़ी भी टिकना दूभर हो रहा है!

इसे मुझसे ज्यादा कौन जानता है!-सुरेश ने एक लम्बी साँस ली, और तकिये पर सिर रखकर लेट गया। कुछ देर चुप रहा, फिर धीरे-धीरे कहने लगा-बड़ी मुश्किल से आज सवेरे दो चिट्ठियाँ लिख पाया-एक तुम्हें और दूसरी महिम को। वह अगर इसी बीच में चला नहीं गया हो, तो जरूर आयेगा। मुझे पूरा विश्वास है! अचला अचरज और भय से चौंक उठी-उन्हें क्यों लिखा?

सुरेश उसी तरह धीरे-धीरे बोला-इस समय मुझे एकमात्र उसी की आवश्यकता है! छुटपन से आज तक जीवन में जाने कितनी गाँठें डाली हैं। और उन्हें खोलने के लिये इसी आदमी की सदा जरूरत पड़ी है। इसीलिये आज भी उसी को बुलाना पड़ा। दुनिया में इतना धीरज तो किसी में नहीं!

अचला के अन्दर उथल-पुथल मच गयी, मगर वह नजर झुकाये, स्थिर बैठी सुनती रही। सुरेश ने कहा-मेरी चिट्ठी में लगभग सब कुछ लिखा है, पढ़ोगी तो पता चलेगा। उस दिन अपनी सारी जायदाद की वसीयत तुम्हें दे चुका हूँ। चाहो तो उसी की बहुत-सी चीजें ले सकती हो। पर मैं समझता हूँ, लेने की जरूरत नहीं। मेरे जीते-जी भी उसका ज्यादा हिस्सा

गरीबों को ही मिलता; मेरे मरने के बाद भी जिसमें उन्हीं लोगों को मिले! मेरी किसी भी चीज से तुम अब कोई सम्पर्क न रखना अचला-तुम मुक्त होओ, निर्विघ्न होओ-मेरे हर संस्पर्श से अपने को बिल्कुल अलग कर लो। कोशिश करने पर दुनिया में बहुत दुःख झेले जा सकते हैं-मेरा दिया दुःख भी जिसमें तुम एक दिन सहज ही सह सको!

उसके रंग-ढंग और बातचीत के तौर-तरीके से अचला को कैसा तो डर लग रहा था। इसी अन्तिम बात से तो वह सचमुच ही घबरा गयी-आखिर तुम यह सब क्यों कह रहे हो? उठकर बैठो-ऐसा करो कि हम-तुम शीघ्र ही यहाँ से चल दें!

उसकी आशंका और घबराहट को भाँप कर भी सुरेश ने कोई जवाब नहीं दिया। जो बुढ़िया खम्भे के पास बैठी थी, उसने पूछा-बाबूजी, अब अन्दर चलेंगे कि रोशनी बाहर ला दी जाये-सुरेश ने इसका कोई जवाब नहीं दिया, ऐसा लगा कि अचानक उसे तन्द्रा आ गयी है। अकुलाई अचला अपनी पिछली बात दुहराने जा रही थी, कि सुरेश ने आँखें खोलकर बड़े ही सहज भाव से कहा-तुमसे अभी असली बात ही नहीं बता पाया। अचला, मैं अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा हूँ, मेरे जीने की अब कोई उम्मीद नहीं!

जवाब में महज एक अस्फुट आवाज अचला के गले से निकल पड़ी। उसके बाद वह काठ मारी-सी बैठी रह गयी।

सुरेश कहने लगा-मैंने पहले ही वसीयत जरूर कर रक्खी है, पर कोई अगर यह कहे कि मैं जान-सुनकर मर रहा हूँ, तो गलत होगा-उससे मुझे मरने से भी ज्यादा कष्ट होगा! मैंने सावधानी बरतने में कोई कोर-कसर न रक्खी, मगर कोई नतीजा न निकला। तुमसे कभी कोई पूछे तो कहना-दुनिया में और-और लोग जैसे मरते हैं, मेरी भी मौत वैसी ही हुई! कहना-मौत को चूँकि टाल नहीं सके, इसीलिये मर गये, वरना मरने की उनकी इच्छा नहीं थी। जिसमें कोई मुझ पर यह कलंक न लगाये, कि मरने में मेरा कोई हाथ था, मरने में कोई खास बात थी!

अचला कुछ न बोली। बोलने की उसकी शक्ति ही जाती रही थी, यह बात उस धुँधलके में उसका चेहरा देखकर सुरेश समझ नहीं सका। उसने अपने को थोड़ा देर में सम्हाला, और

फिर कहने लगा-बिना आये मुझसे रहा नहीं गया, इसीलिये तुमसे बचकर उस रोज मैं सुबह ही चल दिया था। आकर देखा-सारी बस्ती खाली हो गयी है। घर में एक नौकर मर गया है, और उसका संस्कार किये बिना ही सब भागने को तैयार हैं। मैं उन लोगों को तो नहीं रोक सका, पर लाश का किनारा किया जा सका। लौटकर सोचा-मैं भी वापस चला जाऊँ। लेकिन दोपहर को महमूदपुर से एक लड़का रोता-पीटता आया। बोला-मेरी माँ बहुत बीमार है। उसी के आपरेशन में यह बदनसीबी मोल ले बैठा। आपरेशन तो बहुत किया, सावधानी भी कम नहीं रक्खी, मगर बदकिस्मती कहो-इक्के के पहिए से पाँव का अँगूठा छिता गया था-मगर उस पर नजर तब पड़ी, जब मैं हाथ का लहू धोने जा रहा था। झटपट लौटा। जो कुछ करना चाहिए था, सब किया। घर जाने की गंुजाइश होती, तो लौट गया होता; मगर कोई उपाय करते न बना! कल रात बुखार-सा लगा-समझ गया कि यह बुखार क्यों है। सो बड़ी-बड़ी मुसीबत और कोशिश से तुम लोगों को कुछ लिखकर चिट्ठियाँ भेजीं।

अचला आँसू से भर्राई हुई आवाज में बोली-लेकिन अब तो उपाय है अभी, अपनी डोली पर मैं तुमको तुरन्त ले जाऊँगी-अब एक मिनट भी यहाँ नहीं दे सकती!

-और तुम?

-मैं पैदल चलूँगी! मेरी फिक्र तुम छोड़ दो।

-पैदल जाओगी? इतनी दूर?

-पैरों पड़ती हूँ तुम्हारे, आनाकानी न करो-अचला रो पड़ी।

सुरेश पलभर चुप रहा। फिर एक लम्बा निश्वास छोड़ते हुए बोला-खैर, चलो! लेकिन मैं समझता हूँ, जरूरत न थी इसकी।

अचला बाहर निकली। देखा, रघुवीर पेड़ के नीचे चबेना चबा रहा है। बोली-रघुवीर, बाबूजी बहुत बीमार पड़ गये हैं। तुम डोली वालों से कहो-वे जितना माँगेंगे, मैं उससे ज्यादा रुपया उन्हें दूँगी। मगर अब देर नहीं होनी चाहिये!

मालकिन की अकुलाई आवाज से रघुवीर चौंका। बोला-लेकिन ये लोग दो का भार तो नहीं ढो पायेंगे माँजी!

-नहीं-नहीं, दो नहीं, एक! मैं पैदल चलूँगी। मगर अब एक मिनट भी मत रुको! कहाँ हैं वे सब? देखो जरा।

रघुवीर ने कहा-किराये के रुपये लेकर, वे कुछ खाने के लिये दुकान की तरफ गये हैं। बुला लाता हूँ माँजी, तुरन्त-और अपने चबेने को धोती की कोर में बाँधते हुए वह दौड़ पड़ा।

अचला सुरेश के सिरहाने जा बैठी। हाथ से ताप देखकर आशंका से डर गयी वह। मुनिया की माँ मिट्ठी के तेल की ढिबरी रख गयी थी, धुएँ से सारी जगह घुट रही थी। वह ढिबरी को हटाने गयी, कि दवा की एक शीशी पर नजर पड़ी। अचला ने पूछा-यह तुम्हारी दवा है?

सुरेश ने कहा-हाँ, मेरी ही है। कल खुद तैयार की थी। पी नहीं पाया, ले आओ।

अचला को चोट-सी लगी। लेकिन दवा न पीने की वजह पर झगड़ने को जी न चाहा उसे। दवा पिलाकर वह उसी तरह चुपचाप सिराहाने बैठ गयी। बड़ी देर से सुरेश मौन था, मगर चुपचाप वह कितनी बड़ी पीड़ा सह रहा है-यह सोचकर अचला का कलेजा दरकने लगा।

देर हो रही थी, रघुवीर का पता नहीं। बीच-बीच में वह पाँव-दबाये बाहर जाकर, अँधेरे में जहाँ तक नजर जाती, देख लेती। कहीं-किसी का पता नहीं। लेकिन कहीं सुरेश को उसकी इस उद्‌विग्नता का पता चल जाये, इस डर से भी वह घबरा गयी।

रात बढ़ने लगी। खम्भे के पास मुनिया की माँ की नाक बजने लगी। ऐसे समय भूखे-प्यासे, थके-माँदे रघुवीर ने भग्नदूत की नाईं आकर कहा-कहार लोग तो डोली लेकर कबके चल दिये। कहीं पता न चला!

सब भूलकर अचला विकृत स्वर में बार-बार सवाल करने लगी-कब गये थे? किधर गये? क्यों गये? हम अपना सर्वस दें, तो भी क्या कोई डोली नहीं मिल सकेगी?

रघुवीर ने सिर झुका लिया। वह जानता था कि यह मुसीबत उसी के चलते आयी। इसीलिये वह जी-जान से उनकी पूरी तरह तलाश करके तब लौटा था।

लेकिन और एक आदमी उसी तरह खाट पर चुपचाप पड़ा रहा। उसे कोई परेशानी छू भी नहीं गयी। रघुवीर जब चला गया, तो वह धीरे-धीरे बोला-नाहक परेशान क्यों हो रही हो अचला, कहार मिल भी जाते तो कोई लाभ न होता! यह ठीक है-मेरे लिये यही ठीक है!

अचला बोली नहीं-वह सिर्फ इस अनन्त की ओर जाने वाले के गर्म कपाल पर दायाँ हाथ रखकर बुत-सी बैठी रही।

उसके चारों तरफ जनहीन बस्ती मौन-सी, सन्नाटे में पड़ी थी, बाहर गहरी रात और भी गहरी होती जा रही थी-आँखों में काला आसमान और भी काला हो उठा। उस आसमान की ओर देखकर अचला के जी में यही होने लगा कि इसकी जरूरत क्या थी, क्या थी जरूरत इसकी?

उसके जीवन-कुरुक्षेत्र में इतनी बड़ी जो लड़ाई चल रही है, दुनिया में इसकी क्या आवश्यकता थी? दुनिया की सारी जलन, सारी हीनता, सब यर्थाथ समाप्त करके वह इस रात की तरह आज ही खत्म हो जायेगी? इसके बाद उसका समूचा जीवन क्या कुरुक्षेत्र जैसा श्मशान-सा, युग-युग पड़ा रहेगा! चिता जलने का निशान कभी मिटेगा? दुनिया में यह भी क्या जरूरी है? और सब कुछ मेरे ही साथ?

लेकिन यह कुरुक्षेत्र छिड़ा क्यों? किसने छेड़ा? जो बेचारा आज अपनी सारी सम्पत्ति, तमाम दौलत, सभी सगे-सम्बन्धियों से अलग होकर निरा असहाय-सा मर रहा है-इतना बड़ा विप्लव क्या अकेले उसी ने मचाया? और क्या किसी के मन में लोभ और मोह छिपा नहीं पड़ा था? और किसी ने क्या कहीं-कोई पाप नहीं किया?

लेकिन फिक्र के इस सिलसिले को सहसा तोड़कर वह जरा हिलीडुली। जैसे कोई दोनों हाथों उसका गला घोंट रहा हो। इसी वक्त सुरेश ने भी पानी माँगा। झुककर अचला ने उसके मुँह में पानी डाला, और फिर स्थिर बैठ गयी। उसे न श्रान्ति थी, न क्लान्ति। आँखों से नींद का आभास तक गायब हो गया था। अपनी उन्हीं सूनी आँखों से फिर वह एकटक आसमान की

ओर देखने लगी। बड़े जतन से, बहुत दिन पहले उसने महाभारत को समाप्त किया था। आज उसी का अन्तिम सर्वनाश, मानो जादू के करिश्मे-सा उसी में दिखाई देने लगा। कितना लहू बह रहा है वहाँ, कितने अजाने लोग मार-काट मचा रहे हैं-जाने कितनी हजार चिताएँ जल-बुझ रही हैं-उसके धुएँ से धरती-आकाश मानो ढँक गया है।

कुछ देर के लिये सुरेश को जैसे तंद्रा आ गयी थी, वह निश्चेष्ट पड़ा था। लेकिन अचला को इसका भी होश न था कि इस तरह कितना समय कटा, कैसे रात सवेरे की ओर बढ़ने लगी। उसकी आँखों से आँसू जारी थे, शिथिल दोनों हाथ सुरेश के तकिये पर थे, वह हृदय से कह रही थी-हे ईश्वर! मैंने बहुत-बहुत दुःख, बहुत-बहुत पीड़ा उठायी; मेरी सारी पीड़ा, सारे दुःख के बदले, आज तुम इसे क्षमा करके अपनी गोद में उठा लो! मेरे माँ नहीं, बाप नहीं, भाई नहीं-इतना बड़ा कलंक माथे-उठाकर मेरे लिये खड़ी होने की कोई जगह नहीं। तुम तो जानते हो, मैंने कितना झेला है-मुझे अब जीने मत दो, प्रभो! मुझे भी अपने पास खींच लो!

इन बातों को उसने कितनी बार, कितने प्रकार से दुहराया, इसका ठिकाना नहीं। उसके आँसुओं की भी कोई हद न रही।

-माँजी!

अभी-अभी सवेरा हुआ। अचला ने चौंककर देखा-रघुवीर मानो किसी के अन्दर जाने के इन्तजार में दरवाजा खोले खड़ा है।

क्या है रघुवीर?-यह कहते ही जिससे अचला की नजर मिल गयी, वह महिम था। वह एक बार काँप गयी और नजर झुका ली। लमहे के लिये दरवाजे पर महिम का कदम ठिठक गया। उसे उम्मीद न थी, कि यहाँ इस तरह फिर से उससे भेंट हो जायेगी। लेकिन वह धीरे-धीरे करीब आकर खड़ा हुआ। धीमे से पूछा-सुरेश की तबीयत अब कैसी है?

अचला ने सिर नहीं उठाया, बोली नहीं, सिर्फ सिर हिलाकर मानो उसने यह जताना चाहा कि वह कुछ भी नहीं जानती।

मिनट-भर स्थिर रहकर सुरेश के कपाल पर महिम ने जैसे ही हाथ रक्खा, उसने आँखें खोलीं। उन बुझी-सी लाल आँखों को देखकर महिम के मुँह से बात न फूटी। जरा देर में बोला-कैसे हो सुरेश?

-ठीक नहीं-मैं चला! मैं जानता था, तुम आओगे-मेरे सामने बैठो।

महिम उसके पैताने बैठा। बोला-डिहरी में डॉक्टर है, किसी तरह मेरे इक्के से...

सुरेश ने सिर हिलाकर कहा-ऊँहूँ-खींचा-तानी मत करो, मजूरी नहीं पोसायेगी। मुझे फनपबासल जाने दो!

-लेकिन अभी तो...

हाँ, अभी होश है! मगर कभी-कभी विस्मृति हो रही है। मेरा जीवन गरीबों के काम नहीं आ सका, लेकिन मेरी जायदाद जिसमें गरीबों के काम आये महिम! इसीलिये तुम्हें तकलीफ देकर इतनी दूर बुलाया है; वरना मरते वक्त माफी माँगकर कविता करने की अपनी ख्वाहिश नहीं!

महिम चुप रहा। सुरेश ने कहा-वह सब मैं यकीन भी नहीं करता, चाहता भी नहीं! क्षमा का लोभ मुझे तनिक नहीं है। खैर, एक वसीयत है। अचला को मैंने कुछ नहीं दिया है-उसका और अपमान करने के लिये मेरा हाथ नहीं उठा। लेकिन जरूरी समझो, तो कुछ देना!

महिम व्याकुल हो उठा-इसमें मुझे क्यों लपेट रहे हो सुरेश?

सुरेश ने कहा-महज इसलिये कि तुम्हें लपेटा नहीं जा सकता! जिसे लोभ नहीं, जिसे न्याय-अन्याय का विचार-एकाएक नजर उठाकर बोला, तुम तमाम रात बैठी रहीं अचला-जाओ, मुँह-हाथ धो लो! मुनिया की माँ सब बता देगी...

अचला चली गयी तो सुरेश ने कहा-मुझे सिर्फ एक बात का बड़ा दुःख रहा! अचला तुम्हें कितना प्यार करती है-इसे मैंने भी नहीं समझा, तुमने भी नहीं-खुद उसने भी नहीं समझा! तुम्हारी गरीबी से ऐसा गड़बड़घोटाला हो गया कि-खैर! इतनी सुन्दर चीज को मैंने मिट्टी

कर दिया-न खुद पा सका और न दूसरे को पाने दिया!! फूफी को देखना भाई!-उन्हें बड़ा शोक होगा।

मुनिया की माँ दवा की शीशी लेकर आयी, कि वह ऊब से बोल उठा-न-न, दवा अब नहीं! पानी दो। मैंने एक नाटक लिखना शुरू किया था, महिम-दराज में है-बने तो पढ़ना!

महिम उसकी तरफ ताक नहीं पा रहा था-सिर नीचा किये सुन रहा था। सिर उठाकर उसने कुछ कहना चाहा, कि बाधा देकर सुरेश बोल उठा, बस भई, जरा सोने दो! खाने-पीने का सब सामान है, मगर वह तो तुम लोगों को अच्छा नहीं लगेगा। कहकर उसने आँखें बन्द कर लीं।

महिम जरा देर चुप रहा। उसके बाद बोला-मेरा एक अन्तिम अनुरोध मानोगे सुरेश?

-क्या?

-तुमने कभी भगवान को नहीं सोचा, उनकी बात...

वह मुझे ठीक नहीं लगता-कहकर मुँह बिगाड़कर सुरेश ने करवट बदली। महिम ने जी-जान से एक उमड़ते हुए निश्वास को रोका, और चुप हो रहा। और शायद सदा के लिये चुप हो रहा।

(43)

रामबाबू घर पर नहीं थे। दूसरे दिन बक्सर से आने पर उन्हें महिम की चिट्ठी मिली, और उन्होंने पलभर की भी देर न की-तमाम रास्ते घोड़े को भगाते हुए अधमरा-सा बनाकर जब मझोली पहुँचे, तो बेला डूब रही थी। दुकानदार ने उनको दरोगा समझा, और खुद रास्ता दिखाते हुए नन्दपाण्डे के नीम के नीचे ले गया, और इक्के से उतरते वक्त बाअदब घोड़े की लगाम थामे खड़ा हुआ। इसी से रामबाबू को पता चला कि अचला भी आयी है। सामने का दरवाजा खुला ही था। अन्दर कदम रखते ही कुछ भी समझना बाकी न रहा। दो घण्टे हुए, सुरेश चल बसा। खाट पर उसकी लाश ढँकी पड़ी थी, और कुछ ही दूर पर, उसके पैरों के पास अचला चुप बैठी थी।

बूढ़े से यह दृश्य देखा न गया। वे चीखकर रो पड़े। अचला ने एक बार नजर उठाकर देख-भर लिया, और फिर उसी तरह सिर झुकाकर बैठ गयी। यह चीख मानो महज उसके कानों तक गयी, मर्म तक न पहुँची।

महिम अन्दर लकड़ी की तलाश कर रहा था, रोना सुनकर बाहर निकला। बोला-थोड़ी देर हुई, सुरेश हमें छोड़ गया! आप आ गये, अच्छा ही हुआ; वरना अकेले मुझे बड़ी असुविधा होती!

रामबाबू चुपचाप आँसू पोंछने लगे। वे सोचकर कुछ ठीक ही नहीं कर पा रहे थे कि करें, क्या कहें; कैसे उस स्त्री के सामने इस निष्ठुर काम में मदद पहुँचाएँ।

महिम ने कहा-नदी दूर नहीं है। थोड़ी-बहुत लकड़ी रघुवीर ले गया है, थोड़ी और मिल गयी है। इसे भी भेजकर हम तीन जने लाश को ले चल सकेंगे। गाँव में आदमी नहीं हैं, होगा भी तो कोई निकलेगा नहीं!

रामबाबू यह जानते थे। अचला से बचाकर उन्होंने चुपके से पूछा-हम दो जने-और?

महिम ने कहा-रघुवीर भी मदद कर सकता है।

सुनकर बूढ़े ने व्यस्त होकर कहा-न-न, यह हर्गिज न होने दूँगा मैं! ब्राह्मण की लाश, और किसी को न छूने दूँगा। नदी जब पास ही है, तो जैसे भी हो, हम दोनों को ले चलना पड़ेगा!

खैर, वही होगा!-कहकर महिम फिर लकड़ी की जुगत में जुट गया। रामबाबू बरामदे के एक ओर, खूँटी से टिककर चुप बैठे रहे।

उम्र वाले आदमी, अपने लम्बे जीवन में मौत उन्होंने बहुत देखीं, बहुत गहरे शोक के बावजूद उन्हें धीरे-धीरे आगे बढ़ना पड़ा है। दुःसह दुःखों के वे करुण सुर, एक-एक करके उनकी हृदय-वीणा के तारों में बँध गये हैं; आज की यह घटना उन तारों पर चोट करके लगातार बेसुरी बजने लगी। कभी 'बडे चाचा' सम्बोधन करती हुई यही सुरमा उनकी गोदी में पछाड़ खा गिरी थी-इसको वे भूले नहीं थे। आज भी उनका पितृ-स्नेह उसी लोभ से भीतर-भीतर घुमड़ने लगा। उसे क्या दिलासा दें-मालूम नहीं, उसे भरोसा देने लायक संसार

में है क्या-यह भी नहीं जानते; फिर भी उनका शोकाकुल हृदय मानो यही कहना चाहता रहा, कि एक बार उसे अपने कलेजे से लगाकर कहें-डर कैसा बिटिया, मैं तो जिन्दा ही हूँ!

लेकिन यह सुर बजा कहाँ? उनकी प्यास बुझाने के लिये वह आगे बढ़ी कहाँ! सुरमा तो वैसे ही चुप बनी रही, एकान्त आत्मीय के वियोग से अपने को अलग किये रही।

दुःख में, विपदा में इनकी अनेक अनबुझ वेदना, मूक मानसिक पीड़ा के पास से उन्हें चलना पड़ा है, छिपे रहस्य का इशारा कभी-कभी उन्हें कचोट दे गया है, मगर उन्होंने कभी अपने को दुखने नहीं दिया-स्नेह के आवरण से सभी आशंकाओं को ढाँककर बाहर के आकाश को मेघ से परे निर्मल ही रक्खा है उन्होंने। लेकिन अभी-अभी विधवा बना अचला के इस अनचीन्हे, कठोर धीरज ने, इतने दिनों से उनके होंठ में छिपे स्नेह को उधार कर, कलुष के धुएँ से भरना शुरू कर दिया।

सूर्य अस्त हो चुका। उधर का काम लगभग चुका कर महिम ने कहा-रामबाबू, अब तो इसे ले ही चलना चाहिए! अचला की ओर मुड़कर बोला-रोशनी जला दी है। तुम मुनिया की माँ के पास बैठी रहो। हमें लौटने में ज्यादा देर न होगी।

अचला कुछ न बोली-रामबाबू अपने को जब्त करके उठ खड़े हुए थे। उन्होंने सिर हिलाया। अचला के झुके मुखड़े की ओर देखकर, रुँधा गला साफ करके भर्राई हुई आवाज में बोले-कहते हुए कलेजा टूक-टूक हुआ जाता है बिटिया, लेकिन स्त्री का अन्तिम कर्तव्य तो तुम्हें करना ही पड़ेगा! मुखाग्नि तो.... कहते-कहते वे रो पड़े।

अचला का फीका चेहरा, उससे भी ज्यादा सूखी उसकी आँखें बूढ़े पर जरा देर गड़ी रहीं, उसके बाद वह धीमे स्वर से बोली-मुखाग्नि की जरूरत हो, तो मैं कर सकती हूँ। हिन्दू-धर्म में वास्तव में कोई फल होता हो, तो उसे मैं बेकार नहीं करना चाहती। मगर मैं उनकी स्त्री नहीं हूँ!

जैसे गाज गिरी हो-रामबाबू अवाक् होकर देखते हुए धीरे-धीरे बोले-तुम सुरेश की स्त्री नहीं हो?

अचला ने वैसे ही अविचलित स्वर में कहा-नहीं, वे मेरे पति नहीं थे।

एक पल में रामबाबू को सारी घटनाएँ याद आ गयीं। जब से ये उनके घर आये थे, तब से उस दिन की मूर्छा तक, सारी घटनाएँ बिजली की नाईं। उनके मन में कौंध गयीं, और सन्देह की कोई गुंजाइश ही नहीं रही कहीं आखिर कौन है यह, किसकी लड़की, कौन जात-शायद हो कि वेश्या हो! इसे मैंने बेटी कहा, इसका छुआ खाया, इसका पकाया अन्न अपने देवता तक को भोग दिया-सबकुछ याद करके घृणा से उनका सर्वांग टनटना उठा-और जिस स्नेह, जिस श्रद्धा, जिस माधुर्य और करुणा ने उन्हें इतने दिनों तक सींच कर रखा था-रेगिस्तान में पानी की बूँद जैसा वह गायब हो गया, पता भी न चला।

केवल वही नहीं, महिम भी हक्का-बक्का-सा खड़ा था। उसने चकित होकर कहा-जब ऐसा होना ही नहीं है, तो चलिये, हम लोग ले चलें!

चलिये-कहकर रामबाबू जैसे सपने में चल रहे हों, आगे बढ़े। उनकी अपनी दुर्घटना के मुकाबले, सारी दुर्घटनाएँ जैसे छाया-सी फीकी पड़ गयी थीं। उनके दोनों कानों में केवल यही गूँजने लगा-जात गयी, धर्म गया, मनुष्य-जीवन ही जैसे बेकार, बेकाम हो गया।

सुरेश का दाह-कार्य जैसे-तैसे कर देने में ज्यादा समय न लगा। शुरू से आखिर तक रामबाबू ने एक भी शब्द न कहा, और लौटते ही इक्का जोतने का हुक्म दिया।

महिम ने पूछा-आप क्यों जा रहे हैं?

रामबाबू ने कहा-हाँ! मुझे सुबह की गाड़ी से काशी जाना होगा। अभी न निकल पड़ूँ, तो समय पर पहुँच नहीं सकूँगा!

उनके मन की बात महिम से छिपी न रही, और वह ताड़ गया कि ये प्रायश्चित के लिये ही काशी जा रहे हैं। सो बड़े संकोच से कहा-मैं परदेशी हूँ। इधर का कुछ भी नहीं जानता। कृपा करके अगर इनके चलने का कोई इन्तजाम-बात पूरी न हो पाई। अचला को साथ लेने के प्रस्ताव से बूढ़े आग हो उठे। बोले-कृपा? आप क्या पागल हो गये, महिम बाबू?

महिम ने उनका प्रतिवाद नहीं किया। डरते हुए विनती करके कहा-दो दिन से शायद इन्हें भोजन भी नहीं नसीब हुआ! इस मौत की नगरी में इन्हें बेसहारे छोड़ जाना...

उसे यह बात भी पूरी करने का मौका न मिला। आचारी ब्राहमण के जन्मजात संस्कार को ठेस लगी थी। वे प्रतिहिंसा से बेरहम बन गये थे; इसलिये तीखे व्यंग्य से बोल उठे-ओ, मैं तो भूल ही गया था कि आप भी ब्राहम हैं-खैर, आप जितने भी बड़े ब्रहमज्ञानी क्यों ने हों, मेरे सर्वनाश के परिणाम को समझ पाते, तो इस कुलटा के लिये दया-माया की बात जबान पर भी नहीं लाते! यह कहकर वे गाड़ी पर बैठ गये और बोले-खैर, ब्रहमज्ञान से मतलब नहीं, जान बचानी हो तो सवार हो जाइए, जगह मिलेगी!

महिम ने चुपचाप उन्हें नमस्कार किया। कितना बड़ा सर्वनाश होगा-उसने इस पर विवाद नहीं किया, और जान बचाने के आमंत्रण को भी स्वीकार नहीं किया। उनके चले जाने के बाद, उसकी छाती टूक-टूक होकर एक निश्वास-भर निकला।

कितना बड़ा सर्वनाश! बेशक!

अन्दर बैठी, गाड़ी की आवाज सुनकर अचला ने भी इसे महसूस किया। रामबाबू अन्दर क्यों नहीं आये, क्यों बगैर कुछ बोले चले गये-यह स्पष्ट था।

सुरेश की मौत ने बेहद फिक्र खड़ी करके जो एक ओट तैयार की थी, वह न रही। महिम उसके सामने, बिल्कुल करीब आकर खड़ा हुआ, लेकिन उसका मन हर्गिज कुछ डोलने को तैयार न हुआ। उसे अपने लिये शर्म महसूस करने में भी तकलीफ-सी होने लगी।

महिम ने देखा-डिबरी को सामने रखकर अचला चुप बैठी है। पूछा, अब तुम क्या करोगी?

मैं?-कहकर उसकी ओर ताकती हुई अचला जाने कितना कुछ सोचने लगी। अन्त में कहा-मैं तो कुछ भी सोच नहीं पाती। तुम जो हुक्म दोगे, वही करूँगी!

इस अप्रत्याशित वाक्य और व्यवहार से महिम विस्मित हुआ-शंकित हुआ। अचला ने इस तरह से कभी ताका नहीं था। यह निगाह जितनी सीधी थी, उतनी ही स्वच्छ। इससे उसके कलेजे के अन्दर दूर तक देखा गया। वहाँ भय नहीं था, चिन्ता नहीं थी, कामना नहीं

थी-जहाँ तक देखा जा सकता था, भविष्य का आसमान धू-धू जल रहा था। उसमें न तो रंग था, न मूर्ति, न गति न प्रकृति-बिल्कुल निर्विकार, बिल्कुल सूना।

सतायी गयी, अपमानित नारी के हृदय के इस चरम वैराग्य को वह पहचान नहीं सका। एक के अभाव ने दूसरे के हृदय को ऐसा सूना कर दिया है-यह सोचकर उसका मन कड़वाहट से भर गया। लेकिन अपने दुःखों से दुनिया के दुःख का बोझा उसने कभी बढ़ाना नहीं चाहा, इसीलिये अपने को अपने में ही समेटे रहने की उसे आदत रही है। गले तक उमड़ी हुई कड़वाहट कहीं उसकी बोली में न जाहिर हो पड़े, इस डर से दूसरी ओर नजर टिकाये वह कुछ देर चुप रहा। उसके बाद सहज स्वर में बोला-मैं तुम्हें हुक्म क्यों करूँ अचला, और तुम्हीं उसे क्यों मानोगी?

लेकिन तुम्हारे सिवा और तो कोई नहीं है-कोई मुझसे बात भी नहीं करेगा!-अचला उसी तरह महिम को ताकती रही।

महिम ने कहा-मुझसे यही उम्मीद करती हो तुम?

प्रश्न शायद अचला के कानों पहुँचा नहीं। वह अपनी ही बात का छोर बढ़ाती कहने लगी-तुम्हें खोने के बाद से मैं कितना तो कहती रही भगवान से-हे भगवान, तुम मुझे उठा लो! उन्होंने भी न सुना-तुम भी नहीं सुन रहे हो! क्या करूँ मैं?

महिम कोई जवाब न देकर बाहर चला गया। किन्तु उसकी निराशा-भरी आवाज ने, उसकी निरभिमान, निःसंकोच, निर्लज्ज उक्ति ने उसे फिर दुविधा में डाल दिया। कान में वही आवाज लिये, बाहर टहलते हुए वह यही सोचने लगा-क्या किया जाये? अपने भार से वह खुद ही झुक रहा था, तिस पर अपनी सुकृति और दुष्कृति का भार उसी पर लादकर सुरेश जाने कहाँ खिसक पड़ा-इस बोझ को वह कहाँ और कैसे उतारे!

बड़ी-बड़ी खोज और पूछ के बाद रघुवीर खबर ले आया-कि डिहरी से तीनेक कोस के फासले पर कल हाट लगेगी। कोशिश करें तो वहाँ बैलगाड़ी मिल सकती है।

महिम को झट उठते देख उसने संकोच के साथ कहा-मैं फौरन जा सकता हूँ, पर इस गाँव तक कोई आने को राजी नहीं होगा। माँ जी अगर इतनी दूर...

अचला ने कहा-चलो! लेकिन कदम बढ़ाते ही वह लड़खड़ा कर गिर रही थी। महिम ने पकड़कर सम्भाल लिया। लेकिन लज्जा और वितृष्णा से महिम की सारी देह सिकुड़-सी जाने लगी। अपना हाथ हटाते हुए बोला-नहीं तो आज रहने दो!

-क्यों? तुमने तो कहा-यहाँ रहना ठीक नहीं, और डिहरी से गाड़ी मँगाने में कल का दिन भी निकल जायेगा।

-मगर तुम बेहद कमजोर जो हो...

अचला ने लेकिन उसका हाथ नहीं छोड़ा था, नहीं छोड़ा। वह सिर हिलाकर बोली-नहीं, चलो! मैं अब कमजोर नहीं हूँ। तुम्हारा हाथ थामे, जहाँ तक कहो-चल सकती हूँ!

चलो!-रघुवीर को आगे करके महिम चल पड़ा। उसाँस लेकर वह मन-ही-मन कहने लगा-इसका अन्त कहाँ होगा? कब खत्म होगा यह सफर और कैसे?

(44)

डिहरी पहुँचकर अचला ने वह लिफाफा निकाला, कहा-यह वसीयत है। महिम ने हाथ बढ़ाकर उसे लिया। उसे याद आया, इसमें सुरेश की चिट्ठी है। उस पत्र में कौन-सा अनसोचा ब्योरा लिखा है, किस दुर्गम रहस्य की राह का पता है-यह जानने के लिये तुरन्त उसके मन में आँधी-सी उठी। लेकिन उस ख्वाहिश को दबाकर लिफाफे को उसने जेब में डाला।

अचला ने पूछा-तुम क्या आज ही डिहरी से चले जाओगे?

-हाँ, यहाँ रहने में अब मुझे सुविधा न होगी।

-और मुझे क्या सदा यहीं रहना होगा?

महिम जरा चुप रहा, फिर पूछा-तुम क्या और कहीं जाना चाहती हो?

अचला बोली-कल से लगातार मैं यही सोच रही हूँ। मैंने सुना है, विलायत में मुझ-जैसी अभागिनों के लिये आश्रम है-वहाँ क्या होता है, मालूम नहीं; लेकिन अपने यहाँ क्या वैसा कुछ-कहते-कहते उसकी बड़ी-बड़ी आँखें आँसू से टलमला उठीं। उसकी आँखों में आँसू यहीं पहली बार दिखाई दिया।

महिम के कलेजे में करुणा का तीर चुभा, पर वह धीरे-धीरे बोला-पता नहीं; मगर मैं खोज-पड़ताल कर सकता हूँ।

-तुम्हें कभी चिट्ठी लिखूँ तो जवाब नहीं दोगे?

-जरूरत हो तो दे सकता हूँ। लेकिन मुझे सामान समेटकर निकलने में देर हो जायेगी, मैं चलता हूँ!

अचला ने अपने शेष दुःख को आज मन-ही-मन स्वामी के चरणों में चढ़ाते हुए, वहीं जमीन पर माथा टेककर प्रणाम किया, और उनके चले जाने के बाद चौखट पकड़े चुप खड़ी रही।

महिम सोचता जा रहा था-रामबाबू के यहाँ अब एक पल भी ठहरना ठीक नहीं, और शहर में भी और कहीं एक दिन के लिये भी आश्रय लेना असम्भव है। चाहे जैसी भी हो, यहाँ से आज चल ही देना पड़ेगा। फिर अपने लिये उसे एक ऐसी एकान्त जगह की जरूरत थी, जहाँ दो घड़ी स्थिर बैठकर वह न केवल उस लिफाफे को खोलकर पढ़े, बल्कि आँखें खोलकर अपने-आपको देखने का अवसर भी पा सके।

अचला को प्यार करने का इतिहास धीरे-धीरे धुँधला हो चुका था; लेकिन इसी लड़की के लिये उसके जीवन में जो गुजर गया, वह जैसा प्रलय-सा असीम है, वैसा ही उपमाविहीन। फिर सहने की निःशेष शक्ति भी विधाता ने उसे नहीं दी! उसका घर बाहर-भीतर से जला बैठा-तो वह वहीं खड़ा-खड़ा राख हो गया-उसकी एक भी चिनगी छिटक नहीं पायी। लेकिन आज उसकी शक्ति की पुकार केवल सहने के लिये नहीं हुई है-सामंजस्य के लिये हुई है।

आज जमा-खर्च की तफसील का लेखा लगाये बिना नहीं चलने का। कोई एकान्त जगह आज उसे जरूर चाहिए।

डेरे पहुँचकर जल्दी-जल्दी उसने सामान सहेजा। पाँच बजे की गाड़ी में घण्टेभर की देर थी। रामबाबू को लौटने में देर होगी, क्योंकि वे वास्तव में प्रायश्चित के लिये ही काशी गये हैं, और कह गये हैं-प्रायश्चित किये बिना पानी तक न लेंगे। लिहाजा उनसे मिलकर जाना मुमकिन नहीं। सो रुखसत होने वाले फर्ज को एक खत से अदा करने के ख्याल से, वह कागज कलम लेकर बैठा। दो-एक पंक्तियाँ लिखने के बाद, उनके गुस्से से निकलने वाले व्यंग्य-वाणों की याद आने लगी। और उसी के साथ-साथ एक जने के आँसू-रुँधे कण्ठ की कातर विनती भी उसके कानों तक पहुँची। तन्द्रा की हालत में पीड़ा जैसी उसकी चेतना को पूर्णतया जगाये न रखकर भी उसने जगाये रक्खा-सोने नहीं दिया। रामबाबू की बातें मानो धक्का देकर उसे चौंका गयीं।

इस बूढ़े आदमी से उसका परिचय ज्यादा दिनों का नहीं; लेकिन इनकी दया, इनके दान, इनकी भलमनसाहत, निश्छल भगवद्भक्ति के किस्से बहुत सुन रखे थे-इन बातों ने अचानक मानो उसकी आँखों के आगे, उनकी एक नयी दिशा दिखा दी।

इन भलेमानस ने अचला को बेटी कहकर सम्बोधित किया था। इसके सिवा दूसरे गोत्र की लड़की के हाथ का अन्न उन्होंने नहीं खाया-बातों के सिलसिले में उन्होंने महिम को यह भी बताया था; लिहाजा महिम के लिये यह अनुमान करना कठिन नहीं था कि रामबाबू का सर्वनाश किधर से आया। लेकिन वह मन-ही-मन यही कहने लगा-कि अचला के अपराध का विचार न होगा, बाद में किया जायेगा; पर इस आचार-परायण ब्राह्मण का यह धर्म कौन-सा है, जो एक मामूली-सी लड़की के धोखे से वह तुरन्त धूल में मिल गया? जो धर्म अत्याचारी की ठोकर से आप अपने को और अपनी शक्ति को तैयार रखना पड़ता है-वह धर्म आखिर कैसा धर्म है, और मनुष्य जीवन में उसकी उपयोगिता क्या है-जिस धर्म ने स्नेह की मर्यादा नहीं रखने दी, एक असहाय नारी को मौत के मुँह में छोड़कर चले आने में जरा भी हिचक नहीं होने दी, चोट खाकर जिस धर्म ने इतने बड़े स्नेहशील बूढ़े को भी प्रतिहिंसा से ऐसा निर्दयी बना दिया-वह कैसा धर्म है? और जिसने उस धर्म को कबूल

किया, वह कौन-से सत्य को लिये चल रहा है? जो धर्म है, वह तो चमड़े की नाईं आघात सहने के लिये ही है। वही तो उसकी अन्तिम परीक्षा है!

उसे सहसा लगा-तो क्या मेरा इस तरह भाग आना भी-मगर इस चिन्ता को भी उसने उसी तरह जबर्दस्ती हटाकर कलम को उठा लिया, और मुख्तसर में चिट्ठी को खत्म करके स्टेशन की तरफ चल पड़ा।

गाड़ी के आने पर डिब्बे के दरवाजे को खोलकर महिम ने अन्दर जाना चाहा, उसी में से एक बूढ़े आदमी, एक विधवा स्त्री का हाथ पकड़े नीचे उतरे।

बूढ़े ने कहा-अरे, महिम!

मृणाल ने झुककर प्रणाम किया। कहा-सँझले दादा, चले कहाँ? और दोनों ने हैरान होकर देखा-महिम गाड़ी पर बैठ गया है।

महिम ने कहा-मैं कलकत्ते जा रहा हूँ। 'सुरेश बाबू के घर ले चलो'-कहने से ही कोई गाड़ी वाला पहुँचा देगा। वहाँ अचला है।

केदार बाबू ठक से खड़े रहे। महिम ने कहा-सुरेश गुजर गया! अचला ने मुझसे किसी आश्रम के बारे में पूछा था मृणाल, लेकिन मैं कोई जवाब न दे सका-तुमसे कोई जवाब वह पा सके शायद!

उसके चेहरे पर नजर रोपकर मृणाल ने कहा-जवाब जरूर पायेगी सँझले दादा! लेकिन अपनी शिक्षा तो तुम्हारे ही पास हुई है। आश्रम की कहो, चाहे आश्रय की कहो-उसका यह कहाँ है, यह मैं बता सकूँगी; लेकिन वह बताना तो तुम्हारा ही होगा! महिम ने कुछ कहा नहीं। अपने को उस तीखी निगाह वाली औरत से बचाने के लिये ही शायद उसने मुँह फेर लिया।

गाड़ी ने सीटी दी। बूढ़े के छूटे दायें हाथ को अपने हाथ में लेकर मृणाल ने कहा-चलिये बाबूजी, हम लोग चलें!